तमसो मा ज्योतिर्गमय

प्रवचन-क्रम

1. परम का विज्ञान...2
2. जीवन का नियम..19
3. अपना जीवन, अपना सत्य...35
4. जीवन की भाषा..53
5. जीवन का सम्मान...71
6. फूल खिलने का क्षण..86
7. ज्योति का स्पर्श...103
8. आध्यात्मिक साम्यवाद..116

तमसो मा ज्योतिर्गमय
पहला प्रवचन

परम का विज्ञान

सुबह सूरज उगता है और हम मान लेते हैं कि रात मिट गई। वह मानना बड़ा झूठा है। एक रात तो बाहर है जो मिट जाती है, लेकिन एक रात भीतर भी है जो किसी सूरज के उगने से कभी नहीं मिटती। रात के अंधेरे में भी हम दीया जला लेते हैं और सोचते हैं प्रकाश हो गया, लेकिन एक अंधेरा ऐसा भी है जहां हम कभी कोई दीया नहीं जलाते और जहां कभी कोई प्रकाश नहीं पहुंचता। लेकिन शायद उस अंधेरे का ही हमें कोई पता नहीं है। और जब तक उस अंधेरे का पता न हो, तब तक प्रकाश की आकांक्षा भी कैसे पैदा हो सकती है?
उपनिषदों के किसी ऋषि ने गाया है, परमात्मा से प्रार्थना की हैः मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चल, अंधेरे से प्रकाश की ओर ले चल। यह प्रार्थना हमने सुनी है और यह भी हो सकता है कि यह प्रार्थना किन्हीं क्षणों में हमने भी की हो। लेकिन जिन्हें यह भी पता नहीं कि किस अंधेरे को मिटाना है, उनकी प्रकाश के लिए की गई प्रार्थना का क्या अर्थ हो सकता है?
हम एक ही अंधेरे से परिचित हैं, जिसे मिटाने के लिए किसी परमात्मा की कोई जरूरत नहीं, आदमी काफी है। वह अंधेरा हमारे पास है। हमारे भीतर भी कोई अंधेरा है, इसका हमें पता ही नहीं। और जिस दिन भीतर के अंधेरे का पता चल जाए, उस दिन रोआं-रोआं, श्वास-श्वास एक ही प्रार्थना करने लगती है कि कैसे अंधेरे के बाहर जाऊं? जैसे हम किसी को पानी में डुबा दें...
सुना है मैंने, एक फकीर था, शेख फरीद। सुबह-सुबह स्नान करने नदी की तरफ जाता है। रास्ते में एक आदमी मिला और उसने पूछा कि ईश्वर है? ईश्वर कहां है? ईश्वर कैसा है?
फरीद ने कहाः मैं स्नान करने जाता हूं, अच्छा हो कि तुम भी मेरे साथ चलो। हो सकता है स्नान करने में ही तुम्हें जवाब भी दे दूं।
उस आदमी ने सोचा, स्नान करने से ईश्वर के संबंध में पूछे गए सवाल का जवाब कैसे मिलेगा? लेकिन जानने के लिए फकीर के साथ हो लिया।
वे नदी पर पहुंचे। फरीद स्नान करने लगा। वह आदमी भी स्नान करने लगा।
उस आदमी ने एक डुबकी ली है और फरीद ने उसकी गर्दन पानी के भीतर पकड़ ली। फरीद मजबूत आदमी थे। वह जिज्ञासु बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। उसके प्राण एक ही आकांक्षा कर रहे हैं--कैसे बाहर निकल जाऊं, श्वास कैसे ले लूं, कैसे बाहर निकलूं? सारा रोआं-रोआं तड़फने लगा है। फरीद मजबूत आदमी है, वह उसे पानी में दबाए चला गया है। बड़ी मुश्किल से, बड़ी मुश्किल से वह आदमी छूट पाया है। बाहर निकला है, तो फरीद पर टूट पड़ा है कि मैंने पूछा था, ईश्वर कहां है, और तुम मेरे प्राण लिए लेते हो? मैंने सोचा था, किसी संन्यासी के पास जाता हूं, किसी हत्यारे के पास नहीं। यह तुमने क्या किया?
फरीद ने कहाः यह बात पीछे कर लेंगे। अभी मुझे कुछ और पूछना है? जब तुम पानी के भीतर थे तो तुम्हारे मन में कितने सवाल थे?
उस आदमी ने कहाः सवाल?
फरीद ने पूछाः कितने विचार थे?
उस आदमी ने कहाः विचार? न कोई विचार था, न कोई सवाल था। एक ही ख्याल था, कैसे एक श्वास ले लूं। फिर तो वह ख्याल भी मिट गया। फिर तो सारे प्राण एक पुकार से भर गए कि कैसे श्वास मिले। फिर मुझे पता भी नहीं कि श्वास चाहिए थी, फिर मैं ऊपर उठ रहा था। सारी ताकत लगा रहा था बाहर निकलने के लिए। लेकिन यह भी चेतन नहीं था। यह जो हो रहा था, यह भी मैं नहीं कर रहा था। फरीद ने कहाः जिस दिन परमात्मा को ऐसे ही पुकारोगे, उस दिन पूछने की जरूरत नहीं रहेगी कि परमात्मा कहां है।
हमने भी बहुत बार प्रार्थना की हो। प्रकाश की तरफ कौन नहीं जाना चाहता है? लेकिन अंधेरे का अनुभव ही हमें नहीं, और अंधेरे का अनुभव न हो तो प्राण प्यास से भरते नहीं कि हम प्रकाश की तरफ कैसे चले जाएं? फिर प्रार्थना झूठी हो जाती है।

जिस प्रार्थना के पीछे प्यास न हो, उससे ज्यादा असत्य प्रार्थना कोई
भी नहीं है।
हमारी सारी प्रार्थनाएं झूठी हो जाती हैं। और ज्ञान पाने की हमारी सारी चेष्टाएं और श्रम भी व्यर्थ हो जाते हैं। क्योंकि अज्ञान का, अंधेरे का ठीक-ठीक बोध ही हमें नहीं हैं। आज की सुबह तो मैं यह बात करना चाहूंगा कि भीतर अंधेरा है, घना अंधेरा है। लेकिन शायद हम उस अंधेरे के धीरे-धीरे इतने आदी और परिचित हो गए हैं कि उससे हमें कोई पीड़ा नहीं होती। या यह भी हो सकता है कि अंधेरे में रहते-रहते हम यही भूल गए हैं कि वह अंधेरा है! भीतर के अंधेरे का हमें कोई बोध, कोई चोट, कोई परेशानी, कोई चिंता नहीं है। और जिस आदमी को भीतर के अंधेरे से चिंता और एंग्जायटी पैदा न होती हो, उस आदमी के जीवन में धर्म का कभी भी कोई द्वार नहीं खुलता है।
धार्मिक लोग हैं--हिंदू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, लेकिन धार्मिक आदमी नहीं हैं। क्योंकि बहुत मुश्किल से ही इस बात का बोध होता है कि मेरे भीतर अंधेरा है, मैं अज्ञान में हूं। मुश्किल से यह बात ख्याल में आती है कि मैं मृत्यु से घिरा हूं, अंधेरे से घिरा हूं। जीवन की बुनियादी भ्रांतियों में से एक भ्रांति यह है कि हम जानते हैं कि भीतर कुछ भी नहीं करना है, जो भी करना है वह बाहर करना है। धन कमाना है, बाहर। भीतर भी कोई धन हो सकता है? यश कमाना है, बाहर। भीतर भी कोई यश हो सकता है? रोशनी पैदा करनी है, बाहर। दीये जलाने हैं, बाहर। भीतर भी कोई दीया जलाने की बात है?
जो भी करना है, बाहर करना है। भीतर करने का कोई सवाल ही नहीं है। और इसलिए भीतर अगर हम वैसे ही रह जाते हैं जैसा जन्म के साथ पैदा हुए थे मरने के दिन तक, तो कोई आश्चर्य नहीं है। हम भीतर के साथ बिल्कुल तृप्त और संतुष्ट हैं, हमें भीतर कुछ परिर्वतन ही नहीं करना है। यह भीतर कोई अभाव है, कोई कमी है, कुछ है भीतर जिसे बदलना है, कुछ है भीतर जिसे लाना है, जो नहीं है।
गुरजिएफ के पास एक... यूनान में एक फकीर था, गुरजिएफ। रूस का एक बहुत बड़ा गणितज्ञ आस्पेंस्की मिलने गया। आस्पेंस्की ने गुरजिएफ से कहाः हम सबके भीतर आत्मा है, कैसे उसे पाएं?
गुरजिएफ बहुत हंसने लगा, उसने कहा, सबके भीतर आत्मा! नहीं, सबके भीतर आत्मा नहीं है। जिन्हें अमृत का कोई पता नहीं, उनके भीतर आत्मा होना न होने के बराबर है।
जैसे हम कहें, सब बीज के भीतर वृक्ष है। हो सकता है वृक्ष, है नहीं। और बीज बिना वृक्ष हुए भी मर सकता है। बीज वृक्ष भी बन सकता है। लेकिन अगर सभी बीजों को यह ख्याल पैदा हो जाए कि हम तो वृक्ष हैं, तो उनकी दौड़ बंद हो जाएगी वृक्ष होने की।
जो हमारे भीतर नहीं है, वह हमने मान लिया है, इसलिए दौड़ बंद हो गई है। प्रकाश हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है, लेकिन हमने मान रखा है। ज्ञान हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है, लेकिन हमने मान रखा है। अमृत हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है, लेकिन हमने मान रखा है। परमात्मा हमारे भीतर बिल्कुल नहीं है, लेकिन हम सब दोहराए चले जाते हैं कि भगवान सबके भीतर है।
हो सकता है, परमात्मा भी हो सकता है, अमृत भी हो सकता है, बीज वृक्ष बन सकता है, और आदमी आत्मा बन सकता है, लेकिन आदमी अभी आत्मा है नहीं, सिर्फ एक संभावना है, एक पोटेंशियलिटी है। आदमी प्रकाश हो सकता है, लेकिन आदमी प्रकाश है नहीं।
आदमी एक गहन अंधेरा है। आदमी जाग सकता है, लेकिन आदमी सोया हुआ है। हम
जो हो सकते हैं, उसे हमने मान लिया है कि हम हैं। और इसलिए जीवन की सारी गति अवरुद्ध हो गई है, सब रुक गया है।
अगर एक गरीब आदमी मान ले कि वह धनी है, और एक भिखारी मान ले कि वह सम्राट है, फिर उस भिखारी के सम्राट होने की कोई उम्मीद न रही। उसने मान ही लिया कि वह सम्राट है। वह एक सपने में खो गया कि वह एक सम्राट है। और वह भिखारी है सड़क के किनारे बैठा हुआ। हाथ उसके भीख के लिए फैले हुए हैं, मन में भीतर वह सोच रहा है कि मैं सम्राट हूं। फिर यह भिखारी कभी सम्राट नहीं हो सकेगा।

हम क्या हैं, वह हमें ठीक से जानना जरूरी है, ताकि हम वह हो सकें जो हम
हो सकते हैं। लेकिन आदमी के ऊपर एक गहरी मूर्च्छा छा गई है। और हम सबने वह मान लिया है जो हम हो सकते हैं, जो हम अभी हुए नहीं हैं। और इसलिए भीतर हम रुक गए हैं।
बाहर विकास हो रहा है, भीतर कोई विकास नहीं हो रहा है। तीन हजार वर्षों में आदमी बाहर तो बहुत गति किया है--छोटे मकान बड़े मकान हुए हैं, बीमारियां कम हुई हैं, उम्र आदमी की बढ़ी है, ज्यादा सुख की सुविधाएं जुटी हैं, आदमी जमीन से चांद तक पहुंच गया है, लेकिन भीतर? भीतर हम वहीं खड़े हैं जहां आदिम, प्रिमिटिव आदमी खड़ा है। हम भीतर कहीं भी नहीं गए। भीतर हम इंच भर भी नहीं हिले। भीतर हम वहीं के वहीं खड़े हैं।
बाहर विकास हो रहा है, भीतर आदमी ठहर कर खड़ा हो गया है। और इसीलिए इतनी परेशानी है दुनिया में। आदमी छोटा पड़ रहा है और आदमी का विकास बड़ा होता चला जा रहा है। आदमी बहुत छोटा हो गया है, विकास बहुत बड़ा हो गया है। उसके हाथ में एटम और हाइड्रोजन बम हैं और आदमी, आदमी बिल्कुल आदिम है, बिल्कुल प्रिमिटिव है। उसमें कोई विकास नहीं हुआ है।
अविकसित आदमी के हाथ में विकसित साधन बड़े खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। अज्ञानी आदमी के हाथ में विज्ञान का सारा ज्ञान सुसाइडल, आत्मघाती सिद्ध हो रहा है। यह होगा ही। यह होगा ही। यह होना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन अगर यह एक बार ख्याल आ जाए कि हमारे जीवन का सारा उपक्रम बाहर ही नहीं है, जीवन का सारा श्रम बाहर ही नहीं खो जाना चाहिए। हम भी हैं, मैं भी हूं, मेरा होना भी है और मेरे होने का भी, मेरे बीइंग का भी एक विकास है। क्या वहां प्रकाश है? कभी भीतर आंख बंद करके खोज की है? वहां प्रकाश है? वहां कोई दीया जलता है? वहां कोई सूरज निकलता है? वहां घनघोर अंधेरा है, वहां कोई प्रकाश नहीं है। वहां कोई सूरज नहीं निकलता। आंख बंद की कि हम अंधेरे में खो जाते हैं। और इसलिए हम आंख बंद करने से डरते हैं, इसलिए हम भीतर झांकने से भी डरते हैं।
लोग कहते हैं, सुकरात से लेकर आज तक, सारे लोग कहते हैं, नो दाउ सेल्फ, अपने को जानें, भीतर जाएं। निरंतर शिक्षा दी जाती है, भीतर जाओ, अपने को जानो। लेकिन कोई आदमी भीतर नहीं जाना चाहता है। क्योंकि भीतर आंख बंद करता है कि अंधेरा हो जाता है। अंधेरे से डर लगता है। बाहर कम से कम प्रकाश तो है। बाहर कम से कम दिखाई तो पड़ता है, भीतर तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। या अगर भीतर भी कभी कुछ दिखाई पड़ता है, तो वे बाहर के ही प्रतिबिंब होते हैं, बाहर के ही रिफ्लेक्शन होते हैं। आंख बंद होती है, मित्र दिखाई पड़ते हैं, दुश्मन दिखाई पड़ते हैं। फिर भी आंख बंद न हुई, फिर भी हम बाहर ही हैं। बाहर की तस्वीरों को देखे चले जा रहे हैं। वहां पर एक रोशनी है। लेकिन भीतर जितने गहरे उतरते हैं, वहां उतना अंधेरा मालूम होता है। जैसे कोई गहरी अंधेरी खोह में उतर जाए।
सी एम जोड एक बड़ा विचारक था अभी। किसी ने जोड को कहा था--कभी अपने भीतर जाएं, कभी उतरें अपने भीतर। कब तक बाहर का सोचते रहेंगे? जोड बीमार पड़ा। सोचा कि अब बीमारी में बाहर जा भी नहीं सकता हूं, डाक्टर कहते हैं, बिस्तर पर ही पड़ा रहना पड़ेगा। तो सोचा कि जब बाहर नहीं जा सकता, तो भीतर जाने की ही कोशिश करके देख ली जाए। फुरसत अनायास मिल गई है। सोऊंगा भी तो कब तक सोऊंगा। आंख बंद की है, तो भीतर तो घनघोर अंधेरा है, भीतर तो कुछ भी नहीं हैं, कहां जाओ?
हम सब भीतर से बचते हैं कि वहां अंधेरा है। वहां डर भी हो सकता है, अनजान रास्ता हो सकता है, अनजान खड्ड भी हो सकती है। जो लोग ध्यान के थोड़े भी गहरे प्रयोग करते हैं, जो पहला अनुभव उन्हें आना शुरू होता है वह ऐसा है जैसे किसी गहरे अंधेरे कुएं में गिर रहे हों, जिसकी कोई नीचे कोई बाटम नहीं है, कोई तलहटी नहीं है, गिरते ही जा रहे हैं, अंधेरा है, डार्क एबिस। ईसाई फकीरों, ईसाई मिस्टिक्स ने नाम दिया हैः डार्क नाइट ऑफ दि सोल, आत्मा की अंधेरी रात।
जो लोग भी भीतर उतरते हैं, पहला अनुभव अंधेरे का है, घनघोर अंधेरे का है। हां, लेकिन अगर कोई चाहे तो उजाले की कल्पना कर सकता है। कोई चाहे तो

बैठ कर अंदर भी झूठे कल्पना के दीये जला सकता है। सोच सकता है कि माथे के बीच में दीये की ज्योति जल रही है। सोच सकता है कि माथे के पास सूरज चमक रहा है। सोच सकता है। कल्पना कर सकता है, इमेज बना सकता है, और तब, तब वह असली प्रकाश तक कभी नहीं पहुंचेगा क्योंकि वह असली अंधेरे से गुजरने से ही उसने इनकार कर दिया है। जिनको भी सुबह तक पहुंचना है, उन्हें रात से गुजरना पड़ेगा। और जिन्हें भी उस प्रकाश को खोजना है, जो भीतर हो सकता है, उन्हें एक अंधेरी रात से भी भीतर गुजरना पड़ेगा।
हम सब उस अंधेरी रात से बचने के लिए दो काम करते हैं। एक काम तो यह करते हैं कि हम भीतर जाते ही नहीं, उस उपद्रव से ही बच जाते हैं। हम जितना अपने से डरते हैं उतना किसी से भी नहीं डरते हैं। अगर आपको एक कमरे में अकेला छोड़ दिया जाए और कहा जाए कि रह जाएं तीस दिन अकेले इस कमरे में, आप कहेंगे, अकेला मैं नहीं रह सकता। इसका मतलब क्या हुआ?
इसका मतलब हुआ कि आप किसी के भी साथ रह सकते हैं, अपने साथ नहीं रह सकते। इसका मतलब यह हुआ कि कोई भी साथी आप अपने से बेहतर साथी समझते हैं। किसी के भी साथ रह सकते हैं अ ब स कोई भी काम दे देगा। अगर आदमी न मिले तो आदमी एक कुत्ता पाल लेता है। कुत्ते के साथ भी रह सकता है, लेकिन अपने साथ नहीं रह सकता है। अकेला नहीं रह सकता। रेडियो खोल लेगा; जिस गीत को हजार बार सुन चुका है, उसे फिर सुनेगा। जिस अखबार को सुबह से पच्चीस बार पढ़ चुका है, उसे फिर से उठा लेता है, फिर से पढ़ना शुरू कर देगा। अपने साथ नहीं रह सकता है आदमी।
हम इस योग्य भी नहीं कि अपने साथ रह सकें? हम खुद को भी दोस्ती के योग्य नहीं मानते। तो एक तो हम बाहर उलझे रहते हैं, ताकि भीतर न जाना पड़े। एक तो हम दूसरे लोगों के साथ रहे आते हैं, ताकि अपने साथ न होना पड़े। इतने व्यस्त रहते हैं, इतने आक्युपाइड रहते हैं कि भीतर का ख्याल न आए। सुबह से आखिरी रात सोने के क्षण तक व्यस्त हैं।
इस व्यस्तता के पीछे बहुत मनोवैज्ञानिक बीमारी है। कोई आदमी विश्राम नहीं करना चाहता, क्योंकि विश्राम में अपने साथ होना पड़ेगा। और अगर विश्राम के लिए पहाड़ी स्टेशन चला जाता है या समुद्र के तट चला जाता है, तो दस-पांच लोगों को साथ ले जाता है। और वहां जाकर पूरी तरह व्यस्त हो जाता है। वही दुनिया वहां पैदा कर लेता है जो घर पर थी। वही दुनिया फिर खड़ी कर लेता है, लेकिन अकेला नहीं होना चाहता। और हम चौबीस घंटे इसलिए व्यस्त हैं कि कहीं अकेले न हो जाएं।
अगर एक आदमी को जेल में रहने का मौका मिल जाए, तो वह जेल में भी अकेला नहीं रहता। वह गीता पर टीका लिखने लगता है वहां बैठ कर। अगर उसको कागज न मिले, तो दीवाल पर कोयले से लिखने लगता है। लेकिन व्यस्त हो जाता है। इधर तीस-चालीस साल में हिंदुस्तान के जेल में जाने वाले लोगों ने जितनी किताबें बढ़ाईं उतनी और किसी ने नहीं बढ़ाईं। जेल, बड़ी जरूरी बात हो गई कि वहां कुछ लिखा जाए। क्योंकि वहां अकेले रहने के लिए खुद को एनकांउटर करने का एक मौका मिला है, जिसे चूक जाना जरूरी है? एक मौका मिला है जहां खुद के साथ रहना पड़ेगा, और कोई खुद के साथ नहीं चाहता। कोई न कोई उलझन चाहिए, कोई न कोई व्यस्तता चाहिए, कहीं न कहीं, कहीं न कहीं मन लगा होना चाहिए, ताकि भीतर झांकने का मौका न मिले।
हर आदमी व्यस्त है, क्योंकि कोई भी आदमी अपने साथ एक क्षण भी नहीं रहना चाहता। हमारा प्रेम भी हमारी व्यस्तता है दूसरे के साथ। और हमारी प्रार्थना भी हमारी व्यस्तता है दूसरे के साथ। और हमारे धन की खोज भी व्यस्तता है। और यश की खोज भी व्यस्तता है। हमारी राजनीति भी व्यस्तता है। और हमारा मंत्र-जाप, पूजा-प्रार्थना भी व्यस्तता है।
जब कि धर्म में प्रवेश उनका होता है जो अनआक्युपाइड होने को तैयार हैं, जो सब व्यस्तता छोड़ने को तैयार हैं, थोड़ी देर को ही सही। अनआक्युपाइड होने का क्या मतलब होता है? मतलब होता हैः मैं किसी के साथ नहीं, अपने ही साथ हूं। थोड़ी देर के लिए मैं अपने ही साथ हूं। लेकिन अपने साथ होना कठिन गुजरता है क्योंकि अपने साथ होते ही घनघोर अंधेरा घेर लेता है।

बाहर जो अंधेरा आपने देखा है, वह बहुत घनघोर अंधेरा नहीं है। बाहर तो जिसे हम अंधेरा कहते हैं, वह एक अर्थों में प्रकाश की ही डिग्रियां हैं। थोड़े कम प्रकाश को हम अंधेरा कहते हैं, और थोड़े कम प्रकाश को और ज्यादा अंधेरा कहते हैं। बाहर एब्सल्यूट डार्कनेस है ही नहीं, बाहर सब अंधेरा रिलेटिव है। और इसलिए बाहर एब्सल्यूट लाइट भी नहीं मिल सकता, सब प्रकाश भी रिलेटिव होगा, सापेक्ष होगा।
बाहर प्रकाश और अंधेरा एक ही चीज के, एक ही स्पेक्ट्रम के दो छोर हैं। लेकिन भीतर एब्सल्यूट लाइट, पूर्ण प्रकाश की संभावना है। वह ध्यान रहे, भीतर एब्सल्यूट अंधेरे से गुजरने की हिम्मत भी चाहिए। पूर्ण अंधेरे से गुजरने की भी जरूरत है। एक अंधेरी रात भीतर है, उससे गुजरना पड़ेगा, लेकिन हम तो उससे बचना चाहते हैं। बचने के लिए एक उपाय यह है कि हम उलझे रहें बाहर। जन्म से लेकर मरने तक, हम उलझे ही उलझे समाप्त हो जाते हैं।
आपने देखा होगा, आदमी रिटायर होता है तो बड़ा परेशान होता है। आदमी की नौकरी छूटती है, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। जो आदमी बीस साल जिंदा रह सकता था वह पांच-दस साल ही जिंदा रहता है। दस साल की उम्र खो देता है। रिटायर्ड आदमी दस-पांच साल की उम्र खो देता है। इसीलिए तो कोई भी रिटायर्ड नहीं होना चाहता है--चाहे सत्तर साल का हो जाए, चाहे पचहत्तर साल का हो जाए-- राष्ट्रपति होना चाहता है, प्रधानमंत्री होना चाहता है।
कोई रिटायर्ड नहीं होना चाहता। अगर मरे हुए आदमियों को भी मौका मिले
तो राष्ट्रपति के लिए खड़े हो जाएंगे। वह तो यह है कि हम उनको दफना देते हैं, छोड़ते नहीं हैं। उनको या तो कब्र में गाड़ देते हैं या आग लगा देते हैं। शायद इसी डर से कि वह वापस न आ जाएं, खड़े न हो जाएं।
कोई आदमी खाली नहीं होना चाहता है। और रिटायर्ड आदमी की उम्र कम हो जाती है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ठीक कहते हैं, इसलिए कम हो जाती है कि पहली दफे उसे अपने साथ रहना पड़ता है। और जैसे अपने साथ रहता है, बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। खुद की कंपनी बड़ी मुश्किल, खुद का साथ भी बड़ा मुश्किल। इसलिए हर आदमी व्यस्त है। रिटायर्ड आदमी नई व्यस्तताएं खोज लेता है।
चर्चिल, पीछे के दिनों में छूट गया था तब--छूट गया था या छुड़ा दिया गया था--जो लोग छुड़ा दिए जाते हैं, वे भी यह कहते हैं कि हम छूट गए। जिनको धक्के दे दिए जाते हैं, वे भी यह कहते हैं कि हम बाहर आ गए हैं। चर्चिल आखिरी दिनों में छूट गया था, या छुड़ा दिया गया था। मेरे एक मित्र उसको मिलने गए थे। वह अपने बगीचे में काम कर रहा है। मित्र ने पूछाः यह क्या कर रहे हैं? चर्चिल ने कहाः क्या करूं? मैं एक मिनट भी बैठा नहीं रह सकता। इसलिए पौधों के लिए गड्ढा खोद रहा हूं।
गड्ढा खोदना बुनियादी जरूरत नहीं थी। परंतु चर्चिल की भी भीतरी जरूरत है। वह जो सुबह से रात तक राजनीति में उलझा था, वह दुनिया की सेवा ही नहीं थी, वह चर्चिल की भीतरी जरूरत भी है। अब वह आदमी खाली हो गया, अब उससे कोई नहीं कहता कुछ करो। अब वह बगीचे में गड्ढा खोद रहा है। वह कहता है, बिना किए एक मिनट नहीं रहा जा सकता।
औरंगजेब ने अपने बाप को बंद कर दिया था। आखिरी वक्त में बाप को बंद कर दिया कारागृह में। तो औरंगजेब के बाप ने एक चिट्ठी भेजी और औरंगजेब को कहा कि एक काम करो, यहां अकेला रहना बहुत मुश्किल है। तुम एक काम करो, इतनी कृपा करो कि तीस बच्चे भेज दो, जिनको मैं पढ़ाता रहूं।
औरंगजेब ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि मेरे बाप को फुरसत से रहना जरा भी पसंद नहीं है। उसने तीस बच्चे बुला लिए और अब उसने पढ़ाने का काम शुरू कर दिया है। और तीस बच्चों के बीच में फिर उसने वह अकड़ वापस पा ली है जो एक बादशाह की होती है। तीस बच्चों के बीच में वह फिर बादशाह हो गया है। फिर उनको डांट रहा है, ठीक कर रहा है, सुधार कर रहा है, समझा रहा है। पढ़ा रहा है, बुझा रहा है। फिर उसने चारों तरफ चिंताएं खड़ी कर लीं। वह अकेला नहीं रह सकता, वह आराम नहीं कर सकता।
कौन रह सकता है अकेला?

जो आदमी अकेला रह सकता है, वह परमात्मा के पास पहुंच सकता है। और जो आदमी अकेला नहीं रह सकता है, वह कभी भी भीतर प्रवेश नहीं कर सकता है। अकेला होना तो भीतर होने की पहली शर्त है। अकेले होने में महत्व इसी बात का है कि अव्यस्त होने की, अनआक्युपाइड होने की थोड़ी हिम्मत जुटाएं।
लेकिन या तो हम बाहर व्यस्त होते हैं। या अगर हम बाहर से ऊब गए, और हर आदमी ऊब जाता है। कब तक कोई आदमी... कितनी ही कम बुद्धि का आदमी हो, तो भी रिपिटीशन उबा देने वाला है। ज्यादा बुद्धि के लोग जल्दी ऊब जाते हैं। बुद्ध जैसे लोग जवानी में ऊब जाते हैं। कम बुद्धि के लोग बुढ़ापे में ऊबते हैं। इसलिए बुढ़ापे में धार्मिक हो पाते हैं। ज्यादा बुद्धिमान आदमी हो, तो बचपन में ही धार्मिक हो जाएगा। कम बुद्धि का आदमी हो, तो मरते दम तक उसको फिर ख्याल मरते वक्त तक आएगा। लेकिन हर आदमी ऊब जाता है।
सिर्फ जानवर नहीं ऊबते हैं। आपने जानवर को कभी बोर होते नहीं देखा होगा। किसी भैंस को आपने कभी बोर्डम में नहीं देखा होगा कि ऊब गई हो, परेशान हो। कभी नहीं। भैंस कभी नहीं ऊबती। ऊबने के लिए बुद्धि चाहिए, और जितनी तेज बुद्धि हो उतनी जल्दी ऊब पैदा हो जाती है।
बुद्ध ने एक आदमी को मरते देखा और पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा? हमने पूछा कभी एक आदमी को मरते देख कर? हम हर रोज न मालूम कितने आदमियों को मरते देखते हैं, हम कभी यह नहीं पूछते कि क्या मैं मर जाऊंगा? बल्कि इस प्रश्न को टालते हैं कि कहीं दूसरे के मरने से मुझे मेरे मरने का ख्याल न आ जाए। तो इसे टालने की तरकीब क्या है हमारी? हम उस दूसरे के साथ बड़ी सहानुभूति करते हैं, जब कि सहानुभूति अपने साथ करनी चाहिए। हम कहते हैं, बेचारा मर गया। हम कभी यह नहीं कहते हैं कि यह बेचारा अब मरेगा। हम अपने माइंड को डाइवर्ट करते हैं, उसकी सहानुभूति में कि बेचारा मर गया। दो बच्चे छोड़ गया, पत्नी छोड़ गया। बड़ा बुरा हुआ। ऐसा नहीं होना था। क्या इलाज नहीं हो पाया? क्या नहीं हो पाया? हम उस आदमी में अपने को उलझा कर, वह जो एक सवाल उठता हमारे भीतर--जाकर खड़ा हो जाता है कि क्या मैं मर जाऊंगा? उससे हम फिर बच जाते हैं। दो घंटे बाद वह आदमी भूल जाता है, दूसरे काम में हम लग जाते हैं।
बुद्ध ने पूछाः क्या मैं मर जाऊंगा? बुद्ध ने एक बूढ़े हुए आदमी को देख
कर पूछा कि क्या मैं बूढ़ा हो जाऊंगा?
यह हम कभी नहीं पूछते? असल में हम मैं के संबंध में सवाल ही नहीं उठाते। हम मैं को हमेशा सवाल के बाहर रखते हैं। हम यह पूछ सकते हैं, फलां आदमी बेचारा, कितने जल्दी बूढ़ा हो गया है? हम यह पूछ सकते हैं, फलां आदमी कितना बीमार होता है। हम यह पूछ सकते हैं, फलां आदमी मर गया, अच्छा नहीं हुआ, या अच्छा हुआ। लेकिन हम इन सवालों को अपने मैं से कभी नहीं जोड़ते हैं। बल्कि अगर कोई जोड़े तो हम कहेंगे, ऐसी बातें मत करो।
एक महिला मेरे साथ सफर में थी, कुछ दिन हुए। वह कहने लगी, आत्मा तो अमर है। मैंने उससे कहाः अगर मैं तुझे यह बताऊं कि आज यह जो ट्रेन चल रही है, टकरा जाएगी और हम दोनों मर जाएंगे। उसने कहाः ऐसी अपशकुन की बातें मत करिए। ऐसी बात ही मत करिए। आप दूसरी बातें करिए। आप जैसा आदमी ऐसी बात करे तो बहुत डर लगता है कि कहीं टकरा ही जाए, कुछ... यह बात ही मत करिए।
मैंने उससे कहाः अभी तू कहती थी, आत्मा अमर है और अब तू कहने लगी अपशकुन की बातें मत करिए। अगर आत्मा अमर है तो मृत्यु अपशकुन नहीं है, क्योंकि मृत्यु है ही नहीं। और अगर मृत्यु अपशकुन है, तो आत्मा अमर है, यह बात झूठ है। इन दोनों में से कुछ एक तय कर लें। उसने कहाः वह कुछ भी हो, लेकिन मैं मरने के बाबत सोचना ही नहीं चाहती।
हममें से कोई भी नहीं सोचना चाहता है। इसलिए हम मरघट गांव के बाहर बनाते हैं। बनाना चाहिए बीच में, ठेठ बाजार में। क्योंकि हर बच्चा देख सके, जागे। जबसे होश आए तब से उसको मरघट दिखाई पड़ना चाहिए। क्योंकि मरघट के बाद बड़ी सचाई इस जिंदगी में दूसरी नहीं है। लेकिन उसको हम झूठ किए हुए हैं। उसे इतनी दूर बनाए हुए हैं कि वहां न कोई जाए, न कोई देखे। छोटे बच्चों को तो हम मरघट ले जाते भी नहीं। कोई मर जाए, रास्ते से निकलता हो, छोटे बच्चों को मां-बाप भीतर बुला लेते हैं कि भीतर आ जाओ, कोई मर गया है।

कोई मर गया है, तो सब बाहर आ जाओ, क्योंकि तुम्हें भी मरना पड़ेगा। इस आदमी को ठीक से देख लो, इस सवाल को भीतर जाने दो। इस सवाल को अपने मैं से जुड़ने दो।
लेकिन हम नहीं जुड़ने देते। कोई मरता है हमेशा, हम कभी नहीं मरते।
हमेशा कोई और मरता है, समबडी डाइड, वह कोई और है। लेकिन कभी यह कोई की जगह, मेरा मैं नहीं बैठ पाता, इसको हम जोड़ते ही नहीं। हम टालते हैं।
हम जिंदगी के सब बड़े सवाल टालते हैं, जिनसे भीतर जाना पड़ेगा।
और इसलिए जिंदगी को ही हम टाल देते हैं। और इसीलिए हम ऊब भी नहीं पाते, नहीं तो हम ऊब जाएं।
लेकिन कम से कम बुद्धि का आदमी भी धीरे-धीरे ऊब जाता है। वही दफ्तर सुबह, वही सांझ, वही सोना, वही उठना, वही बैठना, चौबीस घंटे। अगर कोई ऊब भी जाता है आदमी, तो वह नई रूटीन पूछता है। वह यह नहीं पूछता कि अब मैं बाहर से ऊब गया, तो मैं भीतर जाऊं? वह यह पूछता है कि मैं इससे ऊब गया, अब मैं क्या करूं? एक आदमी धन कमाते-कमाते ऊब जाता है, तो वह कहता है, माला फेरूं? मंदिर जाऊं? गीता पढूं? क्या करूं? फिर वह बाहर एक नई रूटीन पूछता है। एक आदमी सिनेमा देखते-देखते ऊब गया, तो वह कहता है, अब मैं सुबह चार बजे उठूं? प्रार्थना करूं? क्या करूं?
हम बाहर से कभी नहीं ऊबते। बाहर की एक चीज से ऊबते हैं, तो सब्स्टीट्यूट, तत्काल दूसरा खोज लेते हैं। लेकिन रहते सदा बाहर हैं, भीतर कभी नहीं आते। चाहे माला जपो, और चाहे सिनेमा देखो, दोनों हालत में आदमी बाहर होता है। चाहे गीता पढ़ो, चाहे उपन्यास पढ़ो, दोनों हालत में आदमी बाहर होता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हम बाहर ही उलझे होते हैं। हमारी कांशसनेस बाहर ही उलझी होती है। वह गीता अच्छी किताब है, कुरान अच्छी किताब है, कोई किताब बुरी हो सकती है यह दूसरी बात है, किताब का अच्छा और बुरा होना दूसरा सवाल है, लेकिन किताब बाहर है। और हमारी चेतना बाहर उलझी रहती है।
हम चेतना को कभी भीतर की तरफ नहीं लाते। वहां एक बड़ी अंधेरी रात हमारी प्रतीक्षा कर रही है। उसका एक अनकांसेस फियर है, एक डर हमारे मन में है कि वहां गए तो अंधेरा है। और वहां गए तो अनजान, और वहां गए तो अननोन, और वहां गए तो कोई ऐसे रास्ते जिन पर हम कभी नहीं चले। और वहां जाएं, तो कहीं हम खो न जाएं, भटक न जाएं; क्योंकि हमारी सब तख्तियां, हमारी पदवियां, हमारे दरवाजे पर लगे हुए बोर्ड, वे सब यहीं रह जाएंगे। हम वहां भीतर जाएंगे, न वहां नाम होगा, न वहां पिता होगा, न धर्म होगा, न ठिकाना होगा, न कोई डिग्री होगी, न कोई पदवी होगी, न कोई पद-प्रतिष्ठा होगी। वहां हम सब कपड़े बाहर ही छोड़ जाएंगे।
अंदर हम नंगे, खाली, शून्य की तरह घुसने की हिम्मत नहीं... बहुत अंधेरा है, हम बाहर लौट आते हैं और बाहर उलझ जाते हैं। एक रास्ता है कि आदमी बाहर उलझा रहे, बाहर ही सब्स्टीट्यूट खोजता रहे उलझने के। और एक रास्ता है कि भीतर जाए और कल्पना में उतर जाए, इमीजिनेशन में चला जाए। बाहर से छोड़ दे--न किताब पढ़े, न मंदिर जाए, न दुकान चलाए। बाहर की दुनिया का ख्याल छोड़ दे, भीतर चला जाए। लेकिन फिर भीतर एक कल्पना की दुनिया बनाने लगे। भगवान को खड़ा कर ले कि वे मुरली बजाते हुए खड़े हैं, वे हो जाएंगे। आदमी भगवान को निर्मित करने की क्षमता रखता है। और अधिक भगवान आदमी के ही निर्माण किए हुए होते हैं।
ऐसे भगवान की खोज बहुत मुश्किल है जो हमारा निर्माण किया हुआ नहीं होता है। लेकिन जब तक ऐसे भगवान की खोज न हो तब तक जीवन बेकार है। भीतर हम भगवान को भी खड़ा कर ले सकते हैं, और उस भगवान के आस-पास नाच सकते हैं, खुश हो सकते हैं। भीतर हम कल्पना का सूरज बना सकते हैं और उसकी रोशनी फैला सकते हैं। और पूरे शरीर में रोशनी भर जाए, ऐसा लग सकता है। लेकिन वह सब कल्पना का चमत्कार होगा।
कहीं हम भीतर नहीं गए, कहीं कोई प्रकाश नहीं हुआ, हमने एक झूठा प्रकाश
भी कल्पित कर लिया है। हम अंधेरे में ही नहीं उतरे, हमने अंधेरे की पीड़ा और तकलीफ ही नहीं जानी। हम उस एंग्विस, संताप से नहीं गुजरे जो अंधेरे का है।

हम अंधेरे में गए ही नहीं जहां कि हमें नग्न हो जाना पड़ता, सारे वस्त्र छिन जाते, सब रास्ते खो जाते, सब जाना-पहचाना नक्शा खो जाता और अंधेरे में कोई रास्ता न सूझता। चिल्लाते, कोई आवाज नहीं सुनता; पुकारते, कोई साथ नहीं होता।
हमने उस तकलीफ को नहीं झेला। उस अंधेरे में जाने की तकलीफ को मैं तपश्चर्या कहता हूं। वही तपश्चर्या है एकमात्र।
भूखा मरना तपश्चर्या नहीं है। भूखा-मरना अभ्यास की बात है। कोई आदमी थोड़ा अभ्यास कर ले, तो खाना खाना मुश्किल हो जाता है। खाना नहीं, खाना नहीं, खाना खाना ही मुश्किल हो जाता है। कोई आदमी अभ्यास कर ले।
मैंने सुना है, जर्मनी में एक बड़ा सर्कस था। उस सर्कस में एक आदमी ऐसा
भी था जो उपवास के लिए प्रसिद्ध था। उसका भी एक स्टाल होता था। जहां लोग उसे देखने आते थे। उसने तीस दिन उपवास किए, पच्चीस दिन उपवास किए, पैंतीस दिन उपवास किए। वह आदमी बिल्कुल सूखता जाता था, और उपवास और उपवास, उसका यही काम था। इसके लिए उसे पैसे मिलते थे।
एक बार ऐसा हुआ है कि एक बहुत बड़े नगर में सर्कस कई महीनों चला। सर्कस में और भी अजीब-अजीब चीजें थीं देखने लायक। लोग उन सब चीजों को देखते थे, सर्कस देखते थे। उसकी झोपड़ी बिल्कुल पीछे की तरफ थी।
धीरे-धीरे लोग उसकी झोपड़ी भूल गए। कई महीने तक कौन रोज-रोज देखने जाता? उपवास करने वाले में देखने जैसा क्या है?
उपवास करने वाले को गांव बदल लेना चाहिए, नहीं तो फिर देखने वाले मिलना बहुत मुश्किल हो जाते हैं। उसे दूसरा गांव चुनना चाहिए, दो-चार दिन में गांव बदल लेना चाहिए।
तब नहीं तो बहुत मुश्किल मामला है। वह आदमी... एक ही गांव में उपवास करने वाले को कौन देखने जाए? कुछ दिनों में मैनेजर भी भूल गया। कोई छह महीने बाद जब सर्कस उखड़ने लगा तब लोगों को ख्याल आया कि अपने पास एक आदमी भी हुआ करता था उपवास करने वाला। वह कहां है? कुछ दिनों से उसका पता ही नहीं।
तो मैनेजर और लोग भागे हुए गए उसकी झोपड़ी की तरफ। वह आदमी भीतर करीब-करीब मरने के आखिरी क्षणों में पहुंच गया है। श्वास अटकी थी सिर्फ उसकी। मैनेजर ने कहाः पागल, अगर तुझे लोग देखने नहीं आते थे, तो तूने खाना क्यों नहीं शुरू कर दिया?
उस आदमी ने बड़ी धीमी आवाज में, अब जान बिल्कुल निकलने के करीब थी, इतना
ही कहा, खाना? पहले तो खाना छोड़ने में बड़ी तकलीफ हुई, अब खाना खाने में उतनी ही तकलीफ होती है।
अभ्यास की बात है। कोई देखने नहीं आता था, लेकिन वह खाना नहीं खाता था। अगर तीन-चार दिन आप भी खाना न खाएं, तो पांचवें दिन से भूख मरनी शुरू हो जाती है, क्योंकि शरीर एक नई तरकीब खोज लेता है, शरीर अपने को ही खाने लगता है भीतर से। फिर बाहर से खाने की जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए तो भोजन छोड़ने वाले आदमी का एक पौंड डेढ़ पौंड वजन रोज गिरता चला जाता है। अपना ही मांस पचना शुरू हो जाता है।
उपवास एक तरह का मांसाहार है, खुद ही का मांसाहार। दूसरे का मांस खाओ,
तो झगड़ा-झंझट खड़ा होता है। अपना ही खाओ, तो कोई झगड़ा-झंझट भी नहीं है। लेकिन अपना ही मांस शरीर पचाना शुरू कर देता है, अपनी ही चर्बी पचाना शुरू कर देता है। फिर बाहर से भोजन लेने की क्षमता खो जाती है, नया रास्ता खुल जाता है।
शरीर के पास बड़ी व्यवस्थाएं हैं, इमरजेंसी व्यवस्थाएं हैं। अगर आप खाना ऊपर से बंद करेंगे, शरीर भीतर से पचाना शुरू कर देगा, और इसीलिए शरीर बहुत से डिपोजिट करके रखता है, बहुत सा भोजन इकट्ठा करके रखता है। मोटा जो आदमी है वह मोटा इसीलिए है कि वह आदमी ज्यादा भोजन इकट्ठा कर लिया है। जैसे तिजोरी में कुछ आदमी ज्यादा इकट्ठा कर लेता है, मोटे आदमी ने शरीर में ज्यादा डिपाजिट कर लिया है। वह घबड़ाहट में कर लिया है उसने। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, मोटा आदमी एक तरह का कंजूस आदमी है। और अक्सर कंजूस और मोटा साथ-साथ मिले हैं। उसका कारण होता है। उसका कारण कुल इतना

है, उसका जो मन है, वह इकट्ठा करने वाला है। वह सब तरफ इकट्ठा करता है। वह शरीर में इतनी चर्बी इकट्ठी कर लेता है कि कब जरूरत पड़ जाए। मान लो कई दिन तक भोजन न मिले, तो फिर क्या होगा? तो वह इकट्ठा कर लेता है। वह बहुत भीतरी कंजूसी है।
अगर आदमी उपवास करे, तो दो-चार दिन में अभ्यास हो जाता है। और अगर उपवास करने को आदर मिलता हो, तब अभ्यास बहुत आसानी से हो जाता है। क्योंकि अहंकार की तृप्ति जिस बात से भी होती हो आदमी उसे करने को हमेशा सरलता अनुभव करता है। अगर आप शीर्षासन करने वाले को आदर देते हों, तो आदमी शीर्षासन करके खड़ा हो जाए, और अगर आप घंटों शीर्षासन करने वालों को महात्मा समझतें हों, तो आदमी चौबीस घंटे शीर्षासन भी कर सकता है। आदमी के अहंकार की बड़ी लीलाएं हैं। आदमी से कोई भी बेवकूफी करवाई जा सकती है। सिर्फ उसके अहंकार को रस मिलना चाहिए।
उपवास करने को इसलिए मैं कोई तपश्चर्या नहीं कहता। कांटों पर लेट जाना भी तपश्चर्या की बात नहीं है, सिर्फ अभ्यास की बात है। और शरीर इम्यून हो जाता है, बहुत जल्दी सक्षम हो जाता है। कांटे का चुभन फिर पता नहीं चलती।
मैं जब युनिवर्सिटी में पढ़ता था, तो एक तख्त पर ही सोता था, तो वर्षों
से तख्त पर सोता था। फिर एक बहुत बड़े परिवार में इंदौर में मेहमान हुआ। उन्होंने मेरे लिए बहुत अच्छा इंतजाम किया। उनके गद्दे ऐसे थे कि उसमें कोई बारह-बारह इंच, पंद्रह-पंद्रह इंच मोटे गद्दे थे, कि उनमें पूरा अंदर आदमी समा जाए।
मैं उन पर सो तो गया, लेकिन नींद आनी मुश्किल हो गई। आधा घंटा बीता, घंटा बीता। करवट बदलता हूं, नींद नहीं आती। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया कि हो क्या गया? इतनी आराम की उन्होंने व्यवस्था की है, मुझे तकलीफ क्यों हो रही है, आखिर दो बज गए, फिर यही रास्ता रहा कि मैं जमीन पर उतर कर नीचे सो जाऊं। जमीन पर सो गया, तब बड़ी अच्छी नींद आई।
सुबह उन्होंने आकर मुझे देखा कि जमीन पर सोया हूं। उन्होंने कहा कि आपने यह क्या किया? क्या गद्दा पसंद नहीं आया?
मैंने कहाः गद्दा तो बहुत पसंद आया, लेकिन शरीर की आदत खराब हो गई है।
अब गद्दे की आदत डालने के लिए फिर अभ्यास करना पड़ेगा।
शरीर इम्यून हो जाता है किसी भी चीज के लिए। भंगी हैं, हजारों वर्षों
से हम उनसे पाखाना ढुलवा रहे हैं। हम सोचते हैं कि बेचारों को कितनी बदबू आती होगी? यह बात बिल्कुल सरासर झूठ है। उनको बदबू आती ही नहीं। बदबू आती होती, तो वे कभी की बगावत कर देते। वे इम्यून हो गए हैं।
हां, हमारी बातें सुन कर वे भी कह सकते हैं अब, कि हमको बहुत बदबू आती है। बदबू आती नहीं है। पाखाने की बदबू इतनी अच्छी है भी नहीं कि रोज-रोज ली जा सके। अगर कोई अच्छे से अच्छा, कीमती से कीमती इत्र भी आप लगाएं, तो दो दिन के बाद उसकी सुगंध आनी बंद हो जाती है। कीमती से कीमती साबुन का उपयोग करें, दूसरों को उसकी खुशबू आ सकती है, आपको नहीं आएगी। शरीर राजी हो जाता है। और शरीर जिस चीज के लिए राजी हो जाता है, वही सहज हो जाती है। कांटों पर सो सकते हैं, अंगारों पर चल सकते हैं, आदत बनाने की बात है। इनसे तपश्चर्या का कोई भी संबंध नहीं है।
तपश्चर्या तो सिर्फ एक है धर्म की दुनिया में, वह है भीतर की अंधेरी रात में प्रवेश करना। और उसकी कोई आदत नहीं बनाई जा सकती। क्योंकि उसमें हम कभी गए नहीं। और उसकी आदत बन भी नहीं सकती, क्योंकि जैसे उसके भीतर प्रवेश करते हैं, या तो बाहर भागने का मन होता है और या और भीतर चले जाने को। उसमें रुका नहीं जा सकता। पूर्ण अंधकार को कोई भी सहने में समर्थ नहीं है।
दो ही उपाय हैं, दो ही आल्टरनेटिव हैं। अंधकार पूरा सामने आएगा, तो या
तो आप फौरन भाग कर बाहर आ जाएंगे--जहां सूरज है, प्रकाश के बल्ब जले हुए हैं, लोग हैं, सड़कें उजाली हैं, मकान हैं, सब प्रकाशित, आप वहां आ जाएंगे। और या अगर हिम्मत की तो और भीतर जाने की कोशिश करेंगे। वहां भी एक प्रकाश है लेकिन उस प्रकाश का हमें कोई पता नहीं है इसलिए हम फौरन बाहर चले आते

हैं। फौरन बाहर चले आते हैं। हम भीतर के अंधकार में कभी प्रविष्ट ही नहीं होते।
भीतर के अंधकार में प्रवेश को मैं साधना कहता हूं, तपश्चर्या कहता हूं।
और जो भीतर के अंधकार में प्रविष्ट होगा, वह उस प्रकाश को भी पा सकता है, जिसकी बातें हमने सुनी हैं, लेकिन जिसका हमें कोई भी पता नहीं है।
सुनते हैं हम। कुरान भी यही कहती हैः गॉड इ.ज लाइट, ईश्वर प्रकाश है।
बाइबिल भी यही कहती है, उपनिषद भी यही कहते हैं, हजारों-हजारों लोगों ने यही कहा है--प्रकाश है।
लेकिन हमने तो अंधेरा भी नहीं जाना, तो हम प्रकाश कैसे जान सकते हैं? प्रकाश को जानने की शर्त है एक कि हम अंधेरे को जानने को तैयार हो जाएं।
कोई कीमत तो चुकानी पड़ेगी। लेकिन धर्म की दुनिया में हम कोई कीमत नहीं चुकाना चाहते हैं। हम बिना कीमत के चाहते हैं, सस्ता, मुफ्त।
धर्म अकेली चीज है, जिसे हम मुफ्त चाहते हैं।
एक गांव में बुद्ध ठहरे। एक आदमी ने आकर बुद्ध को कहा कि आप इतने वर्षों से समझा रहे हैं लोगों को। कितने लोगों को वह प्रकाश मिला? कितने लोगों ने मोक्ष जाना? कितने लोग निर्वाण को पा गए? कितने लोगों ने जान लिया? इसे मैं पूछने आया हूं।
बुद्ध ने कहाः सांझ आना। तब तक एक छोटा काम है वह कर लाओ। यह कागज ले जाओ और गांव में हर आदमी से पूछ कर आओ कि वह चाहता क्या है?
वह आदमी गया, छोटा सा गांव है, उसने एक-एक आदमी से जाकर गांव में पूछा,
कोई दो-तीन सौ लोग रहते होंगे, एक-एक से पूछा कि तुम चाहते क्या हो?
किसी ने कहा कि बेटा नहीं है, बेटा चाहता हूं। किसी ने कहा, धन नहीं है,
धन चाहता हूं। किसी ने कहा, बीमार हूं, स्वास्थ्य चाहता हूं। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ कहा।
सांझ होते-होते उस आदमी को उत्तर मिल गया। वह लौट कर नहीं आया बुद्ध
के पास। क्योंकि एक भी आदमी ने यह नहीं कहा कि मैं निर्वाण चाहता हूं, सत्य चाहता हूं, मोक्ष चाहता हूं, परमात्मा चाहता हूं। हालांकि ये तीन सौ लोग कई बार मंदिर में हाथ जोड़े देखे गए थे। उस आदमी ने पूछा, लेकिन मैंने तुम्हें मंदिर में देखा है?
उन लोगों ने कहाः मंदिर तो जरूर गए थे, लेकिन परमात्मा के लिए नहीं।
वह लड़की की शादी करनी है, उसी के लिए भगवान से कहने गए थे। वह लड़के को नौकरी नहीं मिलती है, उसी के लिए भगवान से कहने गए थे। लेकिन बहुत शक आता है तुम्हारे भगवान पर; क्योंकि लड़के को अभी तक नौकरी नहीं मिली, प्रार्थना करते बहुत दिन हो गए।
बुद्ध ने उस आदमी को बुलवाया, कहा, उस आदमी को लाओ। वह आया क्यों नहीं?
उस आदमी ने कहाः अब मैं क्या करूं जाकर? उत्तर मुझे मिल गया है।
लेकिन बुद्ध ने कहाः फिर भी आओ।
वह आदमी गया। बुद्ध ने पूछाः क्या कहा लोगों ने? एक भी आदमी जानना चाहता है सत्य को?
उस आदमी ने कहाः कोई भी नहीं।
तो बुद्ध ने कहाः मैं किसी को जबरदस्ती सत्य की दुनिया में धक्का दे सकता हूं और मैं किसी को निर्वाण लाकर दे सकता हूं? मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, भगवान, हम आपके पैर पकड़ते हैं, प्रकाश मिल जाएगा? मैं प्रकाश दे सकता हूं?
बुद्ध ने कहाः मैं कैसे प्रकाश दूं? मैं कैसे सत्य दूं? सत्य कोई ऐसी चीज तो नहीं कि किसी को कोई दे सके! प्रकाश कोई ऐसी चीज तो नहीं कि कहीं मिल जाए! खोजनी पड़ेगी, और खोजने का प्रश्न ही तब खड़ा होगा जब हम अंधेरे में गिर जाएं। अंधेरे में गिरते ही पता चलता है कि सारे प्राण प्रकाश को खोजने लगे। अंधेरे में गिरते ही पता चलता है कि सारे प्राणों में एक प्यास भर गई है, प्रकाश कहां है?
और एक बार भीतर के अंधेरे का अनुभव हो जाए, तो फिर बाहर का प्रकाश भी प्रकाश मालूम नहीं पड़ेगा, चूंकि भीतर के अंधेरे को जानते ही हमें पहली दफा

पता चलेगा कि यह बाहर के प्रकाश से भीतर के अंधेरे के मिटने का कोई भी संबंध नहीं। और जब तक मैं अंधेरे में हूं, तब तक दुनिया में कितने ही सूरज जलते रहें, इससे कुछ भी होने वाला नहीं है।
आदमी अगर अंधेरा है, तो दुनिया कितनी ही प्रकाशित हो जाए, कुछ भी होने वाला नहीं। गांव-गांव में बिजली पहुंच जाए यह भी हो सकता है आज नहीं कल... । मैं एक रूसी किताब पढ़ता था एक वैज्ञानिक की, उसकी योजना है कि सौ साल
के भीतर रात हम मिटा देंगे। हम हर गांव के ऊपर कुछ विशेष गैसेस का एक बादल इकट्ठा कर देंगे और उस बादल को जब चाहें तब हम जला सकते हैं और जब चाहें तब बुझा सकते हैं। वह गांव के कंट्रोल में होगा। गांव जब चाहे, जितना प्रकाश, उस बादल से पैदा किया जा सकता है। तब फिर रात को हम मिटा देंगे, रात मिट जाएगी। रात के मिटने में कोई बहुत कमी नहीं रह गई है।
लेकिन फिर भी आदमी का अंधेरा नहीं मिटेगा। विज्ञान बाहर के अंधेरे को मिटाने का प्रयास है, धर्म भीतर के अंधेरे को मिटाने का! इसलिए विज्ञान कितना ही सफल हो जाए, उससे धर्म को कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि धर्म का किसी और ही अंधेरे से संघर्ष है।
जिस ऋषि ने गाया है कि हे भगवान, मुझे अंधेरे से प्रकाश की तरफ से चल!
वह बड़ा पागल रहा होगा। हम उसको एक कमरे में लाकर खड़ा कर दें और सब बल्ब जला दें और कहें, क्यों फिजूल परेशान हो रहा है? कहां भगवान से प्रार्थना करता है? इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड से प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान से क्या संबंध है प्रकाश का? बिजली के दफ्तर से संबंध है। जितनी चाहो बिजली ले लो, प्रकाश कर लो।
तो वह ऋषि हम पर हंसेगा और कहेगा, तुम पागल हो गए हो। क्योंकि मैं जिस अंधेरे की बात कर रहा हूं, उसका बाहर के प्रकाश से कोई संबंध नहीं है। लेकिन, उस अंधेरे का ही हमें पता नहीं है। हम मानने को भी राजी नहीं होंगे कि हम अंधेरे में जी रहे हैं। कोई आदमी मानने को राजी नहीं होगा। आदमी क्रोध कर रहा हो और उससे कहो कि आप क्रोध में हो, तो वह कहता है, क्रोध? कहां है क्रोध? आप गलती में हैं, मैं क्रोध में नहीं हूं।
क्रोधी आदमी मानने को राजी नहीं होता कि क्रोध में है, क्योंकि अगर मानने को राजी हो जाए, तो क्रोधी होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। पागल आदमी मानने को राजी नहीं होता कि पागल हूं। पागलखाने में चले जाएं, अगर एकाध पागल भी आपको मिल जाए, जो मानने को राजी हो कि मैं पागल हूं, तो बड़ा चमत्कार हो। कोई पागल मानने को राजी नहीं है।
कोई पागल मानने को राजी नहीं है कि वह पागल है, पागलपन का एक लक्षण यह
भी है। बुद्धिमान आदमी को शक भी आ सकता है, पागल को शक भी नहीं आता। विलियम जेम्स पागलखाना देखने गया था। पागलखाने से देख कर लौटा और फिर बहुत परेशान हो गया। बहुत परेशान हो गया। रात भर सो नहीं सका, सुबह उठा तो एकदम उदास था। ऐसा था जैसे कि दस साल उम्र ज्यादा हो गई हो।
मित्रों ने पूछाः क्या हो गया है तुम्हें? कल से जब से तुम लौटे हो, खोए-खोए हो? विलियम जेम्स ने कहा कि मुझे एक शक आ गया और वह यह कि ये जितने लोग पागल के पागलखाने में बंद हैं, कल तक ये लोग भी ठीक थे और पागल हो गए। मैं अभी ठीक मालूम पड़ता हूं, कल मैं भी पागल हो सकता हूं, एक। दूसरे मुझे यह भी शक आता है कि मैंने पागलों से पूछा कि क्या तुम पागल हो? उन्होंने कहाः नहीं, कौन कहता है? उनमें से किसी को शक नहीं है कि वे पागल हैं। मुझे शक आ गया है कि कहीं यह हमारा ख्याल कि हम पागल नहीं हैं पागलों जैसा ही तो न हो। तो मैं चिंता में पड़ गया कि कहीं मैं पागल तो नहीं हूं?
उनके मित्र खूब हंसने लगे और उन्होंने कहा, तब निश्चित है कि तुम पागल नहीं हो, क्योंकि पागल को कभी शक नहीं आता है। पागल को शक ही नहीं आता कि वह पागल है।
मैंने तो यहां तक सुना है कि एक आदमी था अमरीका में। उस आदमी ने कोई सौ वर्ष पहले, एक, लिंकन की कोई शताब्दी मनाई जाती थी। उसमें लिंकन का पार्ट किया, वह लिंकन बना। वह लिंकन बन कर सारी अमरीका में नाटक किया उसने। एक वर्ष तक वह लिंकन का पार्ट ही करता रहा--आज इस गांव में, कल दूसरे गांव में, परसों तीसरे गांव में। साल भर। लंबा वक्त है।

साल भर में वह आदमी इस भ्रम में पड़ गया कि मैं लिंकन हूं। उसको यह ख्याल पैदा हो गया कि मैं लिंकन हूं।
रोज-रोज, रोज-रोज हमको भी तो इसी तरह ख्याल पैदा होता है। रोज-रोज जो होता है, वही ख्याल पैदा हो जाता है। अगर गांव में लोग रोज आपको नमस्कार करते हैं, तो आपको ख्याल पैदा हो जाता है कि आप नमस्कार के योग्य आदमी हैं और अगर गांव के लोग तय कर लें कि नमस्कार नहीं करना है, तो बड़ी बेचैनी होती है कि लोग कैसे पागल हो गए हैं। मैं नमस्कार के योग्य आदमी, कोई नमस्कार नहीं करता है। क्या हो गया है लोगों को?
उस आदमी ने साल भर तक लिंकन का पार्ट किया, साल भर तक लोगों ने उसे लिंकन माना। जहां भी गया उसका स्वागत हुआ, मालाएं पहनाई गईं, लोगों ने नमस्कार किया, लोगों ने धन्यवाद दिए। साल भर में वह भूल गया कि मैं कौन हूं। उसे ख्याल हो गया कि मैं लिंकन हूं। यह बहुत मुश्किल नहीं है।
घर लौट आया, लिंकन के ही कपड़े पहने हुए। पत्नी ने, बच्चों ने कहा कि आप
अब ये कपड़े उतार दीजिए। अब ये अच्छे नहीं मालूम पड़ते। अब लोग क्या कहेंगे? आप सड़क पर इन कपड़ों को पहन कर चलेंगे। नाटक में ठीक है।
उसने कहाः कैसा नाटक? मैं अब्राहम लिंकन हूं।
उसके घर के लोगों ने कहा कि शायद वह मजाक कर रहा है। लेकिन जब दो-चार दिन मजाक चली, तो और लंबी हो गई। मजाक थोड़ी देर चले तो समझ में आती है, फिर मुश्किल हो जाता है।
जब दो-चार दिन हो गए, वह लिंकन की अकड़ में बोलता है, लिंकन जहां अटकता, वहीं अटकता। लिंकन लंगड़ा कर चलता, तो वह भी लंगड़ा कर चलता। तब तो घर के लोगों ने कहा कि कुछ गड़बड़ हो गई है। घर के लोगों ने समझाने की कोशिश की लेकिन जितना समझाया उतनी मुश्किल होती चली गई।
वह आदमी जिद्द पकड़ता चला गया कि मैं लिंकन हूं। कमी क्या है मुझमें? आखिर लिंकन होने में मेरी कमी क्या रह गई है?
फिर उन्होंने सोचा कि किसी मनोवैज्ञानिक को दिखलाएं। यह तो बात आगे
बढ़ गई। वे उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गए। फिर रोज उसे समझाया कि तुम लिंकन नहीं हो। कहो कि लिंकन नहीं हो।
तो, एक छोटी सी मशीन होती है लाई-डिटेक्टर। अदालतों में अब तो उन्होंने उपयोग करना भी शुरू किया। एक छोटी सी मशीन है, जैसे वजन तोलने की मशीन होती है, वैसी छोटी मशीन है। उसके ऊपर आदमी को खड़ा कर देते हैं, उससे पूछते हैं कि दो और दो कितने होते हैं, तो वह कहता है, चार। वह झूठ क्यों बोलेगा? तो उसके हृदय की धड़कन एक तरह की होती है। ऐसा दस-पांच प्रश्न पूछते हैं, जिसमें झूठ बोला ही नहीं जा सकता। फिर उससे पूछते हैं, तुमने चोरी की? तो उसका हृदय तो कहता है, की, लेकिन ऊपर से कहता है, नहीं की। फिर हृदय की धड़कन में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। वह मशीन नीचे नोट कर लेती है कि यहां इस जगह पर इस आदमी के हृदय में दोहरी दिक्कत पैदा की। इसने एक दफा हां कहना चाहा, हृदय रुका, लेकिन कहा इसने और।
तो उस आदमी को, जो लिंकन हो गया था, मशीन पर खड़ा किया, और मनोवैज्ञानिक
ने उससे कई प्रश्न पूछे, यह तुम्हारी पत्नी है? उसने कहाः हां। यह तुम्हारा बेटा है? उसने कहाः हां। घड़ी में कितने बजे हैं? उसने कहाः इतने बजे हैं। फिर उसने पूछा, क्या तुम अब्राहम लिंकन हो? उस आदमी ने कहा--बहुत घबड़ा गया था, बार-बार हर आदमी यही पूछता है, उसने कहा, नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने खबर दी कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। भीतर तो उसने कहा कि हूं, अब्राहम लिंकन तो हूं ही, लेकिन कब तक झंझट को जारी रखो, तो उसने कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने कहा, यह आदमी झूठ बोल रहा है।
उस मनोवैज्ञानिक ने कहाः भाई ले जाओ, यह आदमी अब्राहम लिंकन है। जहां
तक मशीन का संबंध है। हम कुछ भी नहीं कर सकते। मशीन कहती है कि यह आदमी अब्राहम लिंकन है। और मशीन कभी गलती नहीं करती। मशीन कैसे गलती करेगी, गलती आदमी कर सकता है। यह आदमी गलती में हो सकता है। लेकिन मशीन थोड़े ही गलती में हो सकती है।

हमें पता ही नहीं है कि हम जो अपने को मान लेते हैं, वह हो जाते हैं। हमने अपना बाहर होना मान लिया है, हम वही हो गए हैं। हमने अपने भीतर होने को छोड़ ही रखा है, इसलिए हम भीतर हमारा कुछ भी होना नहीं है।
हमने बाहर अपना होना मान लिया है कि मैं किसी का पिता हूं, किसी का भाई हूं, किसी का मित्र, किसी का दुश्मन, कोई मेरा नौकर, मैं किसी का नौकर। हमने बाहर कुछ मान रखा है, वह हम हो गए हैं। वह सब अब्राहम लिंकन होना है। और मशीन पर भी खड़ा करके पूछा जाए, तो मशीन भी कहेगी, यही ठीक है। कि यह आदमी, इसका नाम रामचंद्र है। हालांकि रामचंद्र बिल्कुल माना हुआ नाम है। लिंकन और रामचंद्र होने में कोई फर्क नहीं है। पैदा होकर कोई नाम लेकर नहीं आता है। एक नाम हम मान लेते हैं कि यह मैं हूं, फिर हम वही हो जाते हैं। इस आदमी का क्या कसूर है, अगर इसने साल भर में मान लिया है कि मैं लिंकन हूं। तो तीस साल में हम मान लेते हैं। आखिर अब्राहम लिंकन को भी नाम सिखाया ही गया होगा। वह भी कोई लेकर नहीं आए थे। असली अब्राहम लिंकन भी मान कर बैठा हुआ है कि मेरा नाम है।
हमने बाहर अपना होना मान रखा है, जो बिल्कुल झूठा है, कामचलाऊ है, काम
चल जाता है, हम अपने घर पहुंच जाते हैं, ठीक ठिकाने। हमारा नाम है, दफ्तर में पता है, हमारी नौकरी चल जाती है ठीक से। हमारी दुकान है, बोर्ड लगा है, वह सब पहचान हैं हमारी। लेकिन भीतर हम कौन हैं, हमें पता भी नहीं है। हमने यह मान रखा है, हम यही हो गए हैं। हमने बाहर के अतिरिक्त कभी भीतर की तरफ आंख नहीं की।
इन आने वाले दिनों की चर्चाओं में इस संबंध में ही एक-एक कदम मैं बात करना चाहूंगा कि कैसे हम भीतर जाएं। पहली बात जो इस सुबह आपसे कहना चाहता हूं वह यह है कि भीतर जाने से हम बहुत डरे हुए हैं। क्योंकि वहां अंधकार है, घनघोर अंधकार है, साधारण नहीं। और मैं आपको आश्वासन नहीं देता कि भीतर जाएं तो एकदम आनंद उपलब्ध हो जाएगा। यह बिल्कुल झूठी बात है। भीतर जाएंगे तो पहले तो बहुत चिंता, बहुत एंग्विस, बहुत घबड़ाहट, बहुत बेचैनी, बहुत अशांति पैदा हो जाएगी। लेकिन अगर उसको पार कर सके, तो बहुत आनंद, बहुत शांति, बहुत कुछ उपलब्ध हो जाता है।
लेकिन जिन्हें भी पर्वतों को चढ़ना हो उन्हें बीच की कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। और जिन्हें भी गहरे सत्य खोजने हों उन्हें गहरा उतरना पड़ता है। और जिन्हें अपने को जानना हो उन्हें उस सबसे गुजरना पड़ेगा जो हमको घेरे हुए है, जिसकी वजह से हम बाहर ही बाहर जीते हैं।
जैसे मैं अपने इस घर में हूं और दरवाजे के बाहर ही रहता हूं; क्योंकि भीतर कमरे में बहुत घनघोर अंधकार है, सांप-बिच्छू भी हो सकते हैं, भूत-प्रेत भी हो सकते हैं। कभी थोड़ा झांकता हूं, फिर डर लगता है, अंधेरा, फिर द्वार बंद कर देता हूं। फिर धीरे-धीरे मैं यह मान ही लेता हूं; क्योंकि यह अंतिम ढंग से द्वार बंद करने का उपाय है कि भीतर कुछ है ही नहीं, जो भी है वह बाहर है।
हर आदमी ने यह मान रखा है कि जो भी है सब बाहर है। इस मान रखने में एक बहुत अनकांशस सप्रेशन, एक बहुत अचेतन दमन है और वह यह है कि भीतर को इनकार कर दो; क्योंकि भीतर में बहुत डर लगता है, बहुत घबड़ाहट मालूम होती है। न मालूम क्या हो, उधर जाओ ही मत। इनकार ही कर दो कि वह है ही नहीं, भीतर कुछ है ही नहीं। बाहर जीयो, शांति से बाहर ही जीयो, बाहर ही रहो, बाहर ही में से गुजर जाओ।
भौतिकवाद पदार्थ का आग्रह नहीं है। मैटीरियलिज्म पदार्थ का आग्रह नहीं है। भौतिकवाद इस बात का आग्रह है कि भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर है ही नहीं, भीतर असत्य है, जो भी है बाहर है, बी आउट साइड, बस वही सत्य है, बी इनफ। ऐसी कोई चीज ही नहीं है। भौतिकवाद पदार्थ का आग्रह नहीं है। बहुत गहरे में भौतिकवाद का कहना है, बाहर ही सब कुछ है, भीतर कुछ भी नहीं है। बड़े मजे की बात है। लेकिन, अगर बाहर ही सब कुछ हो और भीतर कुछ भी न हो, तो बाहर सब एकदम व्यर्थ हो जाता है। बाहर की कोई भी सार्थकता भीतर के संदर्भ में, बाहर हो ही तब सकता है जब भीतर हो।

एक थैली मेरे पास है और मैं कहूं कि बस इस थैली के बाहर ही सब कुछ है, भीतर कुछ भी नहीं है, तो बाहर व्यर्थ हो गया, अर्थहीन हो गया। सब बाहर, किसी भीतर का ही छोर है। और बाहर को जानने के लिए किसी को भीतर खड़ा होना जरूरी है, नहीं तो बाहर का कोई पता भी नहीं चलेगा।
मुझे आप बाहर दिखाई पड़ रहे हैं; क्योंकि मैं बाहर नहीं हूं, मैं कहीं भीतर खड़ा हूं। मैं आपको बाहर दिखाई पड़ रहा हूं; क्योंकि आप भी बाहर नहीं हैं, कहीं भीतर खड़े हैं। बाहर का बोध ही भीतर की चेतना को है, लेकिन जिसे बोध है हम उसे ही भुलाने की कोशिश में संलग्न हैं। और हम करीब-करीब सफल हो जाते हैं, हमारी सफलता बहुत महंगी है।
इन तीन-चार दिनों में मैं यह सुझाना चाहूंगा कि यह हमारी बाहर की सफलता बहुत मंहगी, बहुत झूठी है, और एक बहुत बड़ी असफलता को छिपाए हुए है, भीतर के अंधकार को, भीतर के अज्ञान को। और हमने यह बाहर की सफलता में इसीलिए इतनी तेजी से दौड़ लगाई है कि भीतर का पता ही न चले। दौड़ में पता नहीं चलता है। आदमी रुकता है, तो पता चलता है। भागो, तो पता नहीं चलता है। भूल ही जाता है आदमी कि भीतर भी कुछ है।
बाहर, बाहर, बाहर। तेज और तेज। आदमी की स्पीड बढ़ती चली गई है। इस स्पीड
के बढ़ने में बहुत बुनियाद में कारण अगर खोजे जाएं, तो इतना ही नहीं है कि आदमी को चांद पर पहुंचना है। आदमी की स्पीड और गति में बढ़ने में बहुत बुनियादी कारण यह है कि थोड़ी गति में आदमी को अपना बोध होता है। तेज गति में अपना बोध भूलता है। जितनी तेज गति हो उतना खुद को भूलने की सुविधा है। इसलिए अमरीका में जहां खुद को भूलने के सर्वाधिक उपाय चलते हैं, तेज
से तेज गति होती चली जाती है। कार सौ मील से नीचे चले, तो वह चल ही नहीं रही है। वह चले जितनी तेज गति पर, वह इतनी तेज गति में हो कि मुझे मेरे होने का ठिकाना न रहे, गति को सम्हालने में ही व्यस्त हो जाऊं। एक भी क्षण मौका न मिले कि मैं जान सकूं कि मैं भी हूं।
तो तेज करते जाओ जीवन की गति को, ताकि जीवन का पता न चल सके। तो गति स्वयं को भुलाने का उपाय तो नहीं है। जोर से धन कमाए चले जाओ, इतने जोर से गिनो धन को कि अपनी गिनती का सवाल न रहे। इतनी गिनती हो जाए धन की कि हम अपने को गिनने का मौका न पाएं। कहीं धन को बढ़ाना, स्वयं को भूल जाने का उपाय तो नहीं है?
बढ़ो पदों पर, छोटी मिनिस्ट्री से बड़ी मिनिस्ट्री पर जाओ, अहमदाबाद से दिल्ली जाओ, बढ़ते चले जाओ। इस बढ़ते चले जाने में कहीं ऐसा तो नहीं है कि अगर हम खड़े हो गए कहीं तो अपना पता चलने लगेगा? वह नहीं चलना चाहिए। भागते जाओ, भागते जाओ। राजनीति की सारी दौड़-धूप, धन की सारी तीव्रतम गति, विज्ञान को उपलब्ध हुए सारे साधन, आदमी अपने को भुलाने के काम में लाता है। इससे मनुष्यता का कोई भी हित नहीं हो सकता।
मनुष्य स्वयं के भीतर जाए बिना सत्य को नहीं जानता, न जीवन को जानता है। और हम अगर जीवन के मंदिर में ही प्रविष्ट न हो सके, तो हमारी परमात्मा की सारी बातें झूठी हैं। वह है, वह सबके भीतर है, लेकिन खोजना जरूरी है। प्रकाश है, लेकिन खोजना जरूरी है। अंधेरे की यात्रा जरूरी है।
एक अंतिम वचन अपनी बात पूरी करूंगा।
नीत्शे ने कहा है, और पृथ्वी पर जिन थोड़े से लोगों ने भीतर के अंधकार
का साक्षात किया है उसमें नीत्शे अदभुत है। उसी में पागल हो गया, उस अंधेरे की घबड़ाहट ने पागल कर दिया। नीत्शे ने कहा हैः जिन वृक्षों को आकाश छूना हो, उन्हें अपनी जड़ें पाताल तक भेजनी पड़ती हैं। जिस वृक्ष को आकाश छूना हो, उसे अपनी जड़ें पाताल तक भेजनी पड़ती हैं। और जिसे प्रकाश खोजना हो, उसे अंधकार की अंतिम गहराइयों में उतरना पड़ता है। उलटी लगेगी यह बात, कि अगर प्रकाश खोजना है, तो अंधकार से क्या संबंध? और अगर आकाश की तरफ जाना है, तो पाताल में जड़ें क्यों भेजें?
लेकिन ध्यान रहे, जितनी छोटी जड़ नीचे जाती है उतना वृक्ष ऊपर कम जाता है। जितनी जड़ नीचे गहरी जाती है अंधकार में, उतना ही वृक्ष की शाखाएं ऊपर उठती हैं सूर्य के प्रकाश में। ऊपर की शाखाएं सूर्य के प्रकाश को चूमना चाहती हों, तो नीचे की शाखाओं को गहनतम अंधकार छूना पड़ता है।

आदमी भी, आदमी भी एक वृक्ष है, और भीतर अंधकार भी है और प्रकाश भी।
लेकिन जो अंधकार में उतरने की हिम्मत नहीं रखते वे कभी प्रकाश तक नहीं पहुंच पाते हैं।
पहला सूत्र हैः अंधकार में उतरने का साहस। तो फिर प्रकाश बहुत दूर नहीं है। कैसे अंधकार का साक्षात करें? वह संध्या आपसे मैं बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
दूसरा प्रवचन

जीवन का नियम

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक युवा संन्यासी किसी आश्रम में मेहमान था। आश्रम के वृद्ध फकीर से उसने आत्मा के संबंध में कुछ बातें पूछीं। लेकिन वह वृद्ध फकीर दिन भर हंसता रहा और कोई जवाब न दिया।
जो भी जानते हैं, उन्हें जवाब देना बहुत मुश्किल है। जो नहीं जानते हैं, उन्हें जवाब देना बहुत ही आसान है।
सांझ हो गई, अंधेरा घिरने लगा, वह युवक खोजी वापस लौटने को हुआ। द्वार
पर आया, अमावस की रात है, सूरज ढल गया, अंधेरा घिर गया, जंगल का रास्ता है। सीढ़ियां उतरते समय वृद्ध फकीर से वह कहने लगा, बहुत अंधेरा है, कैसे जाऊं? उस बूढ़े फकीर ने कहाः जो अंधेरे में नहीं जा सकता, वह जा ही नहीं सकता है। सारे जीवन में ही अंधेरा है, अंधेरे में ही जाना पड़ेगा।
फिर भी वह युवक डरा हुआ मालूम पड़ा, अनजान रास्ता है, जंगल है, भटक जाने
का डर है। उसने कहाः कोई दीया न दे सकेंगे?
वह वृद्ध फकीर फिर हंसने लगा। एक दीया जला कर लाया, उस जवान के हाथ में दिया। और जब जवान दीये को लेकर उतरता था सीढ़ियां, तब उस बूढ़े फकीर ने फूंक मार दी और दीया बुझा दिया। और उस युवक को कहाः बाहर के रास्तों पर तो मैं तुम्हें दीया दे दूंगा, लेकिन भीतर के रास्तों पर कौन तुम्हें दीया देगा? और बाहर के रास्तों पर कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था हो सकती है, लेकिन भीतर के रास्ते पर बाहर से प्रकाश का कोई आयोजन संभव नहीं है। और अगर भीतर जाना हो, तो अंधेरे से जाना ही पड़ेगा। जिस आत्मा की तुम बात पूछते थे, अंधेरे से गुजरे बिना कोई उस आत्मा को कभी नहीं पा सका। आत्मा तो प्रकाश है, लेकिन अंधेरे से गुजर जाना जरूरी शर्त है।
असल में जो व्यक्ति चिंता की आखिरी घड़ियों से गुजर जाता है, अशांति के गहरे से गहरे पर्दों को पार कर जाता है, संताप की गहरी से गहरी वृष्टि को झेल लेता है, अंधेरे के गहन से गहन पर्दों में कूद जाता है, उसकी जिंदगी में प्रकाश का उदय सुनिश्चित है।
लेकिन अंधेरे से एक डर है। बाहर के अंधेरे से डर है और इसी कारण धीरे- धीरे भीतर के अंधेरे से भी डर हो गया है। इसीलिए हममें से कोई भी भीतर नहीं जाना चाहता है। कोई भी भीतर नहीं झांकना चाहता है। क्यों डर गए हैं हम अंधेरे से?
शायद कुछ कारण हैं, वह हम समझ लें, तो अंधेरे से निर्भय भी हो सकते हैं। और जो अंधेरे से भयभीत है, वह अंधेरे में ही जीएगा। और जो अंधेरे से निर्भय हो जाता है, वह अंधेरे को पार कर जाता है। असल में भय से बड़ा कोई अंधेरा नहीं है। क्यों हम अंधेरे से भयभीत हैं?
शायद मनुष्य-जाति की बहुत आदिम अनुभूतियां कारण हैं। कोई लाखों वर्ष पहले आदमी के पास प्रकाश का कोई भी साधन नहीं था। लाखों वर्ष पहले आदमी के पास प्रकाश का कोई भी साधन न था। गुफाओं में जीवन था--पहाड़ों में, जंगलों में, खतरे में। रात का अंधेरा बहुत भयभीत करने वाला था, क्योंकि रात ही जानवर आदमी को उठा ले जाते थे। दिन के प्रकाश में तो आदमी जानवरों से रक्षा कर लेता था, रात के अंधेरे में असुरक्षित हो जाता था।
हमारे मन में आदिम वही भय अब तक बैठा हुआ है। भय वही है, परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। और इसीलिए जब पहली बार अग्नि का आविष्कार हुआ और आदमी आग जला सका, तो आग आदमी का पहला देवता बन गया। आग भगवान की पहली मूर्ति बन गई।
अग्नि की आदमी ने पूजा की, हवन किए, अग्नि के मंदिर बनाए। वह सब इस बात
की स्वीकृति थी कि अंधेरे से आदमी बहुत पीड़ित हो चुका था। प्रकाश ने बड़ी राहत दी। रात का डर भी कम हो गया। लेकिन भीतर की दुनिया में अब भी अंधेरा है। और बाहर के अंधेरे का भय भीतर के अंधेरे से भी भयभीत किए हुए है।

वहां भी पशुओं का डर है, वहां भी जानवरों का डर है। वे जानवर बाहर के जानवर नहीं हैं, अपने ही भीतर के जानवर हैं। वहां भी उतना ही खतरा है, शायद ज्यादा खतरा है; क्योंकि भीतर क्रोध है, लोभ है, और हजार तरह के खतरे हैं, जो आदमी को डुबा लें, और इसलिए हम भीतर झांकने में डरते हैं।
अगर कभी एकांत में बैठ जाएं और दस मिनट के लिए मन में जो भी चलता हो उसे एक कागज पर लिख लें, तो अपने निकटतम मित्र को बताना भी मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि जो मन में चलता है वह इतना घबड़ाने वाला है, वह इतना डराने वाला है कि हम भी यह स्वीकार नहीं कर सकते कि हमारे काल्पनिक भय ही हमें इतना भयभीत किए हुए हैं। वे जो स्वयं को नहीं जानते, उनका भाग्य अंधेरे में ही घिरा है। वे अंधेरे में ही जीएंगे और मरेंगे। बाहर के अंधेरे ने भीतर के अंधेरे से भी हमें भयभीत कर दिया है। और हम छोटे से बच्चे को भी अंधेरे से भयभीत होने की शिक्षा देते हैं, जो बड़ी खतरनाक है।
अगर मां-बाप समझदार होंगे और आने वाली दुनिया अच्छी होगी, तो हम बच्चों को अंधेरे में जीने का आनंद लेने की शिक्षा देंगे। क्योंकि एक बार अंधेरे से कोई भयभीत हो जाए, तो फिर भीतर उतरना बहुत मुश्किल है; क्योंकि भीतर अंधेरा पार करना ही पड़ेगा। और इतना अंधेरा बाहर है ही नहीं, जितना अंधेरा भीतर है। उतनी रोशनी भी बाहर नहीं हैं, जितनी भीतर मिलेगी। लेकिन अंधेरे से जो गुजरेगा, उसी को मिलेगी। जो भीतर की रात पार करेगा, वह भीतर की सुबह को भी पहुंचेगा। भीतर की रात पार किए बिना, छलांग लगा कर, भीतर के सुबह पर पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। और भगवान की कोई कितनी ही प्रार्थना करे, कितनी ही खुशामद करे और कितनी ही भगवान को रिश्वत देने का वायदा करे कि नारियल चढ़ाएंगे, और यह करेंगे और वह करेंगे।
भीतर के अंधेरे से बचे बिना कोई भी नहीं पहुंच सकता वहां जहां प्रकाश है। अनिवार्य शर्त है, गुजरना ही पड़ेगा। मूल्य है जो चुकाना ही पड़ेगा।
और हम छोटे से बच्चे को अंधेरे से भयभीत कर देते हैं। हम अपना भय छोटे बच्चों के ऊपर हावी कर देते हैं। उनके मन को हम कंडीशन कर देते हैं, वे अंधेरे से भयभीत हो जाते हैं। और अंधेरे से भयभीत आदमी भीतर जाने की कल्पना ही छोड़ देता है। कंडीशनिंग बहुत खतरनाक है। कुछ भी संस्कार मजबूत किया जा सकता है।
पावलफ हुआ रूस में एक मनोवैज्ञानिक। उसने बहुत कंडीशनिंग पर संस्कार पड़ने पर काम किया है, और बड़े अदभुत उदघाटन किए हैं। एक कुत्ते के साथ उसने एक छोटा सा प्रयोग किया।
रोज कुत्ते को भोजन देता है, जब भी रोटी सामने रखता है कुत्ते की जीभ लटकने लगती है, लार टपकने लगती है। वह जब भी उसे खाना देता है, साथ में घंटी भी बजाता है। अब घंटी से लार टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। किसी कुत्ते के सामने घंटी बजाएं, लार नहीं टपकेगी। पंद्रह दिन तक खाना दिया जाता है, घंटी बजाई जाती है, साथ ही कुत्ते के मन में रोटी और घंटी जुड़ गई, एसोशियन हो गया है।
पंद्रह दिन बाद रोटी नहीं दी सिर्फ घंटी बजाई है पावलफ ने, और कुत्ते
की लार टपकने लगी, जीभ लटक गई। कुत्ते की लार का घंटी से कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन, अगर पंद्रह दिन तक रोटी के साथ घंटी बजाई जाए, तो घंटी से भी लार का संबंध हो जाता है।
मनुष्य के मन को हम किन्हीं भी चीजों से जोड़ दे सकते हैं। आदमी अंधेरे
से डर गया है--बाहर के अंधेरे से। और हर मां-बाप अपने बच्चे को बाहर के अंधेरे से डरा रहा है। जैसे उसके मां-बाप ने उसे डराया था, वह अपने बच्चों को डरा रहा है। आने वाले बच्चों को उनके बच्चे डराते रहेंगे। मनुष्यता लाखों वर्ष से अंधेरे के भय को एक-दूसरे को सौंप जाती है।
और जब अंधेरे से कोई भयभीत हो गया, तो फिर यह सवाल नहीं है कि वह अंधेरा बाहर का है, या भीतर का है। अंधेरे का भय, सब अंधेरे का भय बन गया है। फिर भीतर जाने में डर शुरू हो जाएगा। और इसी तरह की और कुछ बातें अंधेरे से जुड़ी हुई हैं। अकेले होने से भी हम डरते हैं।

सच तो यह है अंधेरे में जो डर है वह भी अकेले होने का डर है। अभी यहां रोशनी है, तो यहां कोई भी अकेला नहीं है। सब बाकी लोग हमें दिखाई पड़ रहे हैं। मैं आपको देख रहा हूं, आप मुझे देख रहे हैं।
अभी घुप्प अंधेरा हो जाए, हम सब अकेले हो गए। फिर कोई किसी को नहीं दिखाई पड़ रहा है, सिर्फ एक अपने को छोड़ कर। क्योंकि अपने को देखने की कोई जरूरत नहीं है। अपने को बिना देखे भी हम जानते हैं कि हम हैं, लेकिन दूसरे को बिना देखे हम नहीं जानते हैं कि वह है। दूसरे को बिना देखे हम नहीं जानते हैं कि वह है। दूसरा हमें दिखाई पड़ता है तो ही है। अंधेरे में हम अकेले हो जाते हैं, और बचपन से अकेले होने के संबंध में भी हमें भयभीत किया जा रहा है। छोटे बच्चों को हम अकेला नहीं छोड़ते हैं, अकेला कहीं जाने नहीं देते हैं, सदा कोई साथ है। साथ धीरे-धीरे मजबूत होता चला जाता है।
और जिसे भीतर जाना है उसे अकेला होना पड़ेगा। साथ कोई भीतर नहीं जा सकता। बाहर की यात्रा पर कोई भी साथी हो सकता है--संगी हो सकता है, मित्र हो सकता है--भीतर की यात्रा पर तो कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं। वहां तो असंग, अकेले, अलोन, वहां तो अकेले ही जाना पड़ेगा।
और हमारी बचपन से लेकर मरने तक की सारी व्यवस्था साथ होने की व्यवस्था है। समाज का मतलब हैः साथ होना। समाज की पूरी की पूरी व्यवस्था साथ होने की व्यवस्था है।
और धर्म की व्यवस्था है अकेला होना। धर्म और समाज का मेल नहीं है। धर्म और समाज का मेल हो भी नहीं सकता। लेकिन हमने धर्म को भी सामाजिक बना लिया है। हम इतने भयभीत लोग हैं अकेले होने से कि मंदिर में भी हम भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं। और जिस मंदिर में जितनी ज्यादा भीड़ इकट्ठी होती है वह मंदिर उतना सच्चा मालूम पड़ता है। क्योंकि भीड़ आराम देती मालूम पड़ती है।
इसलिए जिस धर्म ने जितनी भीड़ इकट्ठी कर ली है वह उतना बड़ा धर्म है।
अगर ईसाईयों ने संख्या ज्यादा कर ली, तो वह ज्यादा बड़ा धर्म हो गया।
और अगर मुसलमानों ने इकट्ठी कर ली, तो वे बड़े हो गए। अगर हिंदुओं ने इकट्ठी कर ली, तो वे बड़े हो गए।
जिसने जितनी भीड़ इकट्ठी कर ली, वह उतना बड़ा हो गया। जबकि धर्म का संबंध भीड़ से बिल्कुल नहीं है। धर्म का संबंध ही समाज से नहीं है। असल में समाज की सारी व्यवस्था हमें धार्मिक होने से रोक लेती है; क्योंकि समाज का मूल स्वर है सबके साथ। समाज का मतलब हैः साथ होना, टू बी विथ। और धर्म का मतलब हैः अकेले होना, टू बी अलोन। इन दोनों का क्या मेल है।
लेकिन हम अकेले होने को राजी नहीं हैं। हम अकेले होने को राजी नहीं। हमें बचपन से डराया गया है। शायद जन्मों-जन्मों से हम डरे हुए हैं। अकेले में डर है, कोई अकेला नहीं होना चाहता। इसलिए हम किसी तरह के दल बनाते हैं। सब दल भय पर खड़े हुए हैं। भयभीत आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। और ध्यान रहे, अगर एक आदमी भयभीत है, तो दस आदमी, दस गुने ज्यादा भयभीत हो जाते हैं। और कोई फर्क नहीं पड़ता है।
अगर एक आदमी भयभीत है, तो दस आदमी इकट्ठे होने से क्या फर्क पड़ेगा? अगर
एक आदमी गरीब है तो दस गरीब आदमी इकट्ठे होने से अमीर नहीं हो जाते। और अगर एक आदमी बीमार है, तो दस बीमार इकट्ठे होने से स्वस्थ नहीं हो जाते। और अगर एक आदमी पागल है, तो दस पागल इकट्ठे होने से ठीक नहीं हो जाते। दस पागल दस गुने पागल हो जाते हैं। एक पागल बहुत कम खतरनाक है, दस गुने पागल बहुत खतरनाक हैं। और दस में जोड़ ही नहीं होता, गुणनफल हो जाता हैः दस पागल एक कमरे में इकट्ठे कर दें तो दस पागल नहीं हैं, दस गुणे दस, एक-दूसरे को काटेंगे और क्रास करेंगे।
भयभीत आदमी दल इकट्ठे कर रहा है। भयभीत आदमी संगठन बना रहा है। भयभीत आदमी राष्ट्र बना रहा है, नेशंस बना रहा है। सब भयभीत आदमी की चेष्टाएं हैं। अकेले होने में डर है, इसलिए कोई साथ होना चाहिए। किसका साथ होना चाहिए? कोई भीड़ होनी चाहिए जिसमें मैं खड़ा हो जाऊं और मैं विश्वस्त हो जाऊं कि मैं अकेला नहीं हूं, मेरे साथ और लोग भी हैं। और वे लोग भी मेरी वजह से विश्वस्त हैं कि डर नहीं है साथ कोई है। और सभी इस तरह से विश्वस्त हैं।

हमारे सारे संगठन भय के संगठन हैं। राष्ट्र हो, समाज हो, पार्टियां हों, धर्म हों, संप्रदाय हों, सब भय के संगठन हैं। और भय से धर्म का क्या संबंध हो सकता है? इसलिए धर्म का कोई संगठन नहीं हो सकता। धर्म का कोई ऑर्गनाइजेशन नहीं हो सकता। धर्म तो उन थोड़े से लोगों की बात है, जो अकेले जाने का साहस जुटा सकते हैं, जो बिल्कुल अकेले हो सकते हैं। हम कभी बिल्कुल अकेले नहीं होते। हां, यह हो सकता है कि आप कभी एक कोठे में अकेले बैठे हों, लेकिन फिर भी अकेले नहीं होते।
जापान में एक फकीर था, नानइन। एक आदमी उसके पास आया। वह अपनी पत्नी को छोड़ आया, मित्रों को छोड़ आया। वह संन्यासी होने आ गया। उसने नानइन का दरवाजा खोला। नानइन अकेला बैठा है अपने मंदिर में। वह युवक भीतर आया और उसने कहा कि मैं सब छोड़ कर आ गया हूं। मुझे दीक्षा दे दें। मैं भी उसकी खोज करना चाहता हूं जो प्रकाश है।
उस फकीर ने नीचे से ऊपर तक देखा और कहाः अकेले? अपने साथ की भीड़ बाहर छोड़ कर आओ।
उस युवक ने पीछे लौट कर देखा। उसके साथ कोई भी नहीं है। उसने कहाः आप मजाक तो नहीं करते हैं, मैं बिल्कुल अकेला हूं।
उस फकीर ने कहाः पीछे मत देखो, पड़ोस में मत देखो, आंख बंद करो, भीतर देखो।
उस युवक ने आंख बंद की और भीतर देखा। जिस पत्नी को वह छोड़ आया है, वह खड़ी है। जिन मित्रों को वह छोड़ आया है, वे सब वहां खड़े हैं। वहां भीतर भीड़ पूरी मौजूद है।
उस फकीर ने कहाः जाओ, सारी भीड़ छोड़ आओ। और अगर भीड़ छोड़ सको, तो यहां आने
की कोई जरूरत नहीं; क्योंकि मैं भी तुम्हारे लिए भीड़ बन जाऊंगा। भीड़ छोड़ दो और अकेले हो जाओ।
और अकेले होते ही वह क्रांति घट जाती है। जो मनुष्य को वहां ले जाती
है जहां हमारे अंतर्तम का निवास, जहां अंतर्यामी का निवास है। लेकिन उस मंदिर में कभी दो नहीं जा सकते। और हम सब साथ जाना चाहते हैं, पूरी भीड़ के साथ।
हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सब धार्मिक हैं। भीड़, भीड़ कभी धार्मिक नहीं होती। भीड़ अनिवार्य रूप से अधार्मिक होती है। और इसीलिए भीड़ जितने अधार्मिक काम करती है अकेले आदमियों ने कभी नहीं किए। भीड़ में अच्छा आदमी भी फौरन बुरा हो जाता है। क्योंकि भीड़ में जुड़ते ही उसकी आत्मा खो जाती है, वह सिर्फ भीड़ का एक हिस्सा होता है। फिर भीड़ जो करती है--आग लगाती है, तो वह भी आग लगाता है।
मैं उन लोगों से मिला हूं जिन्होंने हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे के समय आदमीयत खो दी और जंगली हो गए। जिन्होंने आगें लगाईं, स्त्रियों को चीरा-फाड़ा, छोटे बच्चों को काटा। उन सब लोगों को मिला हूं। उनसे मैंने पूछा कि तुम अकेले यह सब कर सकते हो?
उन्होंने कहाः अकेले? तो हम आज सोचते हैं, तो हमें विश्वास नहीं आता
कि हमने यह कभी किया। हम नहीं कर सकते। लेकिन भीड़ के साथ सब हो गया। हम थे ही नहीं, भीड़ थी। भीड़ आग लगा रही थी, हम उसके हिस्से थे।
भीड़ ने जितने पाप किए हैं दुनिया में उतने अकेले आदमियों ने कभी नहीं किए। अकेला आदमी पाप करने में भी डरता है। भीड़ के साथ वह डर भी खत्म हो जाता है। और ध्यान रहे, हम सब, हममें से कोई भी, अकेला होने को राजी नहीं है। तो अंधेरे से प्रकाश की यात्रा भी नहीं हो सकती।
प्लोटिनस हुआ है एक मिस्टिक यूनान में। एक किताब लिखी है। किताब का नाम बहुत अदभुत है। किताब का नाम हैः फ्लाइट ऑफ द अलोन टु द अलोन, अकेले की उड़ान अकेले तक।
शायद सारे धर्म का सार इतना ही है, अकेले की उड़ान, अपने तक!
लेकिन हम सब तो भीड़ में जीने के आदी हैं। भीड़ छोड़ते से डर लगता है। अगर
आज पता चल जाए कि मैं हिंदू नहीं हूं, मैं भारतीय नहीं हूं, मैं कोई भी नहीं हूं, मैं निपट आदमी हूं, तो सब प्राण थरथरा जाएंगे। फिर मेरे साथ कोई भी

नहीं है। नहीं, मैं हिंदू हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं भारतीय हूं, मैं चीनी हूं, पाकिस्तानी हूं। तो इतनी भीड़ मेरे साथ है।
एक जैन संन्यासी को अभी कोई पंद्रह-बीस दिन पहले मिला। मैंने उनसे कहाः संन्यासी हो गए, फिर भी तुम जैन बने हुए हो? अब तो कम से कम जैन होना छोड़ दो। कम से कम संन्यासी को तो जैन, हिंदू, मुसलमान नहीं होना चाहिए। यह तो बहुत ही अभद्र है। बाकी लोग ठीक हैं, घर-गृहस्थी वाले लोग हैं, डरते हैं। अगर आदमी हिंदू नहीं रह जाएगा, लड़की की शादी कहां करेगा? कहां खोजेगा? क्या करेगा, क्या नहीं करेगा? दुख-सुख में कौन साथ होगा? कल मर जाएगा, और अगर हिंदू नहीं है, तो कौन मरघट तक पहुंचाएगा? मुसीबतें। लेकिन संन्यासी को तो कम से कम फिकर छोड़ देनी चाहिए।
उन्होंने कहाः क्या कहते हैं? अगर मैं जैन न रह जाऊं, तो मुझे भी रोटी मिलनी मुश्किल है। कौन मुझे रोटी देगा? कौन मुझे मंदिर में ठहराएगा?
तो फिर संन्यासी भी समाज का एक हिस्सा है, तो फिर संन्यासी भी संन्यासी नहीं है। फिर संन्यासी भी संन्यासी नहीं है। वह भी अकेले होने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है।
अकेले होने की हिम्मत, भीतर प्रवेश की अनिवार्य सीढ़ी है। और इसीलिए
हम अंधेरे से डरते हैं। अंधेरा अकेला करता है, प्रकाश हमें जोड़ देता है। प्रकाश में सब मालूम पड़ते हैं, सब हैं। और भी कुछ कारण हैं। प्रकाश परिचित मालूम पड़ता है, अंधेरे में कुछ भी अननोन, अपरिचित घट सकता है। कुछ नहीं जानता अंधेरे में क्या हो जाए, हम सजग नहीं हो सकते हैं। अंधेरे में कुछ भी हो सकता है।
प्रकाश में? प्रकाश में हम सजग हो सकते हैं। प्रकाश में हम जानते हैं, क्या हो रहा है? हम परिचित हैं चारों तरफ से। अंधेरे में हम अपरिचित हो जाते हैं। अपरिचित का बड़ा डर है, अपरिचित से बड़ा भय है। परिचित से हम अभय मालूम करते हैं, निर्भय मालूम होते हैं। जानते हैं इस आदमी को, जानते हैं इस मकान को, जानते हैं इस भाषा को। तो लगता है, जिसे हम जानते हैं, उससे भय कम है। क्योंकि उसे हम जानते हैं। अनजाना वह कुछ भी नहीं करेगा, लेकिन अनजान स्थिति हमें घबड़ाने लगती है।
और ध्यान रहे, भीतर जिसे जाना है, उसे अपरिचित में, अननोन में, अज्ञात में, अनजान में जाना ही पड़ेगा। उसे तो अनजान दुनिया की यात्रा करनी ही पड़ेगी। क्योंकि भीतर से हम बिल्कुल परिचित नहीं हैं। चाहे हमने कितने ही जन्मों की यात्रा की हो, हम बाहर से ही परिचित रहे हैं, भीतर से हमारा कोई परिचय नहीं है। अगर आज कोई जोर से आपको पकड़ ले, पूछे, कौन हैं आप? ... नहीं, सच में कोई पता नहीं है कि मैं कौन हूं? हां, कुछ तस्वीरें याद आती हैं, कुछ नाम याद आते हैं, कुछ पदवियां याद आती हैं। उन्हीं को मैंने समझा है कि वही मैं हूं।
लेकिन थोड़ा भीतर जाता हूं तो पता चलता है कि वह सब तो बाहर से चिपकाई
गई चीजें हैं, बाहर ही छूट जाती हैं। भीतर तो मैं कोई भी नहीं रह जाता हूं। जो भी मैं जानता हूं, कम से कम वह तो मैं नहीं हूं।
फिर मैं कौन हूं? और अगर कोई अपरिचित से डरता है तो स्वयं से ही डरता रहेगा। क्योंकि स्वयं से ज्यादा अपरिचित इस दुनिया में और कोई भी नहीं है। स्वयं से ज्यादा स्ट्रेंज और स्टेंजर, अजनबी और कोई भी नहीं है। आप अपने लिए अजनबी नहीं हैं। आप अपने को जानते हैं। कितने दिन अपने साथ रहे हैं, लेकिन अपने को कहां जानते हैं? कौन सा परिचय है हमें हमारा? कौन सी पहचान है हमें हमारी? कल अगर हमारे कपड़े उतार लिए जाएं और नाम छीन लिया जाए, तो पहचानना मुश्किल हो जाएगा।
एक आदमी दूसरे महायुद्ध में चोट खा गया, गिर पड़ा। और भूल गया कि मैं कौन हूं। नाम भी भूल गया, गांव भी भूल गया। बड़ी मुश्किल हो गई। युद्ध में कहीं उसका नंबर भी खो गया था, जब उसे लाया गया स्ट्रेचर पर, उसका नंबर भी नहीं था। नंबर होता तो पता चल जाता।
कितनी झूठी है हमारी पहचान कि नंबर से पता चलता है कि कौन है यह आदमी? उसका नंबर भी कहीं गिर गया है। उसके नंबर का भी कोई पता नहीं कि वह कौन है।

यह भी तय करना मुश्किल है कि मित्र है कि शत्रु है। वह अपनी तरफ से लड़ता था कि दुश्मन की तरफ से लड़ता था, यह भी कुछ पता नहीं। वह आदमी सब भूल गया।
फिर युद्ध के बाद खोज-बीन शुरू हुई कि उस आदमी को उसके गांव पहुंचाया जाए उसके घर। लेकिन कौन उसके पिता हैं, कौन उसकी पत्नी है? आखिर यही तय हुआ, उसे दस-पांच गांवों में ले जाया जाए और उससे कहा जाए कि वह पहचाने कि यह गांव कुछ पहचान आता है?
एक गांव में ले गए, वह आदमी अजनबी की तरह खड़ा हो गया, कुछ पहचान नहीं आता। उसने कहा कि नहीं, यहां तो मुझे कुछ याद नहीं आता कि मैं कभी आया हूं? दूसरे गांव ले गए, तीसरे गांव ले गए, दसवें गांव ले गए, पंद्रहवें गांव
ले गए, घबड़ा गए। वह आदमी पहचान ही नहीं पाता। फिर यह शक हुआ कि हो सकता है वह अपने गांव को भी भूल गया हो। लेकिन आखिरी में सफलता मिल गई। एक गांव में उसे उतारा और वह भागा, दा.ैडा, गलियों को पार किया। जो साथी आए थे खोजने उसके पीछे दौड़ रहे हैं। एक दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हो गया। भीतर चला गया। उसके मित्रों ने कहाः यही है? उसने कहाः यही मेरा घर है।
हम भी बाहर हैं और भूल गए हैं कि कौन हूं मैं? और भीतर न जाएंगे तो वह घड़ी न आएगी कि हम उस घर पर पहुंच जाएं जहां हम कह सकें यही हूं मैं, यही रहा मेरा घर। लेकिन बाहर-बाहर इस घर को बनाते हैं, उसको मिटाते हैं, कोई मेरा घर नहीं है, कोई मेरी पहचान नहीं है और भटकते चले जाते हैं, भटकते चले जाते हैं।
जो जानते हैं वे कहते हैं जन्मों से यह भटकन है। बहुत जन्मों से यह भटकन है। और बहुत जन्मों तक यह भटकन चल सकती है। क्योंकि उसके बुनियादी कारण अगर शेष रह गए, तो चलती ही रहेगी, चलती ही रहेगी। इससे सवाल नहीं उठता कि कितनी बार हमने यात्रा की है एक रास्ते पर। सवाल यह है अगर गलत रास्ते पर यात्रा कर रहे हैं, तो कितनी ही बार यात्रा करें, कहीं पहुंच नहीं सकेंगे। हम बाहर ही यात्रा किए चले जा रहे हैं। बाहर, और बाहर, और बाहर, होते चले जा रहे हैं।
भीतर हम कदम ही नहीं उठाते। लेकिन अपरिचित से हमें डर लगता है। अगर मैं अपरिचित हूं, तो रात मेरे साथ कमरे में ठहरने में बहुत डर लगेगा। तो पहले आप परिचय बना लेना चाहेंगे, आप कौन हैं, क्या नाम है, क्या धर्म है, क्या करते हैं? ट्रेन में भी किसी आदमी के साथ आप अकेले हैं एक डिब्बे में, तो वह जल्दी से बेचैनी जाहिर करेगा, वह पहले परिचित हो जाना चाहेगा कौन हैं आप?
और आप उससे कह दें कि मैं एक हत्यारा हूं, तो फिर वह रात भर नहीं सो पाएगा। या आप कह दें कि मैं एक चोर हूं, तो फिर रात भर नहीं सो पाएगा। या अगर वह ब्राह्मण है और आप कह दें कि मैं शूद्र हूं, तो भी रात भर नहीं सो पाएगा। या अगर वह हिंदू है, आप कह दें, मैं मुसलमान हूं, और जरा गौर से उसे देख लेना, तो मुश्किल हो गई। अपरिचित, पराए, दूर के लोग, हमसे थोड़े भी भिन्न लोग, बस, मुश्किल शुरू हो गई। अपरिचित के साथ जीने में बड़ा डर लगता है।
और हम अपने ही साथ जी रहे हैं, जो कि बिल्कुल अपरिचित है। जो कल हत्यारा हो सकता है, उसके साथ हम जी रहे हैं। जो कल चोरी कर सकता है, उसके साथ हम जी रहे हैं। जो कल आग लगा सकता है, उसके साथ हम जी रहे हैं। जिसने पीछे हत्या की हो, आग लगाई हो, आग लगाने का सोचा हो, उसके साथ हम जी रहे हैं। लेकिन वह हम भीतर झांकते ही नहीं, हम देखते नहीं कि वह कौन है। उसकी हम फिकर ही नहीं करते। उसके डर की वजह से हमने द्वार ही बंद कर दिया है। हम बाहर ही रहते हैं, हम भीतर जाते ही नहीं।
यह हमारा द्वार पर खड़ा होना ही अधार्मिक होना है। जो आदमी अपने ही द्वार बंद करके बाहर खड़ा हो गया है वह आदमी अधार्मिक है। वह टीका लगाता है कि नहीं, उसने चोटी बढ़ाई कि नहीं, यह सवाल अत्यंत नासमझी के हैं, स्टुपिडिटी के हैं। वह आदमी मंदिर जाता है या नहीं, माला फेरता है या नहीं, ये सवाल सब अत्यंत मूढ़तापूर्ण हैं। सवाल सिर्फ एक है कि उस आदमी ने अपने ही पर दरवाजा तो बंद नहीं कर दिया था? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह अपनी ही तरफ पीठ करके खड़ा हो गया हो? हम सब इसी तरह खड़े हुए हैं। लेकिन डर लगता है

उस तरफ झांकने से। बहुत डर लगता है। जैसे किसी बड़ी खाई में झांकने से डर लगता हो।
ले जाऊं किसी पहाड़ी पर आपको, और बड़ा गड्ढा है, और कहूं, झांकें, तो आप कहेंगे, झांकने में डर लगता है, नीचे गड्ढा है। अगर बहुत डर लगेगा तो आप पीठ करके खड़े हो जाएंगे, और अगर, और ज्यादा डर लगेगा तो आप कहेंगे, गड्ढा है ही नहीं, कौन कहता है, गड्ढा है ही नहीं। इनकार कर देंगे गड्ढे को, ताकि मन निश्चिंत हो जाए।
हम जिन चीजों से डरते हैं उनको इंकार करते चले जाते हैं। लेकिन जिसे
हम इनकार करते हैं वह भीतर खड़ा है, हमारे इनकार से कुछ भी नहीं मिटता। जो आदमी सेक्स से भयभीत है वह सेक्स को इनकार कर देता है, आंख बंद कर लेता है। जो क्रोध से भयभीत है क्रोध को इंकार कर देता है। जो आदमी लोभ से भयभीत है लोभ को इनकार कर देता है, और द्वार बंद करके खड़ा हो जाता है कि है ही नहीं। लेकिन नहीं कहने से कुछ भी नहीं हो जाता। वह भीतर खड़ा है और उसके डर के कारण अब हम पीछे लौट कर भी नहीं देख सकते। हमने बहुत से भय खड़े कर लिए हैं। हमने पूरा अनकांशस, पूरा अचेतन अत्यंत भयभीत चीजों से भर दिया है। और अब भीतर जाना बहुत मुश्किल हो गया है, बहुत मुश्किल हो गया है। अब हम बाहर घूमते हैं, घूमते हैं। बस, भीतर नहीं जाते हैं।
आदमी चांद पर चला गया है। वह कल सूरज पर जाएगा, तारों पर जाएगा, सब जगह चला जाएगा। यह सारी भाग-दौड़ बहुत अदभुत है। यह सारी भाग-दौड़ बहुत पैथालॉजिकल है, बीमार है। वह एक चीज से बचकर, सब तरफ भाग रहा है। अपने से बच कर सब तरफ भाग रहा है।
चांद पर पहुंच जाए, खुश होगा थोड़ी देर, फिर क्या करेगा? जब जमीन पर रहना नहीं आता तो चांद पर पहुंच कर क्या करिएगा? चांद पर भी यही करिएगा? बेचारे चांद को भी झंझट और मुसीबत में लाना है। वहां की शांति भी भंग करनी है? जब यहां हम नहीं रह सकते तो हम वहां क्या करेंगे जाकर, जमीन ही जैसी जमीन वह भी है।
दूर से सब चीजें चमकती हैं। चांद भी चमकता है। यह जमीन भी चांद पर से चमकती है। दूर से सब चीजें चमकती हैं। पास तो सब चीजें वैसी ही हैं। सवाल असल में यह नहीं है कि आदमी कहां पहुंच जाएगा, सवाल यह है कि आदमी क्या हो जाएगा? आदमी जैसा है उसे देख कर अच्छा नहीं मालूम होता है कि वह चांद पर जाए, तारों पर जाए, सब जगह उपद्रव पहुंचा देगा।
अभी हमने तो, आर्मस्ट्रांग और उसके साथी लौटे, तो एक महीने तक बंद रखा,
सब जांच-परख की कि कोई कीटाणु तो नहीं ले आए, लेकिन हमने यह फिकर छोड़ दी कि कोई कीटाणु वहां तो नहीं छोड़ आए? यह आदमी की बीमारी कहीं वहां तो नहीं छोड़ आए कुछ थोड़ी-बहुत? नहीं तो चांद पर भी युद्ध शुरू हो जाएंगे, अगर ये कीटाणु वहां भी पहुंच गए, आदमी के पागलपन के! तो आदमी जहां जाएगा, यही करेगा; क्योंकि आदमी जो है। यही तो आदमी वहां भी पहुंच जाएगा। यही करेगा। यही पागलपन वहां भी जारी रहेगा।
पर आदमी इतनी दौड़ में क्यों है? किस चीज से आदमी दौड़ रहा है? किस चीज
के लिए दौड़ रहा है? अगर कोई पूछे कि चांद पर किसलिए जाना है? कोई उत्तर नहीं है बहुत। या शुक्र पर, या मंगल पर किसलिए जाना है? उत्तर नहीं है। इसका उत्तर कोई भी नहीं है कि आप जाना क्यों चाहते हैं वहां? लेकिन बहुत गहरे में हम छानेंगे, तो हम अपने से बचना चाहते हैं। हम कहीं भी जाना चाहते हैं, पर हमें अपने भीतर न जाना पड़े। वहां हम नहीं जाना चाहते हैं।
और मैं आपसे कहता हूं, अंतरिक्ष की बड़ी से बड़ी यात्रा उतनी बड़ी नहीं
है जितनी कि अंतर की यात्रा है। और मैं आपसे कहता हूं, अंतरिक्ष के बड़े से बड़े यात्री भी कहीं नहीं पहुंचेंगे। चांद पर झंडा गाड़ दो, प्रयोजन क्या है? एवरेस्ट पर झंडा लगा दो, मतलब क्या है? एक जगह भीतर अगर खाली रह गई और वहां नहीं पहुंच सके, तो सब जगह पहुंचना व्यर्थ हो जाएगा।
लेकिन चांद पर पहुंचने की चर्चा सारे जगत में होगी। और अगर कोई आदमी स्वयं पर पहुंच जाए, तो कहीं कोई चर्चा नहीं होगी। क्योंकि हम उसे पहुंचने योग्य जगह ही नहीं मानते हैं। वह कोई चर्चा के लायक नहीं है। वह कोई न्यूज

नहीं है। असल में जिसको हम समाचार और न्यूज कहते हैं, उलटी और बेवकूफी की बातों को ही समाचार कहते हैं।
बर्नार्ड शॉ ने एक दफा कहा था। किसी ने पूछा कि आप किस चीज को न्यूज कहते हैं? समाचार क्या है?
तो बर्नार्ड शॉ ने कहाः कुत्ता आदमी को काट खाए, तो यह कोई न्यूज नहीं है। आदमी कुत्ते को काट खाए, तो यह न्यूज है।
और आपके सब अखबारों में बस वही न्यूज है जिसमें आदमी कुत्ते को काट रहा है--वह दिल्ली में काटता है कि अहमदाबाद में, यह मामला दूसरा है। कहीं भी काट रहा है। लेकिन आदमी अपने पर पहुंच जाए, यह न्यूज बनने लायक भी नहीं है। यह कोई समाचार ही नहीं है। चांद पर पहुंच जाए, तो समाचार है। लेकिन कोई पूछे कि क्या होगा? क्या प्रयोजन है?
एक बुनियादी चीज को छोड़ कर आदमी सब तरफ भाग रहा है, अपने को छोड़ कर। एक जगह हम जाना ही नहीं चाहते। वहां अंधेरा है, इसलिए? वहां अकेले हो जाएंगे, इसलिए? वहां अपरिचित मिलेगा, इसलिए?
अगर ये आपके भय हैं, तो आप भीतर की यात्रा पर कभी भी नहीं निकलेंगे। ये
भय तोड़ने पड़ेंगे। अंधेरे का भय तोड़ना पड़ेगा। जिसे जीवन में कोई भी क्रांति करनी हो प्रकाश की उसे अंधेरे का भय तोड़ना पड़ेगा।
और ध्यान रहे, यह बहुत अदभुत बात है कि जो आदमी अंधेरे का भय छोड़ देता
है उसकी जिंदगी में प्रकाश तत्क्षण भरना शुरू हो जाता है।
अंधेरे का भय ही प्रकाश और हमारे बीच दीवाल है। अंधेरा नहीं, डार्कनेस नहीं, फियर ऑफ डार्कनेस। अंधेरा नहीं है हमारे और प्रकाश के बीच दीवाल, भय, अंधेरे का भय दीवाल है। क्योंकि भयभीत आदमी आंख बंद कर लेता है। प्रकाश और हमारे बीच अंधेरे की दीवाल नहीं, आंख बंद होने की दीवाल है। आंख बंद होना ही अंधेरा है।
भीतर आंख बंद होना ही अंधेरा है। हम वहां आंख बंद किए हैं, इसलिए अंधेरा है। और भय के कारण आंख बंद किए हैं। शुतुरमुर्ग होता है, तो रेत में सिर खपा लेता है। दुश्मन आ रहा है तो वह रेत में सिर गड़ा लेगा, और खड़ा हो जाएगा। फिर निश्चिंत हो जाएगा। क्योंकि अब आंख बंद है, अब दुश्मन नहीं है। आंख बंद होने से दुश्मन मिटते होते तो दुनिया बड़ी आसान हो जाती।
हम सब शुतुरमुर्ग का काम कर रहे हैं; आंख बंद किए हैं भीतर की तरफ और कहते हैं बात खत्म हो गई। लेकिन आंख बंद करने से कुछ भी न होगा। आंख खोलनी पड़ेगी।
और आंख वही खोल सकता है, जो निर्भय है।
भय आंख को खुलने नहीं देता। भय कहता है, आंख बंद रखो, पता नहीं क्या दिख जाए? जो नहीं देखना है वह दिख जाए, जो देखना है वह न दिखे, तो आंख बंद रखो। अपनी कल्पना से जो देखना है देखते रहो। जो नहीं देखना है, इंकार करते रहो।
सब आदमियत अंधे की तरह चल रही है। भीतर की दुनिया में हम सब अंधे हैं। बाहर की दुनिया में कुछ थोड़े से लोग अंधे पैदा होते हैं, भीतर की दुनिया में हम सब अंधे पैदा होते हैं। बाहर की दुनिया में आज नहीं कल, अंधों की आंखें भी हम ठीक कर लेंगे। सवाल भीतर की दुनिया का है, वहां क्या होगा? कुछ लोग बाहर की आंखें लेकर पैदा नहीं होते, लेकिन अधिक लोग भीतर की आंखें बिना पैदा किए मर जाते हैं। भीतर की आंख जन्म के साथ खुली हुई नहीं मिलती, खोलनी पड़ेगी।
लेकिन जन्म से लेकर हम जो भी शिक्षण देते हैं वह सब भय का है। हम फियरलेसनेस सिखाते ही नहीं, हम भय ही सिखाते हैं। हजार-हजार तरह के भय सिखाते हैं, इसीलिए दुनिया बुरी है। और जब तक दुनिया में भय की शिक्षा जारी रहेगी तब तक दुनिया अच्छी नहीं हो सकती।
सब तरह के भय सिखाए जा रहे हैं। अनेक-अनेक रूप हैं भय के। पहले नरक सिखाते थे हम दुनिया को। हर आदमी को कंपा दिया था, बिल्कुल डरा दिया था। एक-एक आदमी डरा हुआ था। नरक के बड़े-बड़े भय हमने पैदा किए थे। वे सब कल्पित और झूठे भय थे। और आदमी को डराने के लिए पैदा किए गए थे। और जिन्होंने पैदा किया था उन्होंने सोचा था हम डरा कर आदमी को धार्मिक बना लेंगे।

डर कर कोई आदमी धार्मिक बना है? हां, डर कर अधार्मिक होने से बच सकता है, धार्मिक नहीं बन सकता है। और अधार्मिक होने से जो बच गया है, वह अधार्मिक होने की सारी क्षमता को भीतर इकट्ठी कर लेता है। वह आदमी बड़ा खतरनाक हो जाता है।
जो आदमी रोज क्रोध कर लेता है वह बहुत खतरनाक नहीं है। और जो क्रोध को दबाता चला जाता है वह बहुत खतरनाक है; क्योंकि वह किसी दिन हत्या से कम करने वाला क्रोध नहीं करेगा। जब भी करेगा उसके पास काफी होलसेल, इकट्ठा हो जाएगा। रिटेल तो वह काम करते नहीं, रोज फुटकर काम नहीं करता है। थोक, इकट्ठा हो जाएगा।
जो लोग खोज-बीन करते हैं वे कहते हैं कि रोज-रोज छोटी-छोटी बातों में क्रुद्ध हो जाने वाले लोग दुनिया में कभी बड़े खतरे नहीं करते। जो क्रोध को पीते चले जाते हैं वे बड़े खतरनाक हो जाते हैं। इतना क्रोध इकट्ठा हो जाता है एक दिन, कि ओवरफ्लो, ऊपर से बह जाना जरूरी हो जाता है। फिर बहुत खतरे हो जाते हैं।
भय ने मनुष्य को धार्मिक नहीं बनाया, सिर्फ अधार्मिक होने से डरा कर रोक दिया। और वह सब अधर्म भीतर इकट्ठा हो गया है। अब वह फूट रहा है जगह-जगह से। इसके लिए जिम्मेवार आज का आदमी नहीं है। इसके लिए जिम्मेवार, पांच हजार साल की मनुष्यता की पूरी संस्कृति है।
वह संस्कृति पूरी गलत थी। उसने आदमी को गलत भय सिखाए, निर्भय नहीं बनाया। भयभीत किया, डराया, नरक, दंड, ऐसे-ऐसे भय दिखाए कि घबड़ाने वाले हैं। ईसाइयत कहती है कि एक दफा, बस एक ही जीवन है। और अगर एक दफा पाप किया,
तो फिर अनंतकाल के लिए, फॉर इटरनिटि नरक में पड़े रहना होगा। फिर कोई छुटकारा नहीं है। कल नहीं, परसों भी नहीं, इस वर्ष नहीं, अगले वर्ष भी नहीं, इस युग में नहीं, अगले युग में नहीं--हजार, करोड़, अरब--नहीं, अनंतकाल तक फिर कोई छुटकारा नहीं है, ऐसा आदमी को कंपा दिया।
बर्ट्रेंड रसल ने कहीं लिखा है कि मैं अपनी जिंदगी भर के किए गए पापों
और नहीं किए गए, सोचे गए पापों का सब ब्यौरा इकट्ठा करता हूं, तो कोई सख्त से सख्त मजिस्ट्रेट भी मुझे तीन-चार साल की सजा दे सकता है, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन ईसाइयत कहती है कि मुझे अनंतकाल तक नरक में सड़ना पड़ेगा।
और नरक के दृश्य जिन्होंने खींचे हैं, बड़े क्रिमिनल माइंड्स रहे होंगे, बड़े अपराधी चित्त रहे होंगे। ऐसी-ऐसी तरकीबें ईजाद की हैं कि हिटलर, हिटलर और उसके जो साथी थे, उन्होंने भी नहीं कर पाए इतनी तरकीबें ईजाद जितनी नरक की कथा रचने वालों ने ईजाद की हैं।
कैसी, कैसी मजेदार है। प्यास लगेगी, पानी सामने होगा, लेकिन पी नहीं सकेंगे। पीएंगे तो पानी आग हो जाएगा। दूर से देखेंगे तो पानी, पास जाएंगे आग, और प्यास जलेगी अनंतकाल तक।
ऐसा आप मत सोचना कि कभी थोड़ी-बहुत देर, कोई कोका-कोला की दुकान नरक में मिल जाएगी। वह मिलने वाली नहीं है। वहां कोई दुकान नहीं है। अनंत काल तक प्यास, लाखों, करोड़ों कीड़े एक-एक आदमी के शरीर में घुसेंगे। छेद करके दूसरी तरफ से निकलेंगे। लाखों कीड़े पूरे शरीर में चक्कर लगाएंगे, छेद ही छेद हो जाएंगे। न आदमी मरेगा, न कीड़े मार सकेंगे आप।
कोई कीड़ा मरने वाला नहीं। नरक में कोई मरता ही नहीं। आप कीड़े को मार नहीं सकते। आप भी मर नहीं सकते, और करोड़ों कीड़े छेद करेंगे, सारे शरीर को सड़ा देंगे। लेकिन मर नहीं सकते। बीमारियां होती हैं नरक में, मौत नहीं होती है वहां! वहां कैंसर भी हो सकता है, टी. बी. भी हो सकती है, लकवा भी हो सकता है, लेकिन मौत नहीं हो सकती।
और ध्यान रहे, मौत का न होना नरक में सबसे बड़ा खतरा है। क्योंकि मर जाए
तो आदमी छूट भी सकता है, वहां से छूट नहीं सकता। कढ़ाइयों में आदमी जलाया जाएगा, जलेगा, लेकिन जल ही नहीं जाएगा, बस जलता रहेगा। ऐसे सब जिन्होंने इंतजाम किया है इतने टार्चर का, बड़े अदभुत लोग रहे होंगे। ऐसा मालूम होता है, उनके मन में सताने की बड़ी प्रवृत्ति रही होगी। उसको निकाल नहीं पाए, तो आगे का हिसाब लगा कर, उन्होंने मन को खाली कर लिया होगा।

ऐसा है, आदमी के मन में जो घूमता है, उसे निकालने की बहुत तरकीबें हैं।
जो लोग कभी प्रेम नहीं कर पाते हैं, वे प्रेम की कविताएं लिख कर भी निकाल लेते हैं। जो लोग कभी किसी स्त्री को नहीं मिल पाते, वह उपन्यास में स्त्रियों को खूब मिल लेते हैं। जिंदगी में नहीं हो पाता, वह कविता में कर लेते हैं। जिनका मन सताने का रहा होगा, वह नहीं सता पाए। तो सताने की उन्होंने पूरी योजना कल्पना में गढ़ ली।
नरकों की लंबी योजना है और इस योजना से घबड़ाया है सिर्फ आदमी को। आदमी
को कुछ समझ नहीं आ सकी है, न कोई रोशनी आ सकी है। फिर बहुत तरह के भय हैं। नरक का भय तो है ही, अब और नये-नये भय हमने विकसित किए हैं। असफलता का भय है, आदमी असफल न हो जाए। महत्वाकांक्षा से शून्य न रह जाए, खाली न रह जाए, एंबीशन कहीं खाली न चली जाए। कहीं जिंदगी में यश न मिले, प्रतिष्ठा न मिले, धन न मिले। दस लोग नमस्कार न करें, कहीं जिंदगी ऐसे ही न खो जाए। बड़ा भय है। तो जिंदगी में जो भयभीत हम हैं, उस भय के कारण जो भी हम कर सकते हैं, कर रहे हैं--धन इकट्ठा करो, दौड़ो, बड़ा मकान बनाओ, क्योंकि छोटा मकान बड़ा भय लाता है। कहीं बड़ा मकान मिल ही न पाए, कहीं मौका चूक जाएं, बड़ा मकान बनाओ। लेकिन कोई पूछे, कि क्यों? क्यों इतना धन? क्यों इतना यश? एक ही सवाल है कि हम असफल हो जाएंगे।
असफल हम नहीं रहना चाहते। दूसरा सफल हुआ जा रहा है, हम असफल हुए जा रहे हैं। दूसरा जीतता चला जा रहा है, हम हारते चले जा रहे हैं। रूस इकट्ठा कर रहा है एटम, तो अमरीका इकट्ठा कर रहा है। पूछो, क्यों, तो वह कहता है रूस से पूछो। रूस से पूछो, तो वह कहता है, अमरीका से पूछो। वह दंड-बैठक लगाए चला जा रहा है, हम मुश्किल में हुए चले जा रहे हैं, जब तक वह लगा रहा है हम रुक नहीं सकते; क्योंकि रुकना खतरनाक है जब तक। उससे पूछो, वह कहता है, जब तक रूस कर रहा है, हम नहीं रुक सकते। सब एक-दूसरे से भयभीत हैं और भागे जा रहे हैं। और हम पूरी मनुष्यता को एक-दूसरे से भयभीत किए हुए हैं। हिंदू मुसलमान से डरा हुआ है, मुसलमान हिंदू से डरा हुआ है। पड़ोसी पड़ोसी से डरा हुआ है। गुजराती मराठी से डरा हुआ है। हिंदी बोलने वाला गैर हिंदी बोलने वाले से डरा हुआ है। सब एक-दूसरे से डरे हुए हैं। हमने पूरी आदमियत को सिर्फ डराया है। हजार तरह के डर पैदा किए हैं।
अगर पाकिस्तान हमला कर दे! अगर चीन हमला कर दे! चीन भी इसी भाषा में सोचता है, पाकिस्तान भी इसी भाषा में सोचता है।
सारे लोग एक ही भाषा जानते हैं, लैंग्वेज ऑफ फियर, बस भय की एक भाषा है। तो बैंक में इंतजाम रखो, कल कुछ भी हो सकता है। अब वह भी डर का मामला है। बैंक का इंतजाम भी गड़बड़ हो सकता है। तब कहीं और गड़ाओ, फिर से गड़ाना पड़ेगा पैसा! फिर कहीं इंतजाम करो, यूरोप में बैंक बनाओ, कहीं और इंतजाम करो। इंतजाम करो, भयभीत रहो, भागते रहो। लेकिन, लेकिन क्या कोई भय की इस दौड़ में कभी अभय हो सका है?
अभय हो सकता है आदमी। भय की दौड़ में दौड़ कर नहीं; जिन-जिन चीजों से भय
है उनका साक्षात्कार, उनका एनकाउंटर करने से। भय क्या है, उसका सीधा साक्षात्कार करना जरूरी है। भागने से क्या होगा।
अगर अकेले होने का भय है, तो मत भागते रहें कि इस पत्नी को इकट्ठा करो,
इस बच्चे को इकट्ठा करो। फिर पक्का विश्वास रखो कि पत्नी छोड़ तो नहीं देगी? तो शास्त्र बनाओ और पत्नी को समझाओ कि पति परमात्मा है, कभी छोड़ना मत, नहीं तो नरक में सड़ना पड़ेगा। वह पति सुरक्षा कर रहा है अपनी। वह यह कह रहा है, कल पत्नी छोड़ भी सकती है। कल पत्नी किसी और के साथ भी जा सकती है। तो पर्दा लगाओ, बुर्का पहनाओ, दरवाजे बंद रखो, किसी से मिलने मत देना। सब भय है। पत्नी भी भयभीत, वह भी पता लगा रही है कि पति दफ्तर से सीधा घर आता है कि नहीं आता?
सब भयभीत हैं। बच्चे भयभीत हैं मां-बाप से। मां-बाप बच्चों से भयभीत हैं। हम सब एक-दूसरे से भयभीत हैं। हमारी सारी रिलेशनशिप, सारा संबंध भय का है। इसलिए तो जिंदगी इतना दुख हो गई है, इतनी पीड़ा, इतनी चिंता हो गई है, इतनी विक्षिप्तता हो गई है। नहीं! भय से भागने से नहीं, भय का सामना ही करना पड़ेगा। क्या भय है?

पहला तो भय स्वयं को जानने का भय है। कोई आदमी स्वयं को नहीं जानना चाहता है। यह बुनियादी, बेसिक फियर है, जो हर आदमी के भीतर है। और खुद को न जानने की वजह से हर आदमी अपनी एक इमेज बना लेता है, जो बिल्कुल झूठी है। और वह मान लेता है कि यही मैं हूं। अहंकारी से अहंकारी आदमी से पूछें, तो वह यही कहता है कि मैं तो बिल्कुल विनम्र आदमी हूं। मुझसे ज्यादा विनम्र आदमी खोजना मुश्किल है। क्रोधी से क्रोधी आदमी यही समझता है कि दूसरे लोग मुझे क्रोध दिला देते हैं। मैं तो सदा शांत हूं। दुष्ट से दुष्ट आदमी भी यही सोचता है कि मुझसे ज्यादा सदय और दयावान कौन हो सकता है?
हर आदमी अपनी एक प्रतिमा बना लेता है, ताकि उसे न जान सके, जो वह है। और ऊपर से एक वस्त्र ओढ़ लेता है। दूसरों को धोखा दो, ठीक भी है। हम अपने को ही धोखा दिए चले जाते हैं। और मैं मानता हूं कि दूसरों को धोखा वही दे सकता है जो अपने को ही धोखा दे रहा हो। और यह भी मजे की बात है कि अगर हम दूसरों को धोखा देते चले जाएं, तो धीरे-धीरे खुद भी धोखे में आ जाते हैं।
झूठ बड़ी अदभुत चीज है। अगर मैं अपने संबंध में एक झूठ प्रचलित करूं,
आप अगर उस पर विश्वास करने लगें, तो एक न एक दिन मुझे भी उस पर विश्वास आ जाएगा। इतने लोग मानते हैं तो गलत मानते होंगे?
मैंने सुना है, एक बार एक पत्रकार मरा और भूल से स्वर्ग पहुंच गया। अब पत्रकारों के स्वर्ग जाने की संभावना जरा कम है। लेकिन पहुंच गया। और भूल-चूक सब जगह होती है। किसी तरकीब से निकल गया होगा। और तरकीब पत्रकार बहुत सी जानता है। वह सब तरकीबों से कहीं भी पहुंच जाता है, जहां कोई नहीं पहुंच पाता।
वह पहुंच गया। दरवाजे पर दस्तक दी जोर से उसने, उसी अकड़ से, जैसा वह प्रधानमंत्रियों का डरा दे, राष्ट्रपतियों को डरा दे। दस्तक दी जोर से, पहरेदार ने झांका, उसने कहा कि कैसे आ गए हैं आप?
उसने कहा कि मैं पत्रकार हूं, भीतर आने दें। इतना काफी है, पत्रकार होना भीतर आने के लिए।
स्वर्ग के पहरेदार ने कहाः माफ करें, स्वर्ग का दस पत्रकारों का कोटा पूरा हो चुका है। अब किसी पत्रकार की कोई जरूरत नहीं है यहां। फिर यहां कोई अखबार भी नहीं निकलता। वह दस भी खाली बैठे हुए हैं। आप नरक चले जाएं, वहां अखबार भी बहुत निकलते हैं, घटनाएं भी बहुत घटती हैं, न्यूज वहां बहुत हैं। आप वहां चले जाएं।
उस आदमी ने कहाः लेकिन मैं यहीं रहना चाहता हूं। आप एक काम करें, अगर मैं दस में से एक को राजी कर लूं नरक जाने के लिए, तो मैं अंदर आ सकता हूं? उसने कहाः आप अंदर आ जाएं। चौबीस घंटे आप राजी करने की कोशिश करें। अगर कोई आपकी जगह चला जाए, तो हमें कोई फर्क नहीं पड़ता, हम आपको रख लेंगे। वह पत्रकार भीतर गया। जो आदमी उसको मिला, अफवाह उड़ाने में तो वह कुशल था। जो आदमी उससे मिला, उससे कहा, सुना तुमने, नरक में एक नया अखबार निकल रहा है और संपादकों के लिए बड़ी जरूरत है और बड़ी अच्छी पोस्ट है, तनख्वाह भी अच्छी है, बंगला भी है, नौकर भी है, कार भी है, सब इंतजाम हैं। और अखबार निकल रहा है, नये संपादकों की जरूरत है।
सारे स्वर्ग में सुबह से शाम तक उसने यही खबर की। चौबीस घंटे पूरे हुए, वह वापस आया। सोचा, शायद एकाध पत्रकार इस अफवाह में चला गया हो। द्वार पर पहरेदार से उसने कहा, कोई गया?
पहरेदार ने हाथ रोक कर दरवाजे के भीतर, दरवाजा बंद कर लिया और कहा, भाग
मत जाना। वे बाहर दस के दस ही जा चुके हैं। दस ही जा चुके हैं। अब कोई नहीं है। अब तुम रुको, अब तुम मत चले जाना।
उस आदमी ने कहाः ऐसा कैसे हो सकता है? हो सकता है अखबार निकल ही रहा हो। मुझे जाने दो। जब दस लोग गए हैं और सारे स्वर्ग में यही चर्चा है, कौन जाने? मैंने तो झूठ ही शुरू किया था, लेकिन बात सच भी हो सकती है। मैं नहीं रुक सकता।
आदमी दूसरे को धोखा देते-देते कब खुद को धोखा दे जाता है, पता नहीं चलता। दूसरे विश्वास करने लगें, धीरे-धीरे खुद को विश्वास आ जाता है। क्योंकि हम अपने को भी सीधा तो जानते नहीं, दूसरे की आंख में झांक कर जानते

हैं कि दूसरा आदमी क्या कह रहा है? अगर सब लोग मुझे अच्छा समझते हैं, तो मैं अच्छा आदमी हो जाता हूं।
अगर कुछ लोग मुझे बुरा समझने लगें, तो शक पैदा होता है कि कहीं बुरा तो नहीं हूं। अगर सब लोग बुरा समझने लगें, तो पीड़ा शुरू हो जाती है।
हम दूसरे से इसीलिए भयभीत होते हैं और फिकर करते हैं कि दूसरा क्या सोच रहा है? सिर्फ एक भय पीछे काम करता है, क्योंकि हमारी इमेज, हमारी प्रतिमा, दूसरे की आंख की झलक चुरा कर, हमने बनाई। वह अगर झलक चली गई, तो प्रतिमा गई।
हम सब जो नहीं हैं, वह हम अपने को मान कर बैठे हुए हैं। जो हम हैं, उसे
हम देखना भी नहीं चाहते। और इसलिए जो हम हो सकते हैं, उसकी कोई यात्रा नहीं हो पाती।
क्या मन होता है कभी इस सत्य को भी जानने का कि वह कौन है जो मेरे रूप में पैदा हुआ? क्या कभी मन होता है इस सत्य को जानने का कि वह कौन है जो बच्चा था जवान हो गया? क्या कभी प्रश्न नहीं उठता भीतर कि मैं कौन हूं? किसी अंधेरे में, एकांत में, किसी कोने में, जिंदगी के किसी क्षण में यह सवाल नहीं पकड़ लेता है कि मैं कौन हूं? यह कौन है जो जी रहा है? यह कौन है जो कल मर जाएगा? नहीं पकड़ता यह सवाल आपको? यह ख्याल कभी भीतर तीर की तरह नहीं घुसता?
घुसता होगा। आप बच कर निकल जाते होंगे फौरन, दूसरे काम में लग जाते होंगे। रेडियो खोल लेते होंगे, अखबार पढ़ने लगते होंगे, मित्र से बात करने लगते होंगे, पत्नी को प्रेम जताने लगते होंगे। जल्दी इससे बच जाते होंगे कि यह कहां का सवाल उठ रहा है? इस सवाल को उठने नहीं देना है; क्योंकि यह सवाल बहुत खतरनाक है। यह सवाल इसलिए खतरनाक है कि यह आपको पूरा बदल देगा अगर उठ जाए। यह सवाल खतरनाक है। क्योंकि आप वही नहीं रह सकेंगे जो आप सवाल पूछने के पहले थे। यह सवाल खतरनाक है; क्योंकि यह पूरी क्रांति का आवागमन है। आगमन है। यह सवाल खतरनाक है; क्योंकि यह आग में कूदना है, कौन हूं मैं? तो मेरी पुरानी प्रतिमा जलेगी। क्योंकि जिसने यह पूछा कौन हूं मैं,
वह संदिग्ध हो गया। उसकी प्रतिमा वही, वह नहीं है। और जिस दिन कोई पूछेगा, कौन हूं मैं, तो भीतर जाना पड़ेगा, नहीं तो मैं जानूंगा कैसे कि कौन हूं मैं? किससे पूछूंगा मैं? अगर मुझे पता लगाना हो कि मैं कौन हूं, तो किसके पास जाऊं? कौन मुझे बताएगा?
दुनिया में कोई मुझे नहीं बता सकता; क्योंकि जब मैं ही अपने को नहीं जानता, तो और कौन मुझे जान सकेगा? लेकिन मैं अपनी पत्नी से कहता हूं, मुझे जानती है न? अपने पति से कोई कहता है, मुझे जानते हैं न? अपने बेटे से कोई कहता है, मैं तुम्हारा पिता हूं, मुझे जानते हो न? मित्र, मित्र से कहता है, जानते हो न? लेकिन मैं ही स्वयं को नहीं जानता, तो कौन मुझे जानेगा? और सब जान लें मुझे, और उनका सबका जानना मैं इकट्ठा कर लूं, सबका, टोटल एग्रीगेट, सबको जोड़ लूं, तो भी मेरा पता नहीं चलेगा कि मैं कौन हूं। यह ऐसा ही होगा जैसे मेरे पचास फोटो उतारे जाएं, पचास निगेटिव। और फिर पचास निगेटिव एक ही पाजिटिव पर उतार दिए जाएं। पचास का जोड़ एक ही पाजिटिव फोटो पर उतार दिया जाए। एक निगेटिव उतारा, फिर उसी पर दूसरा, फिर उसी पर तीसरा, पचास का एग्रीगेट--वह ज्यादा अच्छा होना चाहिए एक की बजाय; क्योंकि पचास तस्वीरें मेरी जुड़ गईं, तो पचास गुना ज्यादा ऑथेंटिक होंगी?
वह सब धूमिल हो जाएगा, उस पर रेखा भी समझ में नहीं आएगी किसकी है। पचास आंखों में जोड़ कर जो मैं अपनी तस्वीर बनाऊंगा, कुछ बनने वाला नहीं है। सिर्फ पचास निगेटिव इकट्ठे हो जाएंगे, कोई तस्वीर बनेगी नहीं। और तस्वीर क्या बनेगी, सिर्फ एक पागलपन हो जाएगा। हम सब इसीलिए पागल हो गए हैं। हमें अपनी कोई तस्वीर नहीं बनती।
नौकर कुछ और कहता है मेरे बाबत, मेरा मालिक कुछ और कहता है, दोस्त कुछ
और कहते हैं, दुश्मन कुछ और कहते हैं। अ कुछ कहता है, ब कुछ कहता है। पचास हजार निगेटिव इकट्ठे हो जाते हैं। उन्हीं को जोड़-तोड़ कर मैं अपनी तस्वीर बनाता हूं कि यह मैं हूं। कोई तस्वीर बनती नहीं। बड़ी तरल रहती है तस्वीर,

इधर से खिसक जाती है, उधर से बिखर जाती है। बना-बनूं के तैयार नहीं हो पाता है कि गिरनी शुरू हो जाती है।
नहीं, मैं नहीं जान पाऊंगा इस तरह कि मैं कौन हूं। मैं दूसरे से पूछ कर नहीं जान सकता। और दूसरे से पूछने जाऊं क्यों? सिर्फ इसलिए जाता हूं कि अपने से पूछने में डरता हूं। कोई मुझे नहीं बता सकेगा। न कोई शास्त्र, न कोई गुरु। कहीं नहीं लिखा है कि मैं कौन हूं। मैं बिल्कुल अनलिखा हूं। कोई शास्त्र खबर नहीं देता कि मैं कौन हूं। और कोई गुरु नहीं इशारा कर सकता है कि मैं कौन हूं।
मुझे अपने भीतर प्रवेश करना... उठता है, कई बार उठता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है कि किन्हीं क्षणों में--कभी दुख में उठ सकता है, कभी सुख में उठ सकता है, कभी हारे हुए होने में उठ सकता है, कभी जीते होने में उठ सकता है, कभी रास्ते पर चलते उठ सकता है, कभी बैठे, सोते उठ सकता है। सवाल बहुत बार उठता है।
बहुत बार भीतर से खबर आती है कि खोजो कौन हूं मैं? हम उसे दबा देते हैं, हटा देते हैं, ताश खेलने लगते हैं, शतरंज खेलने लगते हैं। बहुत तरह की शतरंजें हैं, बहुत तरह के ताश हैं, उनमें हम लग जाते हैं और उसे भुला देते हैं। और कभी सवाल को नहीं उठने देते।
शायद डर लगता है कि यह सवाल सब गड़बड़ कर देगा। डिस्टर्बेंस हो जाएगा।
सब टूट-बिखर जाएगा। ठीक है, जैसा चल रहा है। बैठे रहो, ऐसे ही बने रहो, चलते चले जाओ। लेकिन इस चलने से कोई कभी कहीं पहुंचता नहीं। यह पूछना ही पड़ेगा कि मैं कौन हूं? और इस पूछने के लिए भीतर की एक यात्रा करनी पड़ेगी।
तीन सूत्र मैंने कहे, उन्हें थोड़ा ख्याल में लेकर सोचेंगे। अंधेरे से
मत डरें, भीतर अंधेरा है। भीतर के अंधेरे में उतरना पड़ेगा। अकेले होने से मत डरें, भीतर आप अकेले हैं। कई बार बहुत सख्त मालूम होती हैं कुछ बातें। जीसस के पास एक आदमी आया और जीसस ने उससे कहाः अपनी मां को छोड़ कर आ, अपनी पत्नी को छोड़ कर आ, अपने बेटे को छोड़ कर आ, फिर आ। डिनाय योर मदर, डिनाय योर फादर।
बड़ी सख्त मालूम पड़ती है बात कि ईसा जैसा भला आदमी, जीसस जैसा प्यारा आदमी यह कहता हैः इनकार करो अपने पिता को, इनकार करो अपनी मां को, इनकार करके आ।
क्या मतलब है? क्या कहा है कि पिता को जाकर कह आ कि तू मेरा पिता नहीं है? नहीं, यह नहीं कहा है। कहा है कि भीतर से तू जान कि तू अकेला है। न कोई मां है, न कोई पिता है।
जीसस एक भीड़ में खड़े हैं, कुछ लोगों ने घेर रखा है, एक बाजार है। जीसस
की मां मरियम मिलने गई है। उसने भीड़ को छांटने की कोशिश की है। किसी आदमी से उसने कहा है, मैं जीसस की मां हूं, मुझे भीतर जाने दें।
भीड़ बहुत है, किसी आदमी ने चिल्ला कर कहा, जीसस, तेरी मां मिलने आई है, रास्ता दो! जीसस की मां भीतर आती है।
जीसस ने कहाः मेरी कोई मां नहीं। बड़ी सख्त बात मालूम पड़ती है, बहुत सख्त बात मालूम पड़ती है। बहुत कठोर मालूम पड़ती है कि जीसस कहें, मेरी कोई मां नहीं है।
लेकिन जीसस जैसे आदमी से कठोरता की आशा नहीं है, क्योंकि वह कहता हैः
एक गाल तुम्हारे चांटा कोई मारे, दूसरा सामने कर देना। वह आदमी यह कैसे कह सकता है कि मेरी कोई मां नहीं है? लेकिन उसने कुछ और ही अर्थ में कहा है। निश्चित ही उसने इस अर्थ में कहा है कि मैं अकेला हूं। शायद वह अपनी मां को भी कहना चाहता है, तेरा कोई बेटा नहीं है। आदमी अकेला है।
और जो अकेला होने को राजी नहीं है, वह भीतर नहीं जा सकता। वहां अकेला होना ही पड़ेगा। संग-साथ बाहर है। भीतर सब अकेला है। मौत से हम इसीलिए डरते हैं कि अकेले हो जाएंगे, और इसलिए ध्यान से डरते हैं। समाधि से डरते हैं कि अकेले हो जाएंगे। इसलिए भीतर जाने से डरते हैं कि अकेले हो जाएंगे। साथ चाहिए, सहारा चाहिए, एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहें। भीतर किसी का हाथ कैसे ले जाएंगे?

नहीं, कोई भीतर साथ नहीं जा सकता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि पत्नी
को छोड़ कर कोई भाग जाए। बच्चों को छोड़ कर कोई भाग जाए। वह नासमझी है। छोड़ कर भागने का कोई सवाल नहीं है। यह जानना जरूरी है कि भीतर मैं अकेला हूं। छोड़ कर भी भागने का क्या सवाल है? जो छोड़ कर भाग रहा है उसने शायद मान लिया था कि कोई मेरा है, इसलिए छोड़ कर भाग रहा है। लेकिन जो जानता है, अकेला है--न छोड़ना है, न भागना है, बाहर से कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं। भीतर अकेले होने की हिम्मत जुटाने की जरूरत है।
पहली बात, अंधेरे की तैयारी करनी पड़ेगी, अकेले होने की हिम्मत जुटानी पड़ेगी, और तीसरी बात, यह भय, यह डर अनजान का, अननोन का, अपरिचित का छोड़ देना पड़ेगा।
अनचार्टर्ड है वहां, भीतर कोई नक्शा नहीं है हाथ में कि कोई नक्शा दे
दे कि यहां जाओ, तो इस चौरस्ते पर पहुंचोगे। वहां से आगे बढ़ोगे, तो यह मकान मिलेगा। फिर पुलिस थाना है, इस तरह कोई खबर नहीं है भीतर। वहां कोई रास्ता नहीं है। वहां तो आप जाएंगे, जाने से ही रास्ता बनेगा।
वहां रास्ता पहले से तैयार नहीं है कि बना हो। वहां तो जाएंगे और जाना
ही रास्ता बनेगा। बिल्कुल पाथलेस पाथ है, रास्ता नहीं है, पथ नहीं है वहां, लेकिन जाने से रास्ता बन जाता है। कोई जाए--और आपके भीतर कोई दूसरा नहीं जा सकता, इसलिए तैयार रास्ता मिलेगा कैसे? कोई गया होता, तो पगडंडी बन गई होती, पैरों के चिह्न होते।
आपके भीतर कोई नहीं गया, न कोई जा सकता है। आप ही जा सकते हैं, और आप अब
तक नहीं गए। वहां रास्ता कैसे हो सकता है? अनजान है, अपरिचित है। लेकिन अपरिचित में घुसने की हिम्मत जुटानी पड़ती है।
ये तीन बातों पर सोचना, फिर आगे हम बात करेंगे।
अंधेरे की स्वीकृति, अंधेरे का स्वागत।
अकेले होने का साहस।
अपरिचित, अपरिचित को आलिंगन करने की हिम्मत जो आदमी जुटा लेता है वह भीतर के अंधेरे, भीतर के अज्ञान, भीतर की अविद्या को अतिक्रमण कर जाता है, ट्रासेंड कर जाता है, उस लोक में पहुंच जाता है जहां सदा प्रकाश है।
अंधेरे से प्रकाश की ओर की यात्रा में ये तीन बातें बहुत ध्यान रखने योग्य हैं। शेष सुबह हम बात करेंगे। आपके जो भी प्रश्न होंगे, लिखित दे देंगे ताकि कल सांझ उनकी बात हो सके।

मेरी बातों को इतनी प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
तीसरा प्रवचन

अपना जीवन, अपना सत्य

अंधेरे से प्रकाश की ओर जाना तो दूर हम अंधेरे से और गहरे अंधेरे में उतरते चले जाते हैं। उपनिषद के किसी ऋषि ने कहा हैः अज्ञान तो अंधकार में ले जाता है, ज्ञान महा अंधकार में ले जाता है। बहुत ही उलझी हुई और विरोधाभासी बात कही है। अज्ञान तो अंधकार में ले जाता है, ज्ञान और महा अंधकार में।
साधारणतः तो हमने यही सुना है कि ज्ञान प्रकाश में ले जाता है। निश्चित ही जो ज्ञान अंधकार में ले जाता होगा वह ज्ञान और ही तरह का ज्ञान होगा। और हम रोज-रोज गहरे से गहरे अंधकार में चले जाते हैं, तो निश्चय ही जिसे हम ज्ञान कहते हैं वह ऐसा ही ज्ञान होगा।
हमारा ज्ञान हमें और अंधकार में ले ही जाता है। क्योंकि हमारा ज्ञान हमारे भीतर से नहीं आता, हमारे बाहर से इकट्ठा होता है, और सिर्फ हमारे अहंकार को मजबूत कर जाता है। मैं जानता हूं, यह अहंकार जिसके भीतर भी घनीभूत हो गया, वह फिर प्रकाश की यात्राएं नहीं कर पाता है। प्रकाश की यात्रा के लिए अहंकार साथी नहीं हो सकता, वहां तो चाहिए, विनम्रता, अति विनम्र भाव, अति निर-अहंकार भाव, ईगोलेसनेस चाहिए।
जितनी मजबूत हमारे ईगो और अहंकार की दीवाल है, उतनी ही प्रकाश की किरणें हमारे भीतर नहीं पहुंच पाती हैं। हम अपने मकान के सब द्वार-दरवाजे बंद करके भीतर बैठ जाएं, फिर बाहर सूरज भी रहे, तो भी क्या फर्क पड़ता है? हम तो अंधेरे में ही जीएंगे। और अहंकार से ज्यादा मजबूत कोई दीवाल नहीं है, जिसके भीतर मनुष्य बंद हो सके। अहंकार के कैपसूल में, खोल में हम सब बंद हो जाते हैं।
और साधारणतः जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमारे अहंकार को ही बढ़ा जाता है। इसीलिए दुनिया जितनी शिक्षित होती मालूम पड़ती है, उतनी अहंकारी होती चली जाती है। शिक्षा से होना तो यह चाहिए था कि अहंकार छूट जाए। विश्वविद्यालय से निकलते समय होना तो यह चाहिए था कि मनुष्य विनम्र होकर बाहर आए। वहां से और अहंकार लेकर वापस लौटता है। अहंकार पर सील-मोहर भी लग जाती है। अहंकार और मजबूत हो जाता है। जितना ही हम जानने लगते हैं, लगता है कि हम उतने ही सुरक्षित हो गए हैं। उतने ही मजबूत हो गए हैं।
सब प्रकार का जानना जो भी बाहर से उपलब्ध होता है वह सभी जानना अंधकार में ले जाने की सीढ़ी बनता है। इस संबंध में थोड़ी बात समझ लेनी जरूरी होगी। प्रकाश की यात्रा के लिए उस तरफ सोचना और खोजना जरूरी है।
हम जानते क्या हैं? शायद ही कोई अपने से पूछता हो कि मैं क्या जानता हूं? एक बहुत बड़ा विचारक, एक फकीर के पास गया था। उस विचारक ने कोई तीस किताबें लिखी थीं। उन किताबों की बड़ी प्रशंसा की सारी दुनिया ने। उन किताबों में से एक किताब के बाबत तो ऐसा कहा जाता था कि, दुनिया की दो-चार बड़ी किताबों में एक है।
अगर आपने भी आपमें से किसी ने वह किताब देखी हो, वह है टर्सियम आर्गनम। पी डी आस्पेंस्की की एक किताब हैः टर्सियम आर्गनम। ज्ञान का तीसरा सिद्धांत। अरस्तू ने एक किताब लिखी हैः ज्ञान का पहला सिद्धांत, आर्गनम। बैकन ने एक दूसरी किताब लिखी हैः नोवम आर्गनम, ज्ञान का नया सिद्धांत। और आस्पेंस्की ने एक किताब लिखी है, टर्सियम आर्गनम, ज्ञान का तीसरा सिद्धांत। और ये तीनों किताबें बहुत अदभुत हैं।
यह आस्पेंस्की इस किताब को लिखने के बाद एक बिल्कुल अपरिचित, अनजान, जिसे कोई नहीं जानता, ऐसे एक फकीर गुरुजिएफ के पास मिलने गया था ज्ञान से भरा हुआ। इस ख्याल से भरा हुआ कि न केवल मैं जानता हूं बल्कि मैं जानता हूं इसे दूसरे लोग भी जानते हैं। गुरुजिएफ से जाकर उसने कहा कि कुछ परमात्मा के, सत्य के संबंध में आपसे मुझे जानना है।
गुरुजिएफ ने कहाः अगर तुम पहले से जानते हो, तो जानना फिर बहुत मुश्किल है। और तुम जानने से भरे हुए मालूम पड़ते हो। एक छोटा कागज मैं

तुम्हें देता हूं, इस पर लिखो। तुम जो जानते हो वह लिख दो। फिर उसकी मैं बात नहीं करूंगा। और तुम जो नहीं जानते हो वह लिख दो, तो मैं उसकी बात करूं जो तुम नहीं जानते हो। क्योंकि जो तुम नहीं जानते हो वही जानना उचित होगा। जो जानते ही हो उसे जानने की अब और क्या जरूरत है।
एक बगल के कमरे में भेज दिया आस्पेंस्की को कागज देकर। आस्पेंस्की ने तीस किताबें लिखी हैं। अदभुत उसकी प्रतिष्ठा है। वह कागज लेकर बैठ गया। सोचने लगा, क्या मैं जानता हूं? ईश्वर को मैं जानता हूं? ईश्वर के संबंध में हजारों पृष्ठ मैंने लिखे, लेकिन जानता हूं? तो भीतर से उत्तर नहीं आया कि जानता हूं। भीतर से उत्तर आया, क्या परिचय है हमारा ईश्वर से? ईश्वर है भी या नहीं, यह भी पता नहीं है। आत्मा को जानता हूं? स्वयं को जानता हूं? भीतर से कोई उत्तर नहीं आया जानने का। आस्पेंस्की हैरान हुआ। जिंदगी
भर यही ख्याल था कि मैं बहुत जानता हूं। कोरा कागज लाकर उस फकीर को वापस दे दिया और कहा, क्षमा करें, मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं।
उस फकीर ने नीचे से ऊपर तक देखा और उसने कहाः अब जानने की यात्रा हो सकती है। इतनी विनम्रता से यात्रा शुरू होती है।
लेकिन हमने कभी अपने से नहीं पूछा होगा किसी एकांत में, कि मैं जानता क्या हूं? हम एक दूसरे से विवाद भी कर लेते हैं कि मैं जो जानता हूं, वह ठीक है। लेकिन अपने से हमने कभी कोई विवाद नहीं किया है कि मैं जो जानता हूं, वह जानता भी हूं? ठीक और गलत होना तो बहुत दूर की बात है।
जिस क्षण व्यक्ति को पता चलता है कि मैं जो भी जानता हूं सब उधार, बासा, मरा हुआ है। मेरा अपना कोई जीवंत अनुभव नहीं है, उसी दिन एक क्रांति उसके जीवन में शुरू हो जाती है। अपने अज्ञान का बोध, अपने इग्नोरेंस का बोध।
साक्रेटीज कहता था, मैंने ऐसे लोग देखे जिनके ज्ञान को इग्नोरेंट नालेज कहा जा सकता है। इग्नोरेंट नालेज बड़े उलटे शब्द हैं। अज्ञानपूर्ण ज्ञान, क्या मतलब इसका? इसका मतलब है कि जो हैं तो अज्ञान में, लेकिन जिन्हें यह ख्याल है कि हम जानते हैं।
और साक्रेटीज कहता था, मैंने ऐसे लोग भी देखे हैं जिनके ज्ञान को या जिनके अज्ञान को नोइंग इग्नोरेंस कहा जा सकता है--जानता हुआ अज्ञान। जो यह जानते हैं कि मैं नहीं जानता हूं, इससे बड़ी बात जिंदगी में दूसरी नहीं है जानने की कि जीवन के परम सत्यों के संबंध में हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन कैसे मानें? हमने किताबें पढ़ी हैं, हमने गुरुजनों से सुना है, हमने ऋषियों, मुनियों, महात्माओं की वाणी याद की है। हमें बहुत कुछ पता है, हम कैसे मानें कि हम नहीं जानते हैं? हमें ईश्वर के संबंध में करीब-करीब जो भी कहा गया है, सब पता है।
लेकिन ईश्वर के संबंध में जो भी कहा गया है, सब इकट्ठा कर लो, तो भी ईश्वर का कण भर अनुभव उस कहे हुए से नहीं निकलता है। और ईश्वर के संबंध में जो भी लिखा गया है सब इकट्ठा कर लो और सबका निचोड़ निकाल लो, तो भी ईश्वर के अनुभव की एक झलक उससे नहीं मिलती।
जैसे कोई किताब खोले और किताब में लिखा हो, घोड़ा, और किताब पर सवार हो जाए और घोड़े को हांकने लगे, तो हम उसे पागल कहेंगे। किताब में सिर्फ शब्द हैं, घोड़ा नहीं है। शास्त्रों में भी सिर्फ शब्द हैं, परमात्मा नहीं है। लेकिन किताब के घोड़े से कोई धोखे में नहीं आता और कभी घोड़े पर सवारी नहीं करता, लेकिन किताब के परमात्मा से बहुत लोग धोखे में आ जाते हैं। और किताब के परमात्मा से प्रार्थना करने लगते हैं। किताब के घोड़े पर चढ़ना और किताब के परमात्मा से बात करना बिल्कुल बराबर है, एक सा पागलपन है। लेकिन घोड़े पर आप चढ़िएगा तो पकड़ जाएंगे, घर के लोग पागलखाने ले जाएंगे। और किताब के परमात्मा से प्रार्थना करिए तो घर के लोग भी आपके पैर पड़ेंगे, पास-पड़ोस के लोगों में खबर हो जाएगी कि यह आदमी धार्मिक है।
किताब के परमात्मा से क्या संबंध है सत्य का? किताब में तो सिर्फ अक्षर लिखे हैं, वे स्याही के धब्बों से ज्यादा नहीं हैं। उनसे क्या मिलेगा? हां, शब्द मिल सकता है, परमात्मा शब्द मिल सकता है। और रोज-रोज, रोज-रोज पढ़ने से परमात्मा शब्द भीतर गहरे बैठ सकता है, और आप और हम यह भूल

जा सकते हैं कि यह सिर्फ शब्द है, और अनुभव हमारे भीतर कहीं भी नहीं, और कई वर्षों के निरंतर याद करने से विस्मरण हो जाएगा कि मैं नहीं जानता था और भ्रम हो जाएगा कि मैं जानता हूं।
मनुष्य का ज्ञान शब्दों पर खड़ा हुआ है, सत्यों पर नहीं। इसलिए मनुष्य
का ज्ञान भी अज्ञान में ही ले जाता है, अंधकार में। हमारा सारा ज्ञान शब्दों पर खड़ा हुआ है। शब्द पर खड़े हुए ज्ञान का क्या अर्थ हो सकता है? अनुभव पर ज्ञान खड़ा हो, तो ही ज्ञान है।
शब्द पर खड़ा हुआ ज्ञान सिर्फ धोखा है, डिसेप्शन है और खतरनाक, महंगा धोखा है। एकदम महंगा धोखा है। इतना महंगा धोखा दुनिया में दूसरा कोई भी नहीं है।
एक छोटे से बच्चे को हम बचपन से सिखाना शुरू कर देते हैं। मैं छोटा था, मेरी पहली जो स्मृति है वह यही है कि मुझे मंदिर में ले जाया गया। मुझे वहां सिर्फ पत्थर की मूर्तियां दिखाई पड़ रही थीं और मुझे कहा गया कि ये भगवान हैं। मैं नहीं मान सका इस बात को कभी भी। नहीं मान सका तो भगवान की खोज करनी जरूरी हो गई--फिर भगवान क्या है?
मान लेता तो मर जाता, वे मूर्तियां ही भगवान हो जातीं और खोज समाप्त
हो जाती। बहुत लोगों ने मान लिया है और रुक गए हैं। मैं नहीं समझ सका कि इन मूर्तियों में भगवान कहां है? रात के अंधेरे में जाकर उन मूर्तियों को हिला-डुला कर, और पैर की लात मार कर भी देखा। उनसे कोई पता नहीं चला कि वे पत्थर से ज्यादा हैं।
लेकिन घर के लोग, पड़ोस के लोग सभी कहे जाते रहे कि वे भगवान हैं, पैर पड़ो। घर के लोगों के डर से हाथ भी जोड़ता था। लेकिन वे हाथ झूठे थे, और भीतर जानता था किसको हाथ जोड़ रहा हूं? बहुत मजाक मालूम पड़ता था। लेकिन सौभाग्य था कि मान नहीं सका कि वहां भगवान है। तो भगवान की खोज जरूरी हो गई।
और जो लोग मान लेते हैं मूर्तियों में, शब्दों में, पत्थरों में, सिखाई हुई बातों में, उनकी खोज वहीं बंद हो जाती है। हम हर बच्चे की खोज बंद करने की कोशिश करते हैं। समाज बहुत दुश्मन है। समाज की सारी व्यवस्था सत्य के विपरीत है। हम हर बच्चे की सत्य की खोज बंद कर देना चाहते हैं, सब द्वार-दरवाजे बंद कर देना चाहते हैं। हम उसे राजी कर लेना चाहते हैं कि तुम यह मानो, और यह ठीक है। और बच्चा अबोध है, वह सोचता है कि जो बड़े हैं वे जानते होंगे। उसे पता नहीं कि छोटे का अज्ञान छोटा है, बड़े का अज्ञान और बड़ा हो गया है, और कोई फर्क नहीं पड़ा है। उम्र के बढ़ने से ज्ञान तो बढ़ता नहीं। हां, उम्र के बढ़ने से आदमी ज्यादा भयभीत हो जाता है, और भयभीत आदमी अज्ञान को ही ज्ञान मान कर रुक जाता है। हम एक-एक बच्चे को सिखा देते हैं शब्द, जो उसे जानना चाहिए, वह हम सिखा देते हैं और सिखा देने की वजह से वह जानने की दिशा में कभी कदम नहीं उठाता।
अगर हम कहीं एक स्कूल खोल लें और वहां लोगों को प्रेम करना सिखाएं, बच्चों को, छोटे बच्चों को प्रेम करना सिखा दें और उन्हें प्रेम का एक-एक गेस्चर सिखा दें, और प्रेम के समय कैसी आंख करनी चाहिए, और कैसे शब्द बोलने चाहिए, कैसे किसी को गले लगा लेना चाहिए, और कैसे किसी का चुंबन ले लेना चाहिए, सब सिखा दें, बच्चों को प्रेम के संबंध में सारी कला सिखा दें, एक्टिंग सिखा दें, फिर ध्यान रहे, ये बच्चे कभी प्रेम नहीं कर पाएंगे, ये एक्टिंग ही करते रहेंगे, क्योंकि एक्टिंग से ही काम चल जाएगा।
और ध्यान रहे, एक्टिंग असलियत से अक्सर ज्यादा कुशल होती है। क्योंकि झूठी होती है। झूठ के साथ कुशलता पैदा करनी बहुत आसान है। क्योंकि झूठ को जैसा चाहो वैसा मोड़ा जा सकता है। सत्य मुड़ता नहीं आपको ही मुड़ना पड़ता है। सत्य के साथ आप कुछ नहीं कर सकते, सत्य ही आपके साथ करता है। झूठ के साथ आप कुछ भी कर सकते हैं। झूठ में कला प्रविष्ट हो सकती है।
इसलिए प्लेटो जैसे विचारशील आदमी ने तो यह कहा कि सब कला झूठ है। और कवियों से ज्यादा झूठा कोई भी नहीं। उसका मतलब सिर्फ इतना था कि सब अभिनय झूठ पर खड़ा है।
अगर बच्चों को किसी दिन हमने प्रेम करना सिखा दिया--और कुछ लोग हैं, अमरीका में एक आदमी है इलिकटोम, वह कहता है, दुनिया में प्रेम करना सिखाना

चाहिए, क्योंकि लोग प्रेम कर नहीं रहे हैं। अगर बात मान ली गई, और मान ली जाएगी जल्दी, क्योंकि आदमी इतना नासमझ है कि नासमझी की बातें बहुत जल्दी मान लेता है।
अगर दुनिया में प्रेम सिखाने के प्रशिक्षण खुल गए, ट्रेनिंग स्कूल खुल गए और बच्चों को हमने प्रेम सिखा दिया, तो ध्यान रहे, फिर शायद ही भूल-चूक से कोई बच्चा अगर बच जाए तो प्रेम कर सके, अन्यथा अभिनय ही जारी रहेगा। वैसे अभी भी अभिनय ही चलता है। अभी भी बहुत कम लोग प्रेम कर पाते हैं। अभिनय ही करते चले जाते हैं। जब आप अपनी पत्नी को कहते हैं, तुझसे सुंदर कोई भी नहीं है, तब कभी आपने सोचा कि आप क्या कह रहे हैं? रोज सड़क पर पता चल जाता है कि पत्नी से ज्यादा सुंदर स्त्रियां हैं। लेकिन पत्नी से यही कहे चले जा रहे हैं तुझसे ज्यादा सुंदर कोई भी नहीं। अभिनय चल रहा है।
अभी अभिनय चल रहा है बिना सीखे हुए। और अगर सिखाने की व्यवस्था कर दी जाए, तो अभिनय फिर ज्यादा निष्णात, ट्रेंड, कल्टीवेटेड और व्यवस्थित होगा। भूल-चूक कम होगी। लेकिन फिर प्रेम नहीं हो सकेगा।
असल में जीवन की कोई भी गहरी चीजें बाहर से सिखा दी जाएं तो आदमी सिर्फ बाहर ही अभिनय करके मुक्त हो जाता है। फिर भीतर जाने की जरूरत नहीं रह जाती। भीतर तो कोई तभी जाता है, जब बाहर कोई उपाय नहीं मिलता। जब तक बाहर कोई सहारा मिल जाए कोई भीतर नहीं जाना चाहता। अगर प्रेम की तरकीब बाहर ही मिल जाए, फिर भीतर कोई किसलिए जाए? फिर भीतर कौन हृदय को जगाए? हृदय को जगाना पीड़ापूर्ण है। अभिनय में सुख ही सुख है। सच्चे प्रेम में दुख भी बहुत है। अभिनय में दुख कभी भी नहीं। अभिनय में सुख ही सुख है। लेकिन जिस अभिनय में दुख न हो, उसका सुख भी बहुत ऊपरी होगा, उसका भी बहुत कोई गहरा अर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि जितना दुख गहरा होता है, उतना ही सुख गहरा होता है। उनकी गहराइयां हमेशा बराबर होती हैं।
अभिनेता न कभी दुखी होता है, न सुखी होता है। कुछ अभिनेता मेरे मित्र हैं, उनकी पत्नियों से मैं पूछता हूं कि तुम्हें शक नहीं होता कि जब तुम्हारा पति तुम्हें प्रेम करता है तो कहीं यह वही मंच वाला प्रेम तो नहीं है? तो एक स्त्री ने मुझे कहा कि निरंतर शक होता है कि यह आदमी फिर वही डायलॉग बोल रहा है जो इसने मंच पर भी बोले। लेकिन आम पत्नियों को यह शक नहीं होता, क्योंकि आम पतियों को उन्होंने मंच पर नहीं देखा है, सिर्फ अकेले में देखा है।
आम पति भी डायलॉग बोल रहे हैं। आम पत्नियां भी डायलॉग बोल रही हैं। सीखा हुआ है, लेकिन फिर भी अभी बहुत व्यवस्थित नहीं है। आज नहीं कल सब व्यवस्थित हो जाएगा।
लेकिन प्रार्थना के संबंध में बहुत व्यवस्था है। प्रेम तो अभी हम सिखाते नहीं है बहुत, लेकिन प्रार्थना सिखाते हैं, परमात्मा सिखाते हैं। जब प्रेम ही नहीं सिखाया जा सकता तो परमात्मा तो और गहरा अनुभव है। उससे गहरा तो कोई अनुभव नहीं होता। प्रेम तो बिल्कुल ही उथला है परमात्मा की दृष्टि से।
हालांकि मनुष्य के जीवन में प्रेम सबसे गहरा अनुभव है, लेकिन परमात्मा को ख्याल न रखें, तो प्रेम सबसे उथला अनुभव है। मनुष्य के जीवन का सबसे गहरा अनुभव भी परमात्मा को ध्यान में रखने में सबसे उथला अनुभव है। प्रेम भी नहीं सिखाया जा सकता, तो परमात्मा कैसे सिखाया जा सकता है? लेकिन परमात्मा हम सिखा रहे हैं। बचपन से परमात्मा सिखाया जा रहा है। प्रार्थना सिखाई जा रही है। सब झूठ हो जाता है। मंदिर में हाथ जोड़े हुए जो आदमी खड़ा है, अगर उसकी खोपड़ी हम खोल सकें, तो जल्दी हम उस झूठ को खोज लेंगे कि कब इसको हाथ जोड़ना सिखाया गया है। यह हाथ जुड़े हुए, सीखे हुए हाथ हैं। और आदमी को इतना व्यवस्थित सिखाया जा सकता है कि उसे पता खुद भी न रहे। मैंने सुना है, पहले महायुद्ध में एक आदमी युद्ध से बर्खास्त हो गया। उसके पैर में चोट लग गई। अब युद्ध में तो सब सीखे हुए आदमी होते हैं। युद्ध में असली आदमी प्रवेश नहीं कर सकता। सब नकली आदमी होते हैं। मिलिटरी की सारी ट्रेनिंग आदमी को नकली करने की व्यवस्था है। एक आदमी से हम कह रहे हैं, लेफ्ट टर्न, राइट टर्न। तीन-चार साल, दस साल बाएं घूमो, दाएं घूमो, आगे

जाओ, पीछे जाओ। उसका मस्तिष्क खराब नहीं हो जाएगा तो बचेगा? मशीन का उपयोग करवा रहे हैं उससे, और जरा भी आज्ञा से भिन्न नहीं--बाएं घूमना है, तो बाएं घूमना है। एक क्षण देर नहीं। बाएं घूमते-घूमते, बाएं घूमो तो वह मशीन की तरह घूमने लगता है। फिर आदमी नहीं घूम रहा है। बटन जैसे दबे और पंखा घूम जाएं, ऐसा बाएं घूमो, यह सुनते ही वह आदमी घूम जाता है। उस आदमी को भीतर घूमना नहीं पड़ता। यह बिल्कुल यांत्रिक हो गया।
एक आदमी बर्खास्त हुआ है, वह एक सड़क से गुजर रहा है। एक मनोवैज्ञानिक है, विलियम जेम्स। वह एक होटल में बैठा हुआ किसी मित्र से बात कर रहा है। और वह कह रहा है कि आदमी को बिल्कुल मशीन बनाया जा सकता है। तभी वह बाहर से आदमी निकला है। विलियम जेम्स ने जोर से चिल्ला कर कहा, अटेंशन।
वह आदमी अंडे लिए हुए था एक टोकरी में। वह अटेंशन खड़ा हो गया, टोकरी गिर गई, अंडे फूट गए। जब खड़ा हो गया अटेंशन, तब उसे ख्याल आया कि यह मैंने क्या किया। सारे अंडे फूट गए। भीड़ इकट्ठी हो गई।
विलियम जेम्स अपने मित्र को ले जाकर खड़ा हो गया कि देखते हो? उस आदमी
ने कहाः यह तुमने कैसी मजाक की। नुकसान कर दिया।
विलियम जेम्स ने कहाः हमने तो सिर्फ अटेंशन कहा। तुमसे किसने कहा था
कि तुम रुक जाओ।
उसने कहाः यह कोई अब कहने, सुनने, समझने की बात है। दस साल अटेंशन, यानी अटेंशन था। मैं भूल ही गया कि मिलिटरी में अब नहीं हूं, सड़क पर चल रहा हूं। अटेंशन! सुना कि घूम गई मशीन। मैं खड़ा हो गया। ये सब अंडे टूट गए हैं, इनके पैसे कौन चुकाएगा? मैं गरीब आदमी हूं।
विलियम जेम्स ने कहाः पैसे हम चुका देंगे, लेकिन तुम्हारी आत्मा कौन चुकाएगा? तुम खो गए, तुम गए, तुम आदमी नहीं रहे, मशीन हो गए हो।
हनुमानजी का मंदिर दिखा और आपके हाथ जुड़ गए, आप समझ रहे हैं, कोई और भिन्न बात है? वही अटेंशन। बचपन से सिखाया गया है, इधर भगवान हैं।
मेरे एक मित्र हैं, मेरे साथ घूमने जाते हैं सुबह-सुबह। कोई भी मंदिर
पड़ जाए, बिना हाथ जोड़े वे आगे नहीं बढ़ते। मुझे जानते नहीं थे। घूमने में ही उनसे दोस्ती हो गई थी। धीरे-धीरे उनसे बातें हुईं। मेरी बातें सुनीं, मेरी बातें समझीं। दूसरे दिन मेरे साथ सुबह गए, मंदिर पड़ा। उन्होंने बड़ी ताकत लगा कर अपने को रोका होगा। हाथ जुड़ना चाहते थे। मेरे साथ दस कदम बिना हाथ जोड़े निकल गए।
लेकिन मैंने देखा, वे बहुत परेशान हो गए हैं। फिर रुके और मुझसे कहा, माफ करिए, मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा, दिन भर खराब हो जाएगा। मुझे वापस जाकर हाथ जोड़ आने दीजिए। हुआ क्या है? यह मेरी कल्पना के ही बाहर है कि उस मंदिर के सामने से मैं बिना हाथ जोड़े निकल जाऊं। कभी नहीं निकला। आज बीस साल से हाथ जोड़ता हूं। नहीं! मुझे वापस जाने दें।
वे गए, उन्होंने हाथ जोड़े, लौटे। वे बड़े रिलैक्स, शांत मालूम पड़े। बड़ी बेचैनी हो गई। यह मिलिटरी से ज्यादा भिन्न बात हुई? अटेंशन से ज्यादा भिन्न बात हुई?
हम भी जिन मंदिरों में हाथ जोड़ रहे हैं, जिन मस्जिदों में कवायद कर रहे हैं, जिन गिरजों में हाथ उठा कर भगवान को पुकार रहे हैं--हमारी यह पुकार, हमारी ये प्रार्थनाएं, हमारी ये कवायदें, ये नमाजें सिखाई हुई हैं, या हमारे प्राणों से कहीं इनका कोई संबंध है? नहीं तो मुसलमान का बेटा मुसलमान कैसे हो जाए? हिंदू का बेटा हिंदू कैसे हो जाए? अगर बातें सिखाई हुई न हों। हिंदू का बेटा तो मुसलमान नहीं हो जाता? मुसलमान का बेटा तो हिंदू नहीं हो जाता? जो सिखाया गया है हम वही हो जाते हैं। हमारा हिंदू होना सीखा हुआ होना है। हमारा मुसलमान होना सीखा हुआ होना है।
हम सब झूठे अभिनय कर रहे हैं। हिंदू होना एक अभिनय है, मुसलमान होना
एक अभिनय है। आदमी होना एक सचाई हो सकती है। हिंदू-मुसलमान से ज्यादा झूठी कोई बातें हो सकती हैं? लेकिन वह हम सीखे हुए हैं। और बच्चों को उस समय से सिखा रहे हैं, जब उन्हें कोई होश नहीं है। उनके दिमाग में भर रहे हैं, यह रहा भगवान, यह रही किताब, यह रहा ग्रंथ, यह रहा शास्त्र, यह है सत्य। उसके दिमाग में भरे चले जा रहे हैं। और हम सब इसी तरह के ज्ञान से भरे हुए लोग

हैं। हमारा यह ज्ञान प्रकाश की तरफ ले जाने वाला नहीं है। यह हमें अंधेरे की तरफ ही ले जा रहा है।
बहुत पहले आदमी के मस्तिष्क की बहुत गहरी तरकीबें, कुछ होशियार लोगों
को पता चल गईं, उनका ही काम जारी है। कोरियन युद्ध के बाद चीन में जिन अमरीकी सैनिकों को पकड़ लिया गया था, उनके साथ चीन में बहुत से प्रयोग किए गए। माइंड वॉश के प्रयोग किए गए। उनका दिमाग साफ कर देने की कोशिश की गई। तो क्या किया? उन लोगों को उपवासा रखा।
भूखा आदमी सजेस्टिव हो जाता है। जितना भूखा आदमी हो उतना कोई भी सुझाव उसको दिया जा सकता है। इसलिए भूखे लोग हमेशा खतरनाक हैं। भूखे लोग कोई भी सुझाव पकड़ सकते हैं। और भूखा आदमी कोई भी काम कर सकता है। भूखे आदमी का मन सोचने-विचारने की स्थिति में नहीं रह जाता। उसके दिमाग में जो डाल दिया जाए, वह जल्दी से पहुंच जाता है। खाली पेट किसी भी चीज को स्वीकार कर लेता है। भरा पेट पच्चीस दफे सोचता है। भरे पेट को सोचने की सुविधा है। भूखे पेट को सोचने की सुविधा नहीं है।
तो उन सैनिकों को भूखा रखा गया और सोने नहीं दिया गया।
अगर सोने न दिया जाए तो दिमाग बहुत ही सुझावशील हो जाता है, सजेस्टिव
हो जाता है। एक आदमी को दो-चार दिन मत सोने दें, फिर उससे जो भी आप कहेंगे, वह हां भरने लगेगा। अब वह होश में नहीं है। अब मस्तिष्क ने सब संतुलन खो दिया। इसलिए कैदियों के साथ, जिनसे कंफेशन करवाना हो, उनको जगा कर रखते हैं। उनको सोने नहीं देते। उनको दस-पंद्रह दिन मत सोने दो, जैसे ही वे सोएं, हिला दो। फिर वे होश के बाहर हो गए। फिर उनसे पूछो, तुमने हत्या की थी? तो पहले इनकार करते थे, अब वे हां भरने लगेंगे। अब उनको पता नहीं चल रहा है कि क्या हो रहा है। वे अब सपने में जी रहे हैं करीब-करीब, सपने में, बेहोशी में, मूर्च्छा में।
चीन में उन अमरीकी सैनिकों को खाना कम दिया, सोने नहीं दिया और दिन-रात उनके सामने कम्युनिज्म का प्रचार किया जा रहा है, दिन-रात कम्युनिज्म की बातें की जा रही हैं। वह जाग रहे हैं, बैठे हैं। सो गए, तो हिला दिया। फिर किताब पढ़ी जाने लगी। खाना दिया नहीं जाता, भोजन दिया नहीं जाता। छह महीने तक यह उपद्रव जारी है। कभी कुछ थोड़ा खाना दे दिया है, कभी कुछ दवा दे दी है। जिंदा उनको रखने का पूरा उपाय है। मरने भी नहीं देंगे और जीने भी नहीं देंगे।
छह महीने के भीतर उनका सब होश गड़बड़ हो गया। उनकी सब पुरानी स्मृति गड़बड़ हो गई। छह महीने के बाद जब वे बाहर आए, तब वे चीन की प्रशंसा करते हुए बाहर आए, वे कम्युनिज्म की इज्जत करते हुए बाहर आए। उन्होंने जाकर अमरीका में कहा कि कम्युनिज्म ही ठीक चीज है और कोई चीज ठीक नहीं है। बड़ी हैरानी हुई कि इनको क्या हो गया? इनको हो क्या गया? इनके दिमाग को पूरा पोंछ डाला गया। लेकिन चीन में यह अभी किया गया, धार्मिक लोग हमेशा से यही कर रहे हैं। बच्चों के साथ माइंड वॉश किया जा रहा है और मां-बाप ने जितना अनाचार बच्चों के साथ किया है, और किसी ने कभी किसी दूसरे के साथ नहीं किया है। होश में नहीं हो रहा है यह, हमें पता नहीं है। शायद पता हो जाए, तो हम बंद भी कर दें। हमें पता ही नहीं है।
हिंदू बाप बेटे को हिंदू बनाने की पूरी कोशिश में हैं। मुसलमान बाप मुसलमान बनाने की कोशिश में हैं। इस कोशिश का क्या मतलब है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान पुनरुक्त होते रहेंगे? इस कोशिश का क्या मतलब है कि हिंदू- मंस्लिम दंगे जारी रहेंगे? इस कोशिश का क्या मतलब है कि हत्या जारी रहेगी, आदमी आदमी लड़ता रहेगा? इस कोशिश का यही मतलब है।
लेकिन कोशिश जारी रहेगी। और कोशिश क्या है? एक निर्बोध, क्लीन स्लेट बच्चा पैदा हुआ है, जिसकी तख्ती पर अभी कुछ भी नहीं लिखा गया है। मां-बाप जो भी लिख देंगे वह उस तख्ती पर पकड़ जाएगा। और मां-बाप बहुत जल्दी में हैं कि कुछ लिख दें कि कोई और न लिख दे कुछ।
धार्मिक लोग बड़े डरे रहते हैं। हिंदुओं की किताबों में लिखा है, पुरानी किताबों में, कि अगर जैन मंदिर के सामने से निकलते हो और पागल हाथी आ जाए, तो उस पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना, लेकिन जैन मंदिर में

शरण मत लेना। बचने की उम्मीद हो तो भी भीतर मत जाना। क्यों? क्योंकि कहीं जैन धर्म की कोई बात कान में न पड़ जाए। जैनियों के ग्रंथों में भी यही लिखा हुआ हैः ठीक यही कि हिंदू के मंदिर के सामने से निकलते हों, पागल हाथी आ जाए, तो उसके पैर के नीचे मर जाना बेहतर है, लेकिन हिंदू मंदिर में प्रवेश मत करना। नहीं तो कोई हिंदू धर्म की बात कान में पड़ जाए।
अब कान में पड़ी बात को निकालना मुश्किल होता है। पड़ गई तो पड़ गई और भीतर सब गड़बड़ हो जाएगा। इसलिए दुनिया के सारे धर्मों ने यह कोशिश की है कि दूसरे धर्म से परिचित मत हो जाना। दूसरे धर्म की किताब मत पढ़ना, दूसरे धर्म की बात मत सुनना। अपना धर्म, अपनी किताब, अपना गुरु--अपना गुरु सही, अपनी किताब सही, अपना धर्म सही। बाकी सब गलत हैं।
यह गलत का इतनी जोर से प्रचार जो किया जाता है, यह इसीलिए कि तुम दूसरे
को सुनना ही मत, उस तरफ ध्यान ही मत देना। हर मां-बाप, हर समाज, हर संप्रदाय, बच्चे के मन को जल्दी से भर देना चाहता है। ताकि खाली न रह जाए। लेकिन उसे पता नहीं कि वह उसे मुसलमान होने से बचा लेगा, ईसाई होने से बचा लेगा, हिंदू बना देगा। लेकिन उसे पता नहीं कि उसने अपने बेटे को धार्मिक होने से भी सदा के लिए बचा लिया है। मुसलमान अपने बेटे को हिंदू होने से बचा लेगा, ईसाई होने से बचा लेगा, लेकिन उसे पता नहीं कि उसने अपने बेटे को सदा के लिए धार्मिक होने से भी बचा लिया है। क्योंकि धार्मिक होने के लिए खोज चाहिए थी, वह खोज अब नहीं होगी।
इसका मन भर गया, इस भ्रम से भर गया कि अब मैं जानता हूं कौन है भगवान, क्या है भगवान? इसके प्रश्न सब मर गए। इसकी जिज्ञासा मार डाली गई, इसको ज्ञान दे दिया गया।
ध्यान रहे, दो तरह के ज्ञान हैं--एक ज्ञान, जो जिज्ञासा और खोज के बाद उपलब्ध होता है वह प्रकाश में ले जाता है, और एक ज्ञान, जो जिज्ञासा और प्रश्नों की हत्या करके पकड़ लिया जाता है, वह अंधकार में ले जाता है। वह प्रकाश में नहीं ले जाता।
हमारे पास कैसा ज्ञान है? हमारे पास जो ज्ञान है वह हमने खोज से पाया है? पूछ कर, प्रश्न करके, जिज्ञासा करके, संदेह करके? हमने उसे खोजने के लिए कोई श्रम किया है? कोई ऊहापोह किया है? कोई चिंतना की है? कोई मनन किया है? नहीं, हमने उसे पाने के लिए जितना मनन हो सकता था, चिंतन हो सकता था उसकी सब संभावनाएं तोड़ दी हैं। प्रश्न हो सकते थे, उनकी जड़ काट दी है। जिज्ञासा हो सकती थी, उसको मार डाला है और ज्ञान प्राप्त कर लिया है। जिज्ञासा की हत्या पर जो ज्ञान खड़ा है। वह अंधकार में ले जाने वाला ज्ञान है। वह ज्ञान कभी भी प्रकाश में नहीं ले जा सकता है। और हम सबके पास ऐसा ही ज्ञान है। हमने कभी पूछा है गहरे मन से कि ईश्वर है? नहीं! पूछने के पहले हमने मान लिया है कि है। जिसने पूछा ही नहीं वह जानेगा कैसे? फिर कुछ भी माना जा सकता है।
रूस में बच्चे पैदा होते हैं, तो उनको वे समझा रहे हैं कि ईश्वर नहीं है। बच्चे यही मान लेते हैं। बच्चे अबोध हैं। रूस में बीस करोड़ की संख्या में अधिकतम लोग यही मानते हैं न कोई ईश्वर है, न कोई मोक्ष है, न कोई आत्मा है। आदमी बस शरीर है।
ये बीस करोड़ लोग अज्ञानी हैं? हमको ऐसा ही लगेगा कि अज्ञानी हैं; क्योंकि ज्ञानी आत्मा को मानते हैं, मोक्ष को मानते हैं, ईश्वर को मानते हैं। लेकिन हम अपने से पूछें कि हममें उनमें फर्क क्या है? उनके बच्चों की स्लेट पर लिखा जा रहा है, ईश्वर नहीं है। बच्चे वह दोहरा रहे हैं। हमारे बच्चों की स्लेट पर लिखा जा रहा है, ईश्वर है। बच्चे वह दोहरा रहे हैं। दोनों के बच्चे दोहरा रहे हैं। दोनों के बच्चे नहीं जान रहे हैं। फर्क क्या है?
इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप क्या दोहरा रहे हैं? तोता यह कहे कि ईश्वर है या तोता यह कहे कि ईश्वर नहीं है, क्या फर्क पड़ता है? सिर्फ इतना ही पता चलता है कि एक तोते का मालिक कहता है, ईश्वर है, और दूसरे तोते का मालिक कहता है कि ईश्वर नहीं है। और तो कोई पता नहीं चलता। दोनों तोते हैं, और दोनों मालिक की बातें दोहरा रहे हैं। उनका अपने पास कुछ भी नहीं है।

आदमियत को हमने तोतों की हालत में डाल दिया है। एक-एक आदमी को तोता बना दिया है; लेकिन दुख होता है मन को। इसलिए हम कभी फिकर भी नहीं करते कि हम तोते तो नहीं हैं। हम कहीं प्रोपेगेंडा के शिकार तो नहीं हैं? विक्टिम तो नहीं हैं?
हम सब शिकार हैं। हमारा सारा ज्ञान प्रोपेगेंडा से आया हुआ है। हमारा ज्ञान और कहीं से नहीं आया हुआ है। एक के आस-पास हिंदू प्रोपेगेंडा चल रहा है, वह हिंदू हो गया। एक के पास मुसलमान प्रोपेगेंडा चल रहा है, वह मुसलमान हो गया। एक के पास कम्युनिस्ट प्रोपेगेंडा चलेगा, वह कम्युनिस्ट हो जाएगा। नास्तिक का चलेगा, नास्तिक होगा। आस्तिक का चलेगा, आस्तिक हो जाएगा।
सारी मनुष्यता प्रोपेगंडे से घिरी है, प्रचार से। प्रचार ज्ञान नहीं
बन सकता। प्रचार डाला हुआ ज्ञान है। और डालने की तरकीबें जाहिर हो गई हैं, और डाली जा रही हैं। सब तरफ से तरकीबें की जा रही हैं डालने की। आदमी के भीतर-बाहर से ज्ञान डालने की कोशिशें चल रही हैं।
और अब तो हमें और भी अच्छे उपाय मिल गए हैं। अभी अमरीका के एक वैज्ञानिक ने एक घोड़े की खोपड़ी में छेद करके एक इलेक्ट्रोड डाल दिया उसकी खोपड़ी में, एक छोटा सा यंत्र डाल दिया, उस घोड़े को कुछ पता नहीं है। वह यंत्र जो है रेडियो से प्रभावित किया जा सकता है। रेडियो का दूसरा हिस्सा वैज्ञानिक के पास है। वह उस रेडियो से कहता है, घोड़े, नाच, घोड़ा नाचने लगता है। घोड़े को कुछ पता नहीं। घोड़ा यही सोच रहा होगा कि मैं नाच रहा हूं। वह कहता है, घोड़ा रुक, तो घोड़ा रुक जाता है।
यह अभी प्रयोग के तल पर घटना घटी है। यह आदमी के साथ भी कल घटेगी। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कम्युनिस्ट हुकूमत होगी, जो आदमी गड़बड़ करेंगे उनकी खोपड़ी में आपरेशन करके इलेक्ट्रोड डाल देगी और कहेगी कैपिटल ही असली धर्मग्रंथ है, तो वह आदमी कहेगा कैपिटल ही असली धर्मग्रंथ है। कहेगी, ईश्वर नहीं है, तो वह आदमी कहेगा ईश्वर नहीं है। जो इस इलेक्ट्राड को कहा जाएगा वह खोपड़ी में वही ध्वनि पैदा कर देगा और वह आदमी मुंह से वही बोल देगा।
यह इलेक्ट्रोड नई तरकीब है। पुरानी तरकीब लंबी थी, पंद्रह-बीस साल खोपड़ी पर बच्चे के भरो कि कुरान ही सत्य है, बाइबिल ही सत्य है, गीता ही सत्य है। बीस-तीस साल लग जाते थे, तब कहीं उसकी खोपड़ी दोहराती थी। अब हमने नई तरकीब निकाल ली। वह बैलगाड़ी का रास्ता था, यह जेट प्लेन का रास्ता है। इलेक्ट्रोड डाल देंगे, जो चाहेंगे वह उससे कहलवा लेंगे। आदमी बड़ा निरीह हो जाएगा।
आदमी अभी भी निरीह रहा है। आदमी बहुत हेल्पलेस है। प्रोपेगेंडा खतरनाक है। वह चारों तरफ से आदमी को जकड़ने की कोशिश करता है। और मन का नियम है कि उस पर दोहराए चले जाओ एक बात, तो कितनी देर मन विरोध करेगा, मन धीरे- धीरे, धीरे-धीरे ऊब जाता है और स्वीकार कर लेता है। हमें पता नहीं है। अब जो खोज करते हैं वे कहते हैं।
तीस बच्चे पहली कक्षा में भरती हुए हैं। एक लड़के से सवाल नहीं बना। उसका गुरु उसे कहता है, तुम बिल्कुल गधे हो। उसे पता नहीं वह इलेक्ट्रोड डाल रहा है उसकी खोपड़ी में। उस बच्चे को सुनाई पड़ता है, मैं बिल्कुल गधा हूं। वह डर गया है। अब वह कल सवाल करता है, क्योंकि उसके भीतर इलेक्ट्रोड बोल रहा है। तू है तो गधा, सवाल क्या कर पाएगा?
अब वह डरा हुआ सवाल कर रहा है। गधे कहीं सवाल करते हैं? अब वह सवाल कर रहा है और वह सवाल ठीक नहीं हो पाता है, क्योंकि भीतर तो वह जानता है, मैं गधा हूं। फिर गुरुउसका कहता है कि तू बिल्कुल गधा है, तू कभी नहीं सीख सकता। तुम तीन पीढ़ी से गधे रहे हो। तुम्हारी तीन पीढ़ियां यहां पढ़ी हैं इसी स्कूल में।
उस लड़के के मन में और बात बैठ गई कि मैं बिल्कुल गधा हूं। और बाकी लड़के
भी खुश हो रहे हैं कि यह गधा है। दूसरे को गधा देखने में सभी को खुशी होती है। सारी कक्षा मानती है यह गधा है। यह दोहरता चला जाएगा, वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, यह लड़का गधा हो जाएगा। इलेक्ट्रोड डाल दिया गया।

जिस गुरु ने कभी किसी बच्चे को कहा है, तुम गधे हो, उस गुरु ने इतनी बड़ी हत्या की है जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। डाल दी गई बात। पकड़ ली जाएगी। गहरी होती चली जाएगी और वह बच्चा भी धीरे-धीरे स्वीकार कर लेगा कि मैं ऐसा हूं, मुझसे कुछ होने वाला नहीं।
एक बाप अपने बेटे से कहता है, तुम बिल्कुल निकम्मे हो, तुमसे कभी कुछ नहीं हो सकता। उस बाप को पता नहीं, इलेक्ट्रोड डाल दिया बेटे के मन में। अब वह बेटा जानेगा कि मैं निकम्मा हूं, मुझसे कभी कुछ हो नहीं सकता। और अपने बाप की बात को तो सिद्ध करना ही पड़ेगा उसको। तो वह सब तरह की कोशिश करेगा कि बाप गलत न हो जाए। वह सब तरह के प्रयोग करेगा और जानेगा कि ठीक ही है, बाप कहते हैं, कुछ हो नहीं सकता, तो कुछ हो नहीं रहा है। पिता ठीक ही कहते थे। पिता कभी गलत नहीं कहते थे। और वह निकम्मा हो जाएगा। वह निकम्मा हो जाएगा। निकम्मे होने का हमने उसके भीतर सूत्र डाल दिया।
हम जो भी सूत्र डाल रहे हैं, आदमी वही हो जाता है। हमारा सारा ज्ञान इसी तरह का है, डाला हुआ है, हमारा पाया हुआ नहीं है। और मैं कहना चाहता हूं कि डाला हुआ ज्ञान मनुष्य को अज्ञान में खड़ा रखता है, कभी ज्ञान की तरफ नहीं जाने देता है।
हमें डाले हुए ज्ञान से मुक्त होना पड़ेगा। जो आदमी डाले हुए ज्ञान से मुक्त होता है, वह अपने आदमी होने की घोषणा करता है। वह यह कहता है, मैं मशीन नहीं हूं, मैं तोता नहीं हूं, मुझे सिखाओ मत, मैं खोजना चाहूंगा, मैं जानना चाहूंगा। मैं खुद ही खोजना और जानना चाहता हूं। कृष्ण को कोई विशेष हक नहीं है कि वह खुद जानें। महावीर को कोई विशेष हक नहीं है कि वह खुद जानें। मुझे भी उतना ही हक है कि मैं जानूं। क्योंकि जब जानूंगा तभी मेरी आंखें प्रकाश से भरेंगी। जब जानूंगा तभी मेरे प्राण नाचेंगे, जब जानूंगा तभी मैं रूपांतरित होऊंगा।
दुनिया के सब आदमियों को खुद जानने का हक है। लेकिन नहीं, यह नहीं हुआ
अब तक। अब तक अधिक लोगों को दूसरे लोग जना रहे हैं, कोई किसी को जानने नहीं दे रहा है। और हम सब उसी ज्ञान से भरे हुए हैं, जो दूसरे हममें डाल देते हैं। यह अचेतन हो गया है, हमें पता ही नहीं, कब से ज्ञान हममें डाला जा रहा है। बच्चा पैदा हुआ और ज्ञान डालना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा हुआ, उस नासमझ बच्चे के पास भी राम के गीत गाए जा रहे हैं और मोहम्मद की प्रशंसा की जा रही है। उसके मन में पकड़ी जा रही हैं बातें, पकड़ी जा रही हैं बातें।
अब हमारी समझ में यह आना शुरू हुआ है कि हर आदमी का मन सिखाया हुआ मन है, किसी आदमी के पास अपना मन नहीं है। और अपना मन न हो तो हम क्या हैं? हमसे ज्यादा निर्धन कोई भी नहीं हो सकता। माइंड भी बारोड, मन भी उधार। तो फिर हम क्या हैं? हमारी आत्मा क्या है? हमारा होना क्या है? जो सिखा दिया जाए, वही आदमी सीख लेता है। खतरनाक से खतरनाक बातें सिखाई जा सकती हैं। हिटलर ने अपने मुल्क को सिखा दिया कि यहूदियों को मारे बिना जर्मनी
का कोई उद्धार नहीं है। अब बेचारे यहूदियों का कोई संबंध नहीं है जर्मनी के उद्धार और अनुद्धार से। पहले तो लोग हंसे। यहूदियों ने कहाः क्या पागलपन की बात है? दूसरों ने भी कहाः यह क्या पागलपन की बात है?
लेकिन हिटलर होशियार है, ज्यादा जानता है। वह कहता है, फिकर मत करो, दोहराए चले जाओ। जो आज कह रहे हैं पागल, वह कल कहेंगे ठीक। हिटलर दोहराए चला गया, चला गया, चला गया।
पांच-सात साल के भीतर जो कहते थे पागल, वे भी दोहराने लगे कि सब यहूदियों की ही गड़बड़ है। सब अखबार यही कहते हैं, सब रेडियो यही कहते हैं, तो आदमी कब तक बचेगा? एक-एक आदमी क्या करेगा? वह भी कहने लगा, सब यहूदियों की गड़बड़ है, यहूदियों को मारना जरूरी है।
फिर हिटलर ने यहूदी मारने शुरू किए। अकेले एक आदमी ने एक करोड़ यहूदियों की हत्या की। और हम हैरान हैं कि इतना बड़ा विचारशील मुल्क, जर्मनी जैसा विचारशील मुल्क हिटलर की इस बेवकूफी में राजी कैसे हो गया? इलेक्ट्रोड डाल दिया खोपड़ी में। वह राजी हो गए।
फिर जर्मनी बहुत दूर है, उसे छोड़ दें। हमने हिंदुस्तान-पाकिस्तान के नाम पर जो किया, वह क्या है? कुछ नेता चिल्लाए चले गए कि हिंदू-मुसलमान

दुश्मन हैं। सम्मिलित था और राम-लीला मुसलमान भी देखता था, कोई सवाल न था, कोई झगड़ा न था; लेकिन ऊपर से लोग चिल्लाए चले गए, हिंदू-मुसलमान दुश्मन हैं। कुछ लोग चिल्लाए चले गए, नहीं दुश्मन नहीं हैं, भाई-भाई हैं। हालांकि ध्यान रहे, जब भी भाई-भाई का सवाल उठता है तब दुश्मनी स्वीकृत
हो चुकी होती है। नहीं तो कोई भाई-भाई नहीं कहता। अगर कभी मुझे आपसे आकर कहना पड़े कि हम दोनों बिल्कुल भाई-भाई हैं, पक्का मानिए भाई-भाई हैं, तो समझना चाहिए झगड़ा शुरू हो चुका है। नहीं तो भाई-भाई दोहराना नहीं पड़ता। भाई-भाई होना काफी है। दोहराने की जरूरत तब पड़ती है जब दुश्मनी साफ होने लगे। जिससे हमारी दुश्मनी होने लगती है उससे हम कहते हैं कि हम बिल्कुल भाई-भाई हैं। हम तो बिल्कुल सगे भाई हैं। यह कहने की जरूरत दुश्मनी के बाद पैदा होती है।
कुछ लोग चिल्लाते गए दुश्मन हैं, कुछ लोग कहते गए भाई-भाई हैं। दोनों
एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, कोई फर्क नहीं। मुल्क के मन में बैठता चला गया। पहले मुल्क हंसा पाकिस्तान की बात सुन कर कि पाकिस्तान! मुसलमान भी हंसे! लेकिन फिर धीरे-धीरे जिन्ना दोहराए चला गया, पाकिस्तान! पाकिस्तान! पाकिस्तान! धीरे-धीरे वह मन में बैठता चला गया। वह धीरे-धीरे पकड़ता चला गया। उसने मुसलमानों को पकड़ लिया कि पाकिस्तान होना ही। उसने हिंदुओं को भी पकड़ लिया कि पाकिस्तान नहीं होने देंगे। लेकिन पाकिस्तान एक सचाई बन गया।
हिंदुस्तान को अखंड रखेंगे हिंदुओं ने कहा। अखंड रखने की आवाज में खंडित हो जाने का डर पूरी तरह प्रविष्ट हो गया। तोड़ देंगे हिंदुस्तान को, उसमें भी बात पूरी प्रविष्ट हो गई। फिर टूटना जरूरी हो गया, वह टूट गया। यह टूटना कैसे हुआ? इलेक्ट्रोड तोते बना दिया हिंदुस्तान के लोगों को, उनके दिमाग में बात बिठा दी। और फिर हम समझते हैं, बहुत अच्छा हो गया। फिर हम समझते हैं कि बिल्कुल जरूरी था। लेकिन कुछ भी जरूरी नहीं था। दुनिया में मनुष्यता के बीच सब खंड, हमें तोतों की तरह सिखा कर पैदा किए गए हैं। कोई आदमी किसी दूसरे आदमी से भिन्न नहीं है। न चमड़ी का रंग अलग करता है, न देश की हवाएं अलग करती हैं, न पहाड़ों की सीमाएं अलग करती हैं, न समुद्रों की दूरियां अलग करती हैं। मनुष्यता एक है। लेकिन मनुष्यता एक बिल्कुल नहीं मालूम पड़ती है, हजार-हजार टुकड़ों में टूटी हुई, वे टुकड़े हमें दिखाए गए हैं।
धर्म एक है, धर्म दो हो नहीं सकते।
लेकिन हजार-हजार धर्म हैं। वह हमें सिखाए गए हैं। इन सिखाए हुए धर्मों, सिखाए हुए देशों, सिखाई हुई जातियों, और सिखाए हुए ज्ञान से छुटकारा कैसे हो?
बस एक ही रास्ता है, अगर हमें यह ख्याल हो जाए कि यह सिखाया हुआ है; हम पूरे कांशस हो जाएं कि यह सिखाया हुआ है। मैं तोता बनाया गया हूं, बस काम शुरू हो जाएगा, बगावत शुरू हो जाएगी। फिर आप सिखाई हुई बात को दोहराना बंद करेंगे। आप कहेंगेः यह मैं नहीं दोहरारूंगा।

कौन कहता है कि मैं मुसलमान हूं? कौन कहता है कि मैं हिंदू हूं? मुझे पता नहीं। और जब तक परमात्मा नहीं मिलता मैं पूछूं भी किससे कि मैं कौन हूं? कौन बताने वाला हो सकता है?
परमात्मा कभी मिलेगा तो पूछ लूंगा कि तूने मुझे हिंदू बनाया है या मुसलमान बनाया है? तूने मुझे भारतीय बनाया है कि चीनी बनाया है? तूने मुझे क्या बनाया है? शूद्र बनाया है कि ब्राह्मण बनाया है। यह भगवान के सिवाय और किससे पूछा जा सकता है। उससे पूछ लेंगे जब मिलेगा। लेकिन हम आदमी से पूछ कर और आदमी से सीख कर चुप बैठ गए हैं। हमारा सारा ज्ञान ऐसा है।
जीवन के परम सत्यों के संबंध में हमने कुछ बातें सीख ली हैं और दोहराए चले जा रहे हैं। क्या हम इन्हीं बातों को दोहराते-दोहराते कभी सत्य तक पहुंच जाएंगे? कुछ लोग कहते हैं कि असत्य को दोहराते रहो, तो धीरे-धीरे सत्य हो जाता है। हिटलर कहता है अपनी आत्म-कथा में कि घबड़ाओ मत, बस असत्य को दोहराते रहो और सत्य हो जाएगा।

लेकिन असत्य दोहराने से सत्य हो सकता है? कितना ही दोहराओ। सत्य दिखाई पड़ सकता है, सत्य हो नहीं सकता। असत्य को दोहराते-दोहराते ऐसा हो सकता है कि लगने लगे यही सत्य है। लेकिन वह सत्य हो नहीं जाएगा। असत्य तो असत्य ही रहेगा।
असत्य के सत्य होने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन असत्य सत्य मालूम पड़ने लगेगा। और यह असत्य से भी ज्यादा खतरनाक बात है असत्य का सत्य मालूम पड़ना। नहीं, आदमी को अगर खोजना हो ज्ञान, खोजना हो प्रकाश, तो मन की पट्टी को साफ रखें। मन की पट्टी को साफ रखें, मत लिखने दें किसी को अपनी पट्टी पर कि परमात्मा है या नहीं है। मत लिखने दें कि आत्मा अमर है या नहीं है। कहें कि मैं नहीं जानता हूं, और मैं जानने के लिए उत्सुक हूं; लेकिन सीखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। क्योंकि सीखने से कभी जानना नहीं हो सकता।
रमण के पास कोई आया और कहने लगाः मैं सीखना चाहता हूं धर्म। रमण ने कहाः सीखना चाहते हो? पागल हो गए हो? किसी ने कभी धर्म सीखा है?
तो उसने कहाः फिर मैं क्या करूं?
तो रमण ने कहाः सीखो मत। लर्निंग की जरूरत नहीं है। अनलर्न करो, अनसीखा करो, जो सीखा है वह भी छोड़ दो। खाली होकर आ जाओ।
उस आदमी ने कहाः यह तो मुश्किल है। जो मैं सीखा हूं, आप और कुछ सिखा दें, उसमें जोड़ सकता हूं, एडीसन कर सकता हूं। सरल वही है। आप मुझे कुछ और बता दें, तो मैं उसको भी जोड़ लूंगा।
रमण ने कहाः जोड़ने का सवाल नहीं है; क्योंकि गलत में सिर्फ गलत ही जुड़ सकता है। गलत में सही नहीं जुड़ सकता। माने हुए में सिर्फ माना हुआ जुड़ सकता है, माने हुए में जाना हुआ नहीं जुड़ सकता। उनका कोई तालमेल नहीं है। तू पहले खाली होकर आ। फिर हम तुझे उस तरफ उठने की बात कहें कि कैसे तू खाली होकर खड़ा हो सकता है परमात्मा के समक्ष! सीखी हुई बातों को छोड़ आ। किसने कहा तुझसे कि ईश्वर है? हो सकता है हो, हो सकता है न हो!
बुद्ध एक गांव में प्रवेश किए, सुबह ही सुबह है अभी। एक आदमी मिला है दरवाजे पर गांव के और उसने पूछा है, ईश्वर है? मैं आस्तिक हूं।
बुद्ध ने कहाः ईश्वर? ईश्वर बिल्कुल नहीं है। तुझसे किसने कहा पागल
कि ईश्वर है। तू कैसे आस्तिक बन गया? तू किसकी बातों में आ गया? ईश्वर तो है ही नहीं। मैंने खोज लिया, कहीं भी नहीं है। सब कुछ है, ईश्वर भर नहीं है। वह आदमी झाड़ के नीचे अवाक खड़ा रह गया। उसने सोचा था, बुद्ध से सहायता
ले लेगा, अपनी मान्यता को और मजबूत कर लेगा। बुद्ध कहेंगे, है, तो फिर अपनी आस्था और मजबूत हो जाएगी। पता तो नहीं है कि है, मानते हैं कि है। बुद्ध जैसा प्रामाणिक आदमी कह देगा, है, तो हम और जोर से मान लेंगे कि है, इसीलिए आया था।
गुरुओं के पास लोग इसीलिए जाते हैं, अपना अज्ञान और मजबूत करने के लिए! कि वे गुरुभी कह दें कि तुम जो मानते हो बिल्कुल ठीक है। किताब पढ़ते हैं; कि किताब कह दे कि तुम जो मानते हो, बिल्कुल ठीक है। और जहां कोई कहे नहीं, यह ठीक नहीं है, फिर वहां जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। जहां कोई ज्ञान छीन ले वहां कोई नहीं जाता। जहां ज्ञान मिलता हो वहां लोग जाते हैं।
और मैं मानता हूं, जो ज्ञान छीन ले, वह आपका मित्र है, जो ज्ञान दे दे
वह आपका दुश्मन है। क्योंकि ज्ञान दिया ही नहीं जा सकता, दिया हुआ ज्ञान झूठा हो जाता है।
बुद्ध ने कहाः नहीं है ईश्वर।
वह आदमी झाड़ के नीचे खड़ा रह गया। बुद्ध हंसते हुए आगे बढ़ गए। बुद्ध के साथ एक भिक्षु है आनंद। वह बड़ा हैरान हो गया। बुद्ध ने कह दिया, बिल्कुल नहीं है। रात पूछ लूंगा एकांत में।
दोपहर को एक आदमी और आया उस गांव में। उस आदमी ने कहाः मैं नास्तिक हूं, मैं ईश्वर को बिल्कुल नहीं मानता हूं। आपका क्या ख्याल है?
वह आदमी भी उसी इच्छा से आया है, जिस इच्छा से सुबह वाला आदमी आया था।
अलग-अलग बातें हैं, इच्छा एक ही है। बातों में, भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।

बातें अलग हो सकती हैं, सवाल इच्छा का है। वह आया है जानने कि बुद्ध भी कह दें कि ईश्वर नहीं है, तो मैं निश्चिंत हो जाऊं। वह भी परेशान है। विश्वास करने वाला कभी निश्चिंत नहीं हो पाता। क्योंकि उधार ज्ञान कैसे निश्चिंत करेगा? तो डर बना ही रहता है कि पता नहीं गलत न हो। तो और पक्का कर लें, और पक्का कर लें, और पक्का कर लें। गारंटी कहीं से कोई लिख कर दे दे तो ठीक हो जाए।
बुद्ध से उसने कहाः मैं नास्तिक हूं, ईश्वर को नहीं मानता। आप क्या कहते हैं?
बुद्ध ने कहाः ईश्वर नहीं मानते, पागल हो गए हो? किसने तुमसे कहा ईश्वर को मत मानो? ईश्वर है। मैंने बहुत खोजा, ईश्वर के सिवाय और कुछ भी नहीं पाया।
अब तो आनंद बहुत परेशान हो गया। सुबह इस आदमी ने क्या कहा, दोपहर क्या
कह रहा है यह आदमी, यह बुद्ध को क्या हो गया? यह इतनी जल्दी बदल कैसे गए? सोचा, रात जल्दी हो जाए, एकांत मिल जाए तो पूछ लूं।
सांझ और मुश्किल हो गई। एक आदमी और आया, उसने बुद्ध से कहा कि मुझे कुछ
भी पता नहीं ईश्वर है या नहीं, मैं क्या करूं?
तो बुद्ध ने कहाः तुझे जो भी थोड़ा-बहुत और पता हो, वह और छोड़ दे। बिल्कुल ऐसा हो जा कि तुझे कुछ भी पता नहीं, खाली हो जा। फिर मुझसे पूछने मत आ। जो होगा वह तुझे पता चल जाएगा। तू खाली हो जा, फिर जो है वह तुझे दिखाई पड़ जाएगा। तू भरा रह, फिर जो है वह तुझे दिखाई नहीं पड़ सकता।
भरी हुई आंखें कुछ देख सकती हैं? खाली आंखें देख सकती हैं। भरे हुए दर्पण में तस्वीर बनेगी? खाली दर्पण में तस्वीर बन सकती है।
तू खाली हो जा, तू दर्पण की तरह बिल्कुल खाली हो जा, तू भाग जा। और मेरे पास आया तो ठीक है, अब और किसी के पास मत जाना, नहीं कोई तुझे भर दे। बचना, गुरुओं से बचना। गुरुओं से बचना बड़ा मुश्किल है। गुरु तलाश करते हुए घूमते हैं कि कहीं कोई फंस जाए, तो जल्दी से उसकी गर्दन पकड़ लें। गुरु सब तरफ घूम रहे हैं कि कोई मिल जाए। बुद्ध ने कहाः गुरुओं से बचना। जाना मत किसी के पास अब पूछने। अच्छा हुआ मेरे पास आया। क्योंकि मैं गुरु नहीं बनता। इसलिए तू बच गया। नहीं तो तुझे फांस लेता। तू बिल्कुल खाली हो जा। आनंद की तो मुश्किल बढ़ गई और तूफान चलने लगा, आंधी उठने लगी कि यह क्या मामला है? बुद्ध का मतलब क्या है? तीन उत्तर देते हैं एक ही दिन में? हमारा सबका ख्याल यह है कि जो आदमी जानता है वह बहुत कंसिस्टेंट होगा। वह वही उत्तर सुबह देगा, वही दोपहर, वही सांझ। यह गलत है। बुद्धुओं के सिवाय कंसिस्टेंट कोई भी नहीं होता। बुद्धिहीनों के सिवाय कंसिस्टेंट कोई भी नहीं होता। जितना बुद्धिमान आदमी है हर पल उसका उत्तर बदल जाएगा। क्योंकि सब बदल गया। वह आदमी बदल गया है जिससे बात करनी है। वह घड़ी बदल गई, वह सवाल बदल गया। उसका उत्तर बदल जाएगा।
सांझ, रात सब चले गए हैं, आनंद ने बुद्ध के पैर पकड़ लिए और कहाः मुझे मुश्किल में डाल दिया, तीन-तीन उत्तर एक ही दिन में, बिल्कुल उलटे! बिल्कुल भिन्न! आप कहते क्या हैं? आप बिल्कुल असंगत मालूम पड़ते हैं। सुबह आपने कहा, ईश्वर नहीं है, दोपहर कहा, है, सांझ कहा, कुछ भी मत मान, न है, न ना है, खाली हो जा। मैं क्या करूं?
बुद्ध ने कहाः पागल, तुझे तो मैंने एक भी उत्तर न दिया था, तूने उत्तर क्यों लिया? तुझसे तो मैंने बात ही नहीं की थी, तेरा प्रश्न ही नहीं था, तो तूने उत्तर कैसे पकड़ा? जिनके प्रश्न थे उनको मैंने उत्तर दिए थे, बात खत्म हो गई।
उस आनंद ने कहाः और मुश्किल में मत डालो मुझे; क्योंकि मैं कोई बहरा नहीं हूं, मुझे उत्तर सुनाई पड़ गए।
बुद्ध ने कहाः जो दूसरों को दिए गए उत्तर सुनता है वह मुश्किल में पड़
ही जाएगा। अब इसमें मैं क्या कर सकता हूं? लेकिन तूने पूछा है, तो मैं तुझे कहता हूं। मैंने दिन में एक ही काम किया, जो जहां था उसे वहां से हिलाया। मैंने कोई तीन अलग काम नहीं किए। जो जहां था उसे वहां से हिलाया। जो जिसने सीख रखा था, वह उससे छीना। जो जिसने मान रखा था, उस पर हथौड़ा मार दिया। जो

जहां खड़ा था वहां से उसे धक्का दिया कि आगे बढ़। आस्तिक को कहा, नहीं-नहीं, इतना काफी नहीं है। नास्तिक को कहा, पागल है। धक्के दिए उनको। और जो आदमी आया था, जिसने कहा, न आस्तिक हूं, न नास्तिक हूं, उसे कहा, और भी बिल्कुल ख्याल ही छोड़ दे इन सब बातों का, बिल्कुल ही ख्याल छोड़ दे। आस्तिक-नास्तिक होना ही नहीं है।
हम सब भी कहीं-कहीं जकड़ कर खड़े हो गए हैं। हिंदू को हिंदू धर्म से छुड़ाने की जरूरत है, मुसलमान को मुसलमान धर्म से छुड़ाने की जरूरत है, ईसाई को ईसाइयत से, जैन को जैन होने से, कम्युनिस्ट को कम्युनिस्ट होने से, नास्तिक को नास्तिक होने से।
बड़ा उलटा मामला है। छीनने वाले तो लोग हैं, लेकिन छीनने के पहले वे देना शुरू कर देते हैं। मुसलमान भी हिंदू से हिंदू होना छुड़ाना चाहता है, हिंदू भी ईसाई से ईसाई होना छुड़ाना चाहता है, लेकिन इसलिए कि उसको हिंदू बना ले। मुसलमान हिंदू को, हिंदू मिटाना चाहता है कि वह मुसलमान बना ले। छुड़ाने वाले लोग बहुत हैं, लेकिन कुछ देने की आकांक्षा पीछे है। और जो कुछ दे देता है, छुड़ाने से कोई फर्क नहीं पड़ता।
जैसे मरघट हम अरथी ले जाते हैं, एक कंधे पर रखते-रखते रास्ते में कंधा
थक जाता है, फिर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। कंधा बदल जाता है, वजन उतना ही रहता है, कोई फर्क नहीं पड़ता। कुरान उतनी ही वजनी है जितनी गीता, और मस्जिद उतनी ही खतरनाक है जितना मंदिर, और बाइबिल उतनी ही बांध सकती है जितनी रामायण।
सवाल बाइबिल, गीता, कुरान का नहीं है, सवाल बंधने का है। सवाल मंदिर और मस्जिद का नहीं है, सवाल किन्हीं दीवालों के भीतर खड़े हो जाने का है। कोई भी दीवाल काम दे देती है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल नाम का नहीं है कि इस्लाम हो, कि ईसाई हो कि हिंदू हो।
कोई भी नाम आदमी को घेरे में खड़ा कर देता है। और सारे संप्रदाय और सारे संगठन मनुष्य को धार्मिक नहीं बनाना चाहते, सिर्फ उसे कुछ सिखाना चाहते हैं। और सिखाया हुआ आदमी तोता बन जाता है। आदमी भी नहीं रह जाता, धार्मिक होना तो बहुत दूर है।
मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं आज की सुबह, कुछ आपको देना नहीं चाहता। क्योंकि देने की तो बात ही गलत है। आपसे कुछ छीन लेना चाहता हूं, बिना शर्त। कुछ पीछे देने का सवाल नहीं है कि आप यह छोड़ दें और यह पकड़ लें। नहीं, पकड़ छोड़ दें। यह छोड़ दें और दूसरा पकड़ लें, पकड़ जारी रहेगी। नहीं, पकड़ छोड़ दें। पकड़ें मत। और जो सीखा है, सजग हो जाएं कि वह सीखा हुआ आपकी चेतना को विकसित नहीं होने दे रहा है, कारागृह बन गया है। वह सीखा हुआ, आपको तोता बना दिया है, मशीन बना दिया है, यंत्र बना दिया है। हम सबको यंत्र बना दिया है। इस यांत्रिकता से मुक्त हो जाएं, इसे तोड़ डालें--न आस्तिक रह जाएं, न नास्तिक; न हिंदू, न मुसलमान। कोई वाद न रह जाए। क्योंकि हमें कोई सत्य का पता नहीं, हमें वाद कैसे पकड़ें? हमें परमात्मा का कोई पता नहीं, हम किस मंदिर को सही कहें?
और मजा यह है कि जिसको परमात्मा का पता हो गया हो, उसको या तो सभी मंदिर गलत हो जाते हैं या सभी मंदिर सही हो जाते हैं। और दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं। इसमें कोई फर्क नहीं है। लेकिन जिसको पता नहीं है, वह कहता है, यह सही है और वह गलत है। और उपद्रव शुरू होता है। हम सब विश्वास से भरे हुए लोग, विलीफ से भरे हुए लोग, आस्था से भरे हुए लोग अंधे हो जाते हैं। आस्था अंधा करती है। आस्था जिज्ञासा की हत्या है, मर्डर है। एक आदमी
को मार डालना इतना बुरा नहीं है; क्योंकि सिर्फ शरीर मरता है, लेकिन एक आदमी की आत्मा को मार डालना बहुत बुरा है, क्योंकि सब मर जाता है, सब कुछ मर जाता है। शरीर तो हम बचा लेते हैं, आत्मा की हत्या करना शुरू करते हैं। जैसे किसी आदमी को जन्म के साथ ही पैरालिसिस के इंजेक्शन लगाने शुरू
कर दिए जाएं, कि सारा शरीर पैरालाइज्ड हो जाए, तो बेचारा बीस-पच्चीस वर्ष का होते-होते किस हालत में पहुंच जाएगा? पड़ा रहेगा बिस्तर पर, हाथ-पैर हिल नहीं सकेंगे, क्योंकि सारा शरीर लकवा खा गया है।

इसी तरह हमारी आत्मा को जन्म के साथ ही पैरालाइज किया जा रहा है, लकवा मारा जा रहा है। लकवे के अलग-अलग नाम हैं, अच्छे-अच्छे नाम हैं। बीमारियों की दुकान चलानी हो, तो नाम अच्छे रखने पड़ते हैं, और अगर कारागृह में भी लोगों को निमंत्रण करना हो, तो कृष्ण-मंदिर नाम रख दो, तो बहुत जंचता है। और अगर हथकड़ियों में भी लोगों को खुद ही बुलाना हो कि आओ और अपनी तरफ से हथकड़ियां पहन लो, तो हथकड़ियां मत कहना उनको, सोने का पालिस चढ़ा देना और आभूषण कहना।
कई नासमझ सोने की हथकड़ियां पहने हुए हैं, सिर्फ उनको आभूषण समझ कर। आभूषण समझ में आ गया, तो हथकड़ी आदमी पहन लेता है। और मंदिर ख्याल में आ जाए, सिर्फ दरवाजे पर लिखा हो मंदिर, तो जेल के भीतर प्रवेश कर जाता है।
अच्छे शब्द बीमारियों को देना पड़ते हैं। तो हम कहते हैं, धर्म-शिक्षा
दे रहे हैं बच्चों को। सिर्फ पैरालाइज कर रहे हैं। उनकी आत्मा को लकवा लगा रहे हैं कि उनकी आत्मा कभी चिंतन न कर सके, कभी मुक्त होकर सोच न सके, कभी विचार न कर सके, कभी प्रश्न न उठे, कभी जिज्ञासा न उठे। मर जाए भीतर सब, बस आदमी शरीर रह जाए और चलता रहे। भीतर कोई चिंतन नहीं, विचार नहीं, मनन नहीं, सवाल नहीं, प्रश्न नहीं, संदेह नहीं। मर गई आत्मा।
आत्मा जितना संदेह करती है, जितना पूछती है, जितना विचार करती है, उतनी विकसित होती है। जितना खोजती है, उतना आगे बढ़ती है। जितना गतिमान होती है, एक-एक कोने में खोजती है, जगह-जगह खटखटाती है--द्वार-दरवाजे, नये रास्ते, अनजान रास्तों पर यात्रा करती है, अनजान सागरों में उतरती है नौका को लेकर, उतनी ही परमात्मा के निकट पहुंचने लगती है; क्योंकि परमात्मा से ज्यादा अनजान और कोई भी नहीं।
और अगर हमें अपने भीतर उस प्रकाश को जानना हो, तो हमें बाहर के झूठे प्रकाश छोड़ देने पड़ेंगे। हमने बाहर ज्ञान के झूठे प्रकाश के स्तंभ बना लिए हैं और हम मान लिए हैं कि हम जान गए, सब ठीक हो गया। सब बात खत्म हो गई है।
मैंने सुना है, एक जादूगर था, उस जादूगर के पास बहुत सी भेड़ें थीं। उन भेड़ों को बेचने का ही वह काम करता था। रोज भेड़ें कटती थीं। एक भेड़ दूसरी भेड़ों के सामने कटती थीं। बाकी भेड़ें बहुत घबड़ा जाती थीं, बहुत डर जाती थीं, चिल्लाती थीं, रोती थीं, बहुत बीमार पड़ जाती थीं; क्योंकि उनको पता हो गया कि कल हम भी कट जाएंगी। सब भेड़ें जानती हैं कि कटने का वक्त आ जाएगा आज नहीं कल। जादूगर बड़ा परेशान था कि बाकी भेड़ों को इस घबड़ाहट से, परेशानी से कैसे बचाया जाए? फिर उसने एक तरकीब की। उसने सब भेड़ों को बेहोश किया, हिप्नोटाइज किया और उन भेड़ों से कह दिया कि सिर्फ दूसरी कटेंगी, तू नहीं कटने वाली है। सब भेड़ों के सामने कह दिया बेहोश करके कि दूसरी भेड़ें कटती हैं, तू नहीं कटेगी। क्योंकि दूसरी भेड़ें हैं। तू तो--तू तो सिंह है, तू भेड़ नहीं है।
सब भेड़ों को ख्याल आ गया कि वह तो सिंह हैं, भेड़ नहीं हैं। फिर भेड़ें बड़ी मस्त रहने लगीं। एक भेड़ कटती, तो बाकी भेड़ समझती हैं कि वह भेड़ है, इसलिए कट रही है। हम तो सिंह हैं। हमारे कटने का कोई सवाल ही नहीं है।
फिर भेड़ें बीमार पड़ना बंद हो गईं। फिर एक भेड़ कटती, दूसरी भेड़ें नाचती रहतीं, घूमती रहतीं। फिर दूसरी भेड़ कटती, लेकिन हर भेड़ यह समझती है कि वह भेड़ है। बाकी सब भेड़ हैं, मैं भर सिंह हूं।
वह जादूगर बड़ा निश्चिंत हो गया। भेड़ों ने भागना बंद कर दिया, वह जंगल में छिपना बंद कर दिया। भे.ड़ को कटते देख कर उन्होंने दुख मनाना बंद कर दिया। जादूगर निश्चिंत हो गया। रोज भेड़ कटती रही।
लेकिन भेड़ों का यह दंभ, यह ख्याल कि हम सिंह हैं, सब भय से उन्हें मुक्त कर दिया। एक तरह वह निर्भय हो गईं, मौत जारी रही, वह एक मूर्च्छा में पड़ गईं, मौत जारी रही। वह बेहोशी में रहीं, मौत जारी रही। उनको जो ज्ञान दे दिया उसने कि तुम सिंह हो, वह खतरनाक हो गया।
हम सब भी इसी तरह की भेड़ें हैं, जिनको सिंह होने का ख्याल पैदा हो गया है। रोज कोई मरता है, लेकिन हमको यह ख्याल नहीं आता कि मैं मरूंगा। हम समझते हैं, वह मर गया, बेचारा। जो मर जाता है, वह बेचारा हो जाता है। बहुत

बुरा हुआ। हम इतने मजे से उससे यह बात करते हैं कि बहुत बुरा हुआ। यह सहानुभूति हम ऐसे रसपूर्ण ढंग से प्रकट करते हैं कि बहुत बुरा हुआ। कि ऐसा लगता है कि यह बुरा हम पर कभी होने को नहीं है।
उससे हम जब बेचारा कहते हैं, तो हम ऐसा कहते हैं, हम दो जाति के लोग हैं। वह बेचारा, हम बहुत अलग हैं। यह मरना यहां होने वाला नहीं है।
भेड़ें कुछ भ्रम में हैं। हमें कुछ भ्रम है कि हम अमर हैं। वह आत्मा अमर है, वह जो हमें दोहराया जा रहा है, हम सबके दिमाग में बैठ गया कि हम अमर हैं। इसलिए हम तो मरने वाले नहीं हैं, दूसरे लोग मर जाते हैं। और हम सबके मन में बैठ गया कि सबके भीतर परमात्मा है। सब ब्रह्मस्वरूप हैं, बस सब ठीक है, फिर अब कुछ करना नहीं है, न कुछ खोजना है, न कहीं जाना है। सब ब्रह्म हैं ही, सब ईश्वर हैं ही, तब और क्या करना है, अब और क्या खोजना है? यह ज्ञान बड़ा खतरनाक है।
ये बातें सच हो सकती हैं। किसी दिन हम उस जगह पहुंच सकते हैं जहां हम जानें कि हम आत्मा हैं। लेकिन वहां हम अभी पहुंच नहीं गए हैं। किसी दिन हम उस जगह खड़े हो सकते हैं जहां पता चले कि मैं परमात्मा के साथ एक हूं, लेकिन वहां हम अभी पहुंच नहीं गए। अभी यह उधार ज्ञान महंगा पड़ सकता है। तो आज की सुबह की इस चर्चा में मैं आपसे कहना चाहता हूं, तोते मत बनना। और जो तोता बनाने की कोशिश करे उसे दुश्मन जानना। वह गुरु नहीं है।
और जिन मंदिरों में आदमी तोता बनाया जा रहा हो वे कारागृह हैं। मनुष्य की दासता के सबसे पुराने स्थान और दुकानें--दासता एक ही है--ज्ञान की दासता। ज्ञान के लिए गुलाम मत बनना, किसी के भी नहीं। ज्ञान के लिए मुक्त होने की कोशिश करनी जरूरी है, तभी हम अंधकार से प्रकाश की यात्रा कर सकते हैं।
और सूत्रों के बाबत बाद में हम बात करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
चौथा प्रवचन

जीवन की भाषा

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीती चर्चाओं के संबंध में और बहुत से नये भी प्रश्न मित्रों ने किए हैं। आज की सांझ मैं उन प्रश्नों पर बात करना चाहूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि पंद्रहवी अगस्त या इस तरह के और त्यौहार मनाना उचित है या नहीं, आप क्या कहते हैं?

सवाल पंद्रह अगस्त का ही नहीं है, सवाल जीवन के सब रिचुअल, सब क्रियाकांडों का है। चाहे क्रियाकांड धार्मिक हो, चाहे राजनैतिक, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। मन के अंतरभाव से जो भी उठे, वह ठीक है। और जो भी मनाना पड़े, वह बिल्कुल ठीक नहीं है।
आजादी का एक आनंद अगर अनुभव हो, तो वह प्रकट होगा। स्वतंत्रता का एक बोध अगर अनुभव हो, तो वह प्रकट होगा। लेकिन वह बोध किसी को भी अनुभव नहीं होता। फिर एक मरा हुआ त्यौहार हाथ में रह जाता है। फिर हर वर्ष उसे हम दोहराए चले जाते हैं।
झंडे फहरा देते हैं, मन की कोई ऊंचाई उसके साथ नहीं फैलती। गीत गा लेते हैं, मन कोई गीत नहीं गाता। उत्सव, रंग-बिरंगे फूल लगा लेते हैं, लेकिन भीतर कोई फूल नहीं लगते। हमारा सारा जीवन ही जैसे झूठ पर खड़ा है। और हम सब कुछ झूठ कर लेते हैं।
हमारे त्यौहार झूठ हैं, हमारे सम्मान झूठ हैं, हमारी बातें झूठ हैं।
हम जो भी करते हैं वह झूठ हो जाता है; क्योंकि बहुत गहरे में हम ही झूठ हैं। हमारा किया हुआ सब झूठ हो जाता है।
मैं नहीं कहता हूं, कोई त्यौहार मनाएं। होना तो ऐसा चाहिए कि पूरी जिंदगी एक त्यौहार हो। होना तो ऐसा चाहिए कि सुबह-सांझ एक-एक क्षण जीवन का एक आनंद का क्षण हो। चूंकि ऐसा नहीं है, इसलिए हमें खुशी के त्यौहार मनाने पड़ते हैं। चूंकि जिंदगी बिल्कुल दुख से भरी है। सुबह से सांझ वर्ष भर हम दुख से भरे हैं, तो अंधेरा ही अंधेरा है, तो फिर हमें दीवाली मनानी पड़ती है। दीये जला कर हम सोचते हैं कि रोशनी हो जाएगी।
जिंदगी गुलामी से भरी है, सुबह से सांझ तक गुलामी के हजार रूप हमारे ऊपर चढ़े हैं। अंग्रेजों के जाने से गुलामी नहीं जाती। चित्त गुलाम होने के हजार रास्ते जानता है। हजार तरह से हम गुलाम हैं, सुबह से सांझ तक। एक दिन स्वतंत्रता का दिन मना लेते हैं। जब तक दुनिया में गुलामी चलती है, हजार-हजार रूपों में तब तक स्वतंत्रता के त्यौहार मनाए जाते रहेंगे। क्योंकि आदमी की जिंदगी में स्वतंत्रता नहीं है, सिर्फ त्यौहार ही मनाए जा सकते हैं।
स्वतंत्रता होनी चाहिए, स्वतंत्रता के त्यौहार का कोई भी मूल्य नहीं है। और स्वतंत्रता होगी जीवन में, तो सारा जीवन एक खुशी का और एक आनंद का और एक नाचता हुआ जीवन हो जाएगा।
लेकिन पंद्रह अगस्त मना रहे हैं। वह तो प्रतीक की बात है। खुशी कहां है? आनंद कहां है? स्वतंत्रता का प्रेम कहां है? स्वतंत्रता का उल्लास कहां है? स्वतंत्र होने की वृत्ति कहां है? वृत्ति तो गुलाम होने की है, और गुलाम बनाने की है।
आप कहेंगे, हम तो किसी को गुलाम नहीं बनाए हुए हैं। तो अपनी जिंदगी खोजने से पता चलेगा कि बाप बेटे को गुलाम बनाए हुए हैं या नहीं। और पति पत्नी को गुलाम हुए बनाए हैं या नहीं? और मां अपने बच्चों को गुलाम बनाए हुए हैं या नहीं? गुरु अपने विद्यार्थियों को गुलाम बनाने की सब कोशिश कर रहा है या नहीं?
चौबीस घंटे हम दूसरे को गुलाम बनाने की कोशिश में लगे हैं, और कोई हमें भी गुलाम बनाने की कोशिश में लगा है। सारी जिंदगी गुलामी की कहानी

है। और स्वतंत्रता के हम त्यौहार मनाते हैं। वे त्यौहार झूठे हो जाते हैं।
गुलाम आदमी स्वतंत्रता के त्यौहार कैसे मना सकते हैं? नहीं, दुनिया में स्वतंत्रता के त्यौहार नहीं चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए। और स्वतंत्रता होगी तो सारी जिंदगी एक त्यौहार होगी; क्योंकि गुलामी से बड़ा बोझ और गुलामी से बड़ा दुख और क्या हो सकता है?
लेकिन समझें, हम एक ऐसी दुनिया हों जहां सारे लोग बीमार हों और वर्ष में एक दिन स्वास्थ्य का दिन, हेल्थ डे मनाया जाता हो। तीन सौ चौंसठ दिन लोग बीमार रहते हों और एक दिन स्वास्थ्य का दिन मनाते हों, झंडे फहराते हों, फूल लुटाते हों, नेताओं का स्वागत करते हों, उन्हीं नेताओं का जो बीमारी में उनसे आगे हैं, तभी तो नेता हो सकते हैं बीमारों के। और काफी शोरगुल मचाते हों, बहुत प्रसन्न होते हों, लेकिन वह प्रसन्नता झूठी होगी। क्योंकि तीन सौ चौंसठ दिन जो बीमार रहा है वह तीन सौ पैंसठवे दिन स्वस्थ कैसे हो जाएगा? ऊपर से चिपकाई हुई होगी, कागजी होगी। भीतर दिल रोता रहेगा, बीमारी सरकती रहेगी, ऊपर स्वास्थ्य का दिन मनाया जाता है। यह दुनिया पसंद करेंगे आप या एक ऐसी दुनिया जहां लोग स्वस्थ हों, जहां स्वास्थ्य का कोई दिवस न मनाया जाता हो, लेकिन लोग स्वस्थ हों? लोग स्वस्थ जीते हों, जहां स्वास्थ्य का आनंद और पुलक हो?
अभी ऐसी ही हालत है, सारी दुनिया में, हर देश स्वतंत्रता के दिन मनाता
है और देश का मन पूरा का पूरा गुलाम बनता चला जाता है। एक-एक आदमी गुलाम है और गुलाम बनाने में लगा है। चौबीस घंटे हम हजार तरह की गुलामी थोप रहे हैं।
एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है। आप जानते हैं क्यों इकट्ठा कर रहा है? जितना ज्यादा धन उसके पास होगा उतने ज्यादा लोगों को गुलाम करने की पोंटेशियल फोर्स, उसके पास बुनियादी शक्ति होगी। वह उतने लोगों को गुलाम बना सकता है।
मेरे खीसे में एक रुपया पड़ा है, एक रुपया नहीं पड़ा है, अगर मैं चाहूं
तो एक आदमी से रात भर पैर दबवा सकता हूं। एक आदमी मेरे खीसे में बंद है। मेरे खीसे में एक रुपया है, मैं चाहूं तो एक आदमी के कंधे पर बैठ कर मील भर जा सकता हूं। एक आदमी मेरे खीसे में बंद है। मैं चाहूं, तो एक रुपया है मेरे पास, एक आदमी को कहूं, नाचो, तो एक आदमी को मैं नचा सकता हूं। मेरे पास गुलाम बनाने की ताकत कैद है।
धन की दौड़ दूसरे को गुलाम बनाने की गहरी दौड़ है, चाहे पता हो, चाहे पता
न हो। और धन की दौड़ दूसरा मुझे गुलाम न बना ले, इसकी भी दौड़ है कि अगर मैं निर्धन रहा, तो कोई मुझे गुलाम बनाएगा। पद की दौड़ भी दूसरों को गुलाम बनाने की दौड़ है। कितने लोग मेरे हाथ में हैं।
हिटलर को मजा क्या होगा? क्या आनंद होगा हिटलर को? उसकी जिंदगी में कोई आनंद नहीं दिखाई पड़ता। सिवाय एक और यह आनंद बड़ा रुग्ण और बीमार है--कि इतने लोग मेरी मुट्ठी में हैं, इनको मैं चाहूं तो अभी दबा दूं गर्दन, तो ये विलीन हो जाएं।
स्टैलिन को क्या सुख रहा होगा? या माओ को क्या सुख रहा होगा? कितने लोग मेरे हाथ में हैं; दुनिया के राजाओं-महाराजाओं को, सिकंदरों, नेपोलियनों को, चंगीजखानों को क्या सुख है? कितने बड़े घेरे पर कितने लोगों को मैं मुट्ठी में कर लेता हूं।
आप सोचते होंगे, हम तो चंगीज खान नहीं हैं, लेकिन एक पत्नी को आपने भी गर्दन बांध कर खड़ा कर रखा है। वह पत्नी भी आपको छोड़ती नहीं, उसने भी आपकी गर्दन बांध रखी है। एक बेटे ने अपने बाप को बांध रखा है, बाप ने बेटे को बांध रखा है।
जितनी जिसकी ताकत है उतना हम बंधन पैदा करते हैं, गुलामी पैदा करते हैं, और स्वतंत्रता के दिवस मनाए चले जाते हैं। इन स्वतंत्रता के दिवसों का अर्थ क्या हो सकता है?
नहीं ये डेड सिंबल्स रह जाते हैं। सिर्फ एक कहानी और इतिहास की घटना
रह जाती है। लेकिन स्वतंत्रता का भाव इनसे कहीं हमारे भीतर पैदा नहीं

होता है। मगर एक सुविधा होती है त्यौहार मना लेने से कि ऐसा लगता है कि हम भी स्वतंत्रता को प्रेम करने वाले लोग हैं, हम भी स्वतंत्रता को सम्मान देने वाले लोग हैं, हम भी स्वतंत्र हैं। ऐसा सुख एक दिन मिल जाता है। फिर गुलामी का ढांचा दूसरे दिन सुबह शुरू हो जाता है। उस दिन भी जारी रहता है, खत्म तो नहीं हो जाता, झंडे फहराने से क्या होने वाला है? मैं नहीं कहता हूं, स्वतंत्रता के त्यौहार मनाएं, मैं कहता हूं, स्वतंत्र होना सीखें, स्वतंत्र हों।
और ध्यान रहे, गुलामी सिर्फ राजनैतिक नहीं है। राजनैतिक गुलामी दुनिया में सबसे कमजोर गुलामी है, जो तोड़ी जा सकती है। सबसे आसान ढंग से तोड़ी जा सकती है। राजनैतिक गुलामी दुनिया की सबसे कमजोर गुलामी है, जो बहुत आसानी से तोड़ी जा सकती है। राजनैतिक रूप से भी वे ही लोग गुलाम हो सकते हैं जो आध्यात्मिक रूप से गुलाम रहे हों। नहीं तो वे गुलाम भी नहीं हो सकते।
जो आदमी मरने की हिम्मत रखता है उसे कोई दुनिया में कोई कभी उसे गुलाम नहीं बना सकता है राजनैतिक रूप से। लेकिन कुछ कौमें मरने की हिम्मत खो देती हैं। फिर वे गुलाम हो जाती हैं। फिर चाहे वे स्वतंत्र दिखाई पड़ें, बहुत गहरे में उनकी गुलामी जारी रहती है।
और भी गुलामियां हैं, जो राजनैतिक गुलामी से ज्यादा गहरी हैं और खतरनाक हैं। मुझे अगर एक कारागृह में डाल दिया जाए तो मेरे शरीर को ही गुलाम बनाया गया है, मुझे नहीं। चूंकि मेरी आत्मा जिन ऊंचाइयों पर उड़ती है, उड़ती रहेगी। और मेरे प्राण जिन गीतों को गाते हैं, गाते रहेंगे। सिर्फ मेरे हाथ-पैर बंधन में हो जाएंगे, एक दीवाल आ जाएगी जिसके बाहर मैं नहीं जा सकता। लेकिन मैं, मेरे भीतर दुनिया का कोई ऐसा आकाश नहीं है जिसे न छू सकूं और कोई तारा नहीं है जो मेरे सपनों में न उभर सके। मैं आजाद रहूंगा, सिर्फ शरीर पर एक सीमा बंध जाएगी।
लेकिन यह हो सकता है कि मैं कारागृह के बाहर हूं, दीवालें मुझे बांधे हुए नहीं हैं, हाथ में जंजीरें नहीं हैं। और मेरी आत्मा न किसी ऊंचाई पर कभी उड़ती है और न किसी तारे का सपना देखती है। और मुक्ति की कोई कल्पना भी नहीं है मेरे मन में, तो मैं ज्यादा गुलाम हूं। लेकिन आदमी गुलाम होना चाहता है और स्वतंत्रता की बातें करता है।
हर आदमी गुलाम होना चाहता है। क्यों? क्योंकि गुलामी बड़ी कनवीनियंट, बड़ी सुविधापूर्ण है। स्वतंत्रता बड़ी रिस्पांसिबिलिटी है। स्वतंत्रता बहुत बड़ा दायित्व है। गुलामी में जिम्मा दूसरा है, दूसरे का है। गुलामी में हम जिम्मेवार नहीं हैं।
गुलाम आदमी की अपनी कोई आत्मा नहीं है। इसलिए अपना कोई उत्तरदायित्व, कोई बोझ भी नहीं है। इसलिए हर आदमी गुलाम होना चाहता है। स्त्री गुलाम होना चाहती है, नहीं तो कोई पुरुष कैसे गुलाम बना ले? वह किसी पुरुष के कंधे पर हाथ रख कर कहती है, तुम्हारे सहारे के बिना नहीं जी सकती हूं। वह गुलामी खोज रही है, वह गुलामी खोजेगी। वह अपने प्रेमी के पास खड़े होकर रास्ता देखती है कि गड्ढा पार करना है, तो वह हाथ बढ़ाए। और जो प्रेमी हाथ बढ़ाएगा, उससे खुश होगी। लेकिन वह जानती नहीं है, जिसका हाथ पकड़ कर गड्ढा की छलांग लगाई है, उसकी गुलामी शुरू हो गई। अगर स्त्री को मुक्त होना है, तो उसे प्रेमी से कहना चाहिए, अपना हाथ दूर रखो, मैं खुद भी गड्ढे को पार कर सकती हूं। यह हाथ गुलामी का हाथ है। लेकिन बड़ा प्रीतिपूर्ण मालूम पड़ता है।
हम सब भीतर से गुलाम होना चाहते हैं और स्वतंत्रता के त्यौहार मनाते हैं। हम सब गुलाम हैं शास्त्रों के, सिद्धांतों के, गुरुओं के, धर्मों के। हमने कभी भीतर से स्वतंत्रता की कोई पुकार नहीं की है, हमने कभी स्वतंत्र नहीं होना चाहा। गुरुओं के पैर पकड़े हुए हैं लोग। ये पैरों की जंजीरें लोहे की जंजीरों से ज्यादा खतरनाक हैं। लोग मरे हुए गुरुओं की मजार पर सिर झुकाए घुटने टेके बैठे हुए हैं। लोग पत्थर की मूर्तियों के सामने पड़े हुए हैं और रो रहे हैं और चिल्ला रहे हैं। हमारी भीतरी गुलामी बहुत ज्यादा है। फिर ये ही लोग स्वतंत्रता के दिवस भी मनाए चले जाते हैं।

नहीं, इन स्वतंत्रता के दिवसों का कोई उपयोग बच्चों के खेल से ज्यादा नहीं है। प्राइमरी के स्कूल तक ठीक हैं, उसके आगे बहुत बेहूदे मालूम पड़ते हैं। और वैसे भी प्राइमरी स्कूल के सिवाय कौन मनाता है। और प्राइमरी स्कूल के बेचारे बच्चे और शिक्षक तो जो भी कहो वही मनाते हैं। अंग्रेजों की विक्ट्री होती तो विक्ट्री डे मनाते, वे ही बच्चे, वे ही शिक्षक। वे ही शिक्षक, वे ही बच्चे अब स्वतंत्रता दिवस भी मनाते हैं। कल मुल्क गुलाम हो जाए, वे ही बच्चे प्राइमरी स्कूल के गुलामी का भी गुणगान करने लगेंगे। प्राइमरी स्कूल के बच्चों के साथ तो जो भी अनाचार करना हो, किया जा सकता है।
लेकिन हम सब भी बच्चों जैसा ही व्यवहार करते हैं। हम भी बहुत गहरे में चाइल्डिश और बचकाने ही होते हैं। मुक्त नहीं हो पाते बचपन से। इसीलिए तो हमें अजीब चीजें प्रभावित करती हैं। अब एक झंडा है, उसको हम चढ़ा रहे हैं। दुनिया के किसी कोने में बच्चों को यह खेल अच्छा मालूम होना चाहिए कि उन्होंने एक डंडे पर कागज को या कपड़े के टुकड़े को लगा कर चढ़ा दिया है, नमस्कार कर रहे हैं!
अगर कहीं चांद-तारों पर, कहीं मंगल पर, शुक्र पर कहीं भी कोई चेतना होगी, कोई प्राणी होंगे और हमें नीचे देखते होंगे, तो बड़े हैरान होते होंगे कि मनुष्यता को क्या हो गया है? डंडों पर कपड़े बांध लेते हैं और नमस्कार करते हैं? सोचते होंगे न वह, कि क्या आदमी क्या करता है? आदमी पागल तो नहीं है? यह कर क्या रहा है?
अगर हमें भी समझ आएगी, तो बहुत पागलपन मालूम पड़ेगा। युनिवर्सिटी में जाकर देखें। युनिवर्सिटी का कनवोकेशन हो रहा हो तब देखें, डीन और वाइस चांसलर और चांसलर काले चोगे पहने हुए और सर्कस के.जोकरों को टोपी लगानी चाहिए वह टोपी लगाए हुए मंच पर चले आ रहे हैं। और बड़े गुरु गंभीर, बड़े सीरियस।
बच्चे यह खेल करें, शोभा देता है, वाइस चांसलर्स और चांसलर यह खेल करें, तो यह युनिवर्सिटीज की नाव डूबने ही वाली है। यह कहीं जाने वाली नहीं है। यह बच्चों जैसा खिलवाड़... लेकिन हम, हम भी बैठ कर गंभीरता से देख रहे हैं कि कोई बहुत बड़ा काम हो रहा है।
राम-लीला देख रहे हैं, नाटक देख रहे हैं, यह क्या देख रहे हैं? नेतागण बड़े सजे-वजे खड़े हैं, झंडे फहरा रहे हैं। नेतागण बड़े तैयार हैं। नाटक कर रहे हैं मंचों पर और हम सब देख रहे हैं। और सोचते हैं, स्वतंत्रता पूरी हो गई, स्वतंत्रता आ गई।
स्वतंत्रता इतनी सस्ती चीज नहीं है कि ऐसे आ जाए। स्वतंत्रता अंग्रेजों के छोड़ने से नहीं आती। अंग्रेजों के छोड़ने से सिर्फ एक तरह की गुलामी टूटती है। और गुलामी हजार तरह की हैं। अंग्रेजों के छोड़ने से सिर्फ एक तरह की गुलामी टूटती है। लेकिन वह जो आदमी गुलाम था, अगर उसका मन वही का वही है, तो उस आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ता, वह गुलाम ही बना रहता है। आदमी स्वतंत्र नहीं होता। हम अंग्रेजों से मुक्त होकर स्वतंत्र नहीं हो जाते हैं।
स्वतंत्र होने के लिए भीतर हमारे स्वतंत्रता के कोई नये आयाम खुलने चाहिए। अगर हम वही के वही लोग हैं जो आजादी के पहले थे, क्या फर्क पड़ गया है हिंदुस्तान के आदमी में? आदमी के मन में क्या फर्क पड़ गया?
हां, कुछ फर्क पड़ गए हैं। जहां अंग्रेज खड़ा हुआ था वहां काला आदमी खड़ा
हो गया है। गोरे आदमी की जगह काला आदमी खड़ा है। और निश्चित ही काला आदमी ज्यादा अकड़ कर खड़ा हुआ है। क्योंकि उसको डर भी नहीं है कि हम तो तुम्हारे ही बीच से हैं, कोई डर नहीं है। अंग्रेज तो डरा भी हुआ था थोड़ा। आज नहीं कल उसे हट ही जाना पड़ेगा। काला आदमी ज्यादा अकड़ कर खड़ा हुआ है।
अंग्रेज जितनी गोली चलाता था इस मुल्क में, हमारे काले आदमी ने उससे बहुत ज्यादा गोली चलाई है। यह कैसी स्वतंत्रता है? अंग्रेजों ने इतनी गोलियां नहीं चलाईं। हमारा आदमी इतनी गोलियां चलाता है कि घबड़ाने वाला मामला है। निहत्थे बच्चों पर गोलियां चलाता है--स्कूल के, कालेज के लड़के और लड़कियों पर गोलियां चलाता है। स्वतंत्रता कैसी है यह?

और हमको भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हम भी इसको झेल लेते हैं। समझते हैं कि यह ठीक ऐसा ही होता है जैसा हो रहा है। यह गुलामी में होता, तो ठीक मालूम पड़ता था। यह आजादी में होता है, तो यह आजादी बड़ी बेमानी मालूम पड़ती है। लेकिन हम भी देखते हैं और चुपचाप सह लेते हैं।
कितनी गोली चली है उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद आज तक! कितनी लाठी चली है! कितने गैस के गोले फोड़े गए हैं! वही का वही रवैया सब जारी है। सत्ता वही रुख रखती है। आदमी के साथ वही व्यवहार करती है।
जाएं पुलिसथाने में, गाली में कोई फर्क पड़ गया है? इतना ही फर्क पड़ा है--अंग्रेज अंग्रेजी में गाली देता था। अंग्रेजी में गालियां उतनी अभद्र नहीं हैं। वह आदमी हिंदी में गाली देता है, गुजराती में गाली देता है, वह बहुत भद्दी है। अंग्रेज की गाली ठीक से समझ में भी नहीं आती थी, इसकी गाली पूरी ठीक से समझ में आती है, और हम हाथ जोड़ कर उसको पी जाते हैं। कैसी आजादी? आजादी का मतलब क्या होता है? आजादी के भाव का क्या मतलब है? व्यक्तित्व की गरिमा, आजादी का मतलब होता हैः एक-एक व्यक्ति का मूल्य। लेकिन क्या मूल्य है इस देश में अभी व्यक्ति का? कोई मूल्य नहीं है किसी व्यक्ति का। व्यक्तित्व का मूल्य ही आजादी का अर्थ है। अपने से विरोधी व्यक्ति का भी उतना ही मूल्य है जितना अपना।
आजादी का अर्थ हैः एक-एक आदमी को स्वयं होने की स्वतंत्रता, आजादी का अर्थ है। लेकिन वह सब बात कहीं भी नहीं है। बस आजादी का त्यौहार है। वह साल में आ जाता है। सरकारी आदमी उसको मना लेते हैं। गैर-सरकारी आदमियों को अगर बतासा वगैरह मिलता हो, तो वे भी पहुंच जाते हैं, और उसका कोई मतलब नहीं है। मैं त्यौहार मनाने के पक्ष में नहीं, स्वतंत्रता की आत्मा पैदा होने
के पक्ष में हूं। त्यौहार बच्चे मनाते रहेंगे। कुछ बच्चे हैं, जिनको गुड्डा-गुड्डी खेलने को चाहिए। वे खेलते रहेंगे। उनको खेलने दो। उनके खेल में भी बाधा डालने की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन स्वतंत्रता का भाव पैदा होना चाहिए। मैं समझता हूं, अभी भी, इस देश के मन में स्वतंत्रता का कोई भाव नहीं है। अगर कल चीन इस मुल्क पर हावी हो जाए, तो हम उस गुलामी के सामने वैसे ही झुक जाएंगे, ईल्ड कर जाएंगे, जैसे हम पहले कभी किसी गुलामी के सामने कर गए थे। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आज भी मुल्क में हजारों लोग हैं जो यह कहते सुने जाते हैं कि इससे तो अंग्रेज ही, वही अच्छा था। वही अच्छा था। कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता। तो ठीक भी लगता है उनका कहना, लेकिन कहना बहुत खतरनाक है।
स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं मालूम होता। स्वतंत्रता का कोई ऐसा भाव नहीं है कि उसके लिए हम सब कुछ खो सकें। हम कुछ न खो सकेंगे उसके लिए। कितना हजार वर्ष तक हम गुलाम थे। हमने गुलामी को भी स्वीकार कर लिया था, जैसे हम सब चीजों को स्वीकार करते हैं--गरीबी को, बीमारी को, वैसे ही गुलामी को भी स्वीकार कर लिया था। स्वीकार करने की हमारी प्रवृत्ति इतनी गहरी है कि हम किसी भी तरह के अपमान को स्वीकर कर सकते हैं।
कोई अगर हमारी छाती पर जूते रख कर खड़ा हो जाए, तो थोड़ी देर में हम समझेंगे यह अपना भाग्य है, यह उसका भाग्य है। भाग्य को मानने वाले लोग कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते। भाग्य को मानने वाला आदमी, गुलामी की गहरी जंजीर में जकड़ा हुआ है। वह यह कह रहा है, जो हो रहा है वह होने को बदा है, इससे अन्यथा हो भी नहीं सकता। इसीलिए तो एक हजार साल हम गुलाम रहे।
दुनिया में कोई कौम एक-एक हजार साल तक गुलाम रहती हैं? इतनी-इतनी बड़ी कौमें? इतना विराट जिनका फैलाव है, जो एक दिन में तय करें, तो वे आदमी जो गुलाम किए थे, उनका कहीं पता नहीं चलेगा कि वे कहां चले गए, कहां खो गए। लेकिन हमारी बुनियादी कमजोरी हमारे ख्याल में नहीं है। हम सब चीजें स्वीकार कर लेते हैं।
सड़क पर लोग भीख मांग रहे हैं। एक आदमी उन्हीं के बीच से मंदिर चला जाता है भजन गाते हुए, राम-राम करता हुआ। उसे जरा भी तकलीफ नहीं मालूम होती है कि भीड़ और कतार खड़ी है, मंदिर के सामने ही भिखमंगे खड़े हुए हैं। उसे कुछ पता नहीं चलता--इनसेंसिटीविटी है, कोई संवेदन पैदा नहीं होता है।

एक आदमी भूखा मर रहा है, अपने भाग्य से मर रहा है। हमारा क्या लेना- देना? हम अपने रास्ते पर, वह अपने रास्ते पर। हिंदुस्तान में यही समझा जाता रहा है कि कोई नृप हो, कोई राजा हो, हमें क्या मतलब है? तो ऐसी कौम की आजादी बड़ी डांवाडोल है। ऐसी कौम की आजादी बड़ी डांवाडोल है। त्यौहार मनाने से वह मजबूत नहीं हो जाएगी। त्यौहार मनाने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।
इधर मैं हैरान हुआ हूं यह बात जान कर कि गुलामी तो हमने एक तरह की उठा दी, अंग्रेज हट गए, लेकिन गुलामी की जो बुनियादी वजह थीं, जो कारण थे, जिनकी वजह से हम गुलाम हुए थे, वे जारी हैं। वे बिल्कुल नहीं हटे, वे वहीं के वहीं हैं। आदमी हमारा वहीं का वहीं। उसके मस्तिष्क का ढांचा, उसकी स्टेट्स ऑफ माइंड वही की वही है, उसमें कोई बदल नहीं हुई। तो फिर गुलामी किसी भी दिन खड़ी हो सकती है।
यह आकस्मिक मामला है कि गुलामी हट गई। गुलामी कल फिर हो सकती है; क्योंकि हमारी तैयारी गुलाम होने की भीतर से पूरी है। वह हमारी पूंछ हिलाने की आदत पूरी है। और इसीलिए तो हमें ख्याल में नहीं आता। हम राज्य को, सत्ता को कितनी पूंछ हिलाते हैं, इसका हमें ख्याल ही नहीं आता।
अखबार उठा कर देखें, तो दो कौड़ी का आदमी किसी पद पर हो जाए, तो अखबार के लिए भगवान हो जाता है। वही आदमी कल अखबार से, दुनिया--पद से नीचे उतर जाए, फिर उसका पता लगाना मुश्किल है कि वह कहां है। कोई पता नहीं चलेगा।
बस सत्ता का हमारे मन में इतना आदर है। यह स्वतंत्र आदमियों का लक्षण नहीं है। सारा अखबार सत्ताधिकारियों की आवाज से भरा है। उनकी ही खबरें-- किसको छींक आ गई, किसको क्या तकलीफ हो गई, वे सारी खबरें हैं। किसके घर कौन आया, कौन गया, वे सब खबरें हैं। जैसे मुल्क में और कुछ भी नहीं होता। न मुल्क में संगीत है, न मुल्क में कला है, न मुल्क में धर्म है, न मुल्क में दर्शन है, न मुल्क में योग है, कुछ भी नहीं है, सिर्फ राजनीति है। यह गुलाम आदमियों का लक्षण है।
जो कौम जितनी चित्त से गुलाम होगी, उतनी ज्यादा राजनीति को सब कुछ मान लेगी। बस यही सब कुछ हो रहा है। क्योंकि सत्ता में जो खड़ा है वही बस सब कुछ है और दूसरा आदमी किसी मूल्य का नहीं है। राधाकृष्णन कहां हैं, कभी खोजते, पता लगाते हैं, कहां हैं? राधाकृष्णन का कभी पता चलता है कहां चले गए? गए, कोई पूछेगा नहीं।
स्वतंत्र आदमी हजार-हजार दिशाओं में यात्रा करता है, गुलाम आदमी सत्ता के आस-पास पूंछ हिलाता है, और कुछ भी नहीं करता। एक मिनिस्टर के आस-पास जाकर लोगों के चेहरे देखें और फिर सोचें कि यह मुल्क कितने दिन आजाद रह सकता है। एक मिनिस्टर के पास चले जाएं और आस-पास घूमते हुए लोगों के जरा चेहरे देखें--कैसी जीभ लटक रही है, लार टपक रही है, पूंछ हिल रही है, वह सब चारों तरफ कौन हैं, देखें।
यह मुल्क कैसा? इस मुल्क के मन में आजादी का कोई भाव है? कोई गरिमा है? कोई गौरव है? व्यक्तित्व का कोई अर्थ है? छोटे-मोटे आदमी नहीं, युनिवर्सिटी का वाइस चांसलर, तो वह भी एक मिनिस्टर के चपरासी के पास चक्कर लगा रहा है। सत्ता सब कुछ है। गुलाम आदमी के मन का यह भाव है।
स्वतंत्र आदमी कहता है, सत्ता कामचलाऊ बात है, फंक्शनल है। यह वैसा ही
है जैसे कि घर में एक रसोइया रखा हुआ है, भोजन बनाता है। फूड मिनिस्टर पूरे प्रांत के रसोइए से ज्यादा कीमत का नहीं है। इससे ज्यादा कोई मतलब भी नहीं है उसका। फंक्शनल बात है। एक काम है।
रेलें चल रही हैं, तो रेल को चलाने के लिए, व्यवस्था करने के लिए कोई होगा। इंतजाम करना है, तो इंतजाम करने के लिए कोई होगा। ठीक है, लेकिन मुल्क की पूरी आत्मा इन्हीं के आस-पास घूमने लगे, तो यह मुल्क और यह कौम गुलाम चित्त की है।
तो हम आजादी के त्यौहार मना लेते हैं, लेकिन हम गुलाम हैं। हमारा मन गुलाम है। हमें मुक्त होना चाहिए, स्वतंत्र होना चाहिए। त्यौहार का कोई मतलब नहीं है। वह दिन सौभाग्य का होगा, त्यौहार चाहे हो चाहे न हो, लेकिन हमारा मन स्वतंत्र हो।

एक-एक आदमी को स्वतंत्रता का कोई भाव पैदा हो, स्वतंत्रता का बोध पैदा हो, व्यक्तित्व की गरिमा पैदा हो। और जिस व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की गरिमा का थोड़ा बोध होता है, वह दूसरे के व्यक्तित्व की गरिमा के प्रति उतना ही संवेदनशील हो जाता है। जो व्यक्ति अपने को स्वतंत्र रखना चाहता है, वह दूसरे को कभी परतंत्र नहीं करता। जो व्यक्ति स्वतंत्रता को प्रेम करता है, वह सबको स्वतंत्र करेगा।
स्वतंत्र व्यक्ति अपने बच्चों से कहेगा, हम तुम्हें प्रेम देंगे, नियम नहीं। हम तुम्हें प्रेम करेंगे लेकिन बंधन नहीं देंगे। स्वतंत्र पति अपनी पत्नी से कहेगा कि तू मेरी दासी नहीं है, मित्र हैं हम, साथी हैं हम। प्रेम मैं दे सकता हूं, गुलाम तुझे नहीं बना सकता। प्रेम कैसे गुलाम बना सकता है? लेकिन जिसको हम प्रेम कह रहे हैं, वह पूरी तरह गुलाम बना रहा है। इसलिए प्रेम का नाम चलता है, गुलामी का जाल चलता है।
कलह है, कष्ट है, दुख है। सब भीतर, सब सड़ गया है। सब ऊपर-ऊपर हंसी है, भीतर सब सड़ा-गला है, सब दुर्गंध है। उसको किसी तरह लीप-पोत कर बाहर निकल आते हैं। बाहर सब ठीक लगता है--घर-घर भीतर गंदा और परेशानी में है, और सारी परेशानी की एक जड़ है कि गुलाम चित्त खुद भी गुलाम होता है, दूसरे पर भी गुलामी थोपता है।
स्वतंत्र चित्त स्वयं भी स्वतंत्र होता है, दूसरे को भी स्वतंत्र करता है। स्वतंत्र चित्त सब तरफ स्वतंत्रता के बीज बिखेरता है। क्या यह हो रहा है? अगर यह हो रहा हो, तो आपके आजादी के त्यौहार बड़े अच्छे हैं, और अगर यह न हो रहा हो, तो अपने को धोखा देने के उपाय से ज्यादा नहीं हैं।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि धर्म का अर्थ हैः टू बी अलोन, अकेला होना। लेकिन संस्कृत में तो धर्म का अर्थ हैः धारण करना?

संस्कृत में कोई भी अर्थ हो, भाषा जो कहती है वही सत्य नहीं हो जाता। भाषा बिल्कुल कामचलाऊ है। शब्दों का जन्म अलग-अलग प्रसंगों में होता है। धर्म से मैं कोई भाषाशास्त्री नहीं हूं, कोई लिंग्विस्ट नहीं हूं। धर्म से मेरा भाषाकोष में जो लिखा है वह अर्थ नहीं है। धर्म से मेरा अर्थ हैः उसे जान लेना जो मैं हूं। धर्म से मेरा अर्थ हैः स्वयं के सत्य को जान लेना।
धर्म शब्द का क्या अर्थ है, इससे मुझे प्रयोजन ही नहीं है। धर्म शब्द
का क्या व्याकरण है, क्या भाषा है, मुझे मतलब नहीं है। व्याकरण और भाषा से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन इस देश में ऐसी बात रही है कि यहां हम सत्य की खोज कम करते हैं, शब्दों की व्याख्या और विश्लेषण ज्यादा करते हैं। किस शब्द का क्या अर्थ है, यह हम भाषा और व्याकरण की ज्यादा चिंता करते हैं। लेकिन किस शब्द का क्या इंगित है, इशारा क्या है, वह हम बहुत कम फिकर करते हैं। अब जैसे समझें, एक उदाहरण मुझे ख्याल में आता है।
एक, एक बाउल फकीर हुआ है, नाच रहा है एक गांव के पास। प्रेम का गीत गा रहा है। एक वैष्णव पंडित उसके पास गया और उसने कहा कि तुम्हें पता भी है कि प्रेम का मतलब क्या होता है?
समझ लेना, प्रेम के दो मतलब होते हैं। एक तो वह जो प्रेम करने से पता चलता है और एक वह जो डिक्शनरी में लिखा हुआ है। ये दोनों बिल्कुल अलग चीजें हैं।
उस पंडित ने पूछाः तुम्हें प्रेम का मतलब पता है कि प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति कहां से हुई है?
वह फकीर रुक गया। उसने कहाः प्रेम का तो पता है, लेकिन जिस प्रेम को तुम कह रहे हो, कुछ भी पता नहीं। लेकिन उस प्रेम से मतलब भी क्या है?
उस वैष्णव पंडित ने कहाः तो फिर सुनो। अभी तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। जो प्रेम शब्द को ही नहीं जानता, वह प्रेम को कैसे जान सकेगा?
दलील तो बड़ी ठीक मालूम पड़ती है। लेकिन आपमें से बहुत लोगों ने प्रेम जाना होगा। प्रेम शब्द कहां से पैदा होता है, पता है?

वह फकीर भी हार गया। उसने कहाः यह तो मुझे पता नहीं है कि प्रेम शब्द कहां से आया, प्रेम शब्द की यात्रा कैसे हुई, प्रेम का मूल अर्थ क्या है, प्रेम शब्द का गणित और व्याकरण क्या है, मुझे कुछ पता नहीं, आप बता दें। उसने अपनी किताब खोली, प्रेम का एक-एक शाब्दिक अर्थ समझाया और फिर कहा, यह मालूम है प्रेम कितने प्रकार का होता है?
उस फकीर ने कहाः प्रेम और प्रकार? प्रेम को जानता हूं, प्रकार का तो कभी कोई पता नहीं चला। प्रेम में प्रकार होते ही नहीं।
उसने कहाः फिर ठहरो, तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। हमारी किताब में लिखा है, प्रेम पांच प्रकार का होता है। मां का प्रेम बात अलग, पत्नी का प्रेम बात अलग, भक्त का भगवान के प्रति प्रेम बात अलग। ये सब कई तरह के प्रेम होते हैं। तुमको प्रेम के प्रकार ही पता नहीं, तुम क्या करते हो? प्रेम के गीत गाकर फिजूल समय खराब करते हो।
उसने पांच प्रकार समझाए, शब्द की व्याख्या समझाई। फिर उस फकीर से पूछा, कैसा लगा?
उस फकीर ने कहा कि कैसा लगा! एक गीत गाकर सुनाता हूं! और एक गीत गाया।
और उस गीत का मतलब थाः कि एक बार एक माली ने अपने एक सुनार मित्र को कहा कि मेरे बगीचे में बहुत अदभुत फूल आए हैं। कभी आओ। उस सुनार ने कहाः आऊंगा। लेकिन था तो सुनार। सोने के कसने के पत्थर को लेकर बगीचे में पहुंच गया और एक-एक फूल को पत्थर पर कस-कस कर देखने लगा कि है भी सही कि नकली है।
तो उस फकीर ने कहा कि मुझे ऐसा ही लगा जैसा उस दिन उस माली को लगा होगा
कि किस पागल को निमंत्रण दे दिया! अब सोने के कसने के पत्थर फूलों को कसने के पत्थर नहीं हैं। सोने का निकष, सोने की कसौटी फूल की कसौटी नहीं है। फूल को जानने के लिए और ही तरह का हृदय चाहिए।

प्रेम को जानने के दो रास्ते हैं। एक तो प्रेम करो। जरा मुश्किल रास्ता है। और एक रास्ता यह है कि किसी पुस्तकालय में चले जाएं और प्रेम पर जितनी किताबें लिखी हों, वे पढ़ डालें। वह रास्ता बिल्कुल आसान है। उसमें जरा भी कठिनाई नहीं है। लेकिन ध्यान रहे, प्रेम के संबंध में कितना भी जान लेने पर प्रेम नहीं जाना जाता है।
धर्म को जानने के भी दो रास्ते हैं। एक तो यह कि धर्म का अर्थ क्या, धर्म शब्द का क्या अर्थ है, उपनिषद क्या कहते हैं, वेद क्या कहते हैं, गीता क्या कहती है, कुरान क्या कहता है, बाइबिल क्या कहती है, धर्म का क्या अर्थ है? इसे खोजने में लग जाएं। तो आप एक शोध, एक रिसर्च कर लेंगे। धर्म के संबंध में बहुत पता चल जाएगा, सिर्फ धर्म को छोड़ कर सब पता चल जाएगा। धर्म भर चूक जाएगा, एकदम चूक जाएगा।
धर्म जानना हो, तो मैंने कहा, अकेला होना पड़ेगा। वहां जाना पड़ेगा जहां अकेला मैं ही रह जाऊं और कुछ न रह जाए। तो उसका पता चलेगा जो धर्म है। धर्म मेरे लिए सत्य। धर्म मेरे लिए वह, जो है, दैट व्हीच इ.ज। धर्म से धारण करता कि नहीं, इससे मुझे कोई--न मुझे पता है, न हिसाब है, न हिसाब रखने की जरूरत समझता हूं। धर्म शब्द की व्याख्या भाषा-शास्त्री का काम है, और धर्म का अनुभव धार्मिक का काम है।
भाषा-शास्त्र अलग बात है। वहां चीजें और ही ढंग से चलती हैं। वहां सत्यों से कोई संबंध नहीं होता। सत्यों के जो प्रतीक हैं, उनसे संबंध होता है। वहां गाय से मतलब नहीं होता है, गाय शब्द से मतलब होता है। वहां धर्म से मतलब नहीं होता है, धर्म शब्द से मतलब होता है। और धर्म शब्द से मतलब बिल्कुल दूसरे तरह का मतलब है। चूक ही गए वहां हम, असली चीज से चूक गए और किसी और चीज पर चले गए।
जैसे मैं ये कपड़े पहने हुए हूं। ये कपड़े मैं नहीं हूं। और अगर मेरा कोई चादर छीन ले और समझे कि मुझे अपने घर ले आया, तो गलती में पड़ जाएगा। चादर मेरे ऊपर थी, मैं चादर नहीं हूं। वह धर्म शब्द सिर्फ उसके ऊपर है, जो धर्म है। अगर धर्म शब्द को छीन कर ले गए और सब व्याख्या करके समझ गए, तो सिर्फ चादर हाथ पड़ी। वह चूक गया जो था। आत्मा गई, शरीर हाथ पड़ गया। ऐसा रोज हो जाता है। ऐसा अक्सर हो जाता है।

एक फूल खिला है गुलाब का, आप उसके पास खड़े हैं और आप कहते हैं, बहुत सुंदर है। आपके पास एक मित्र खड़ा है, वह कहता है, सौंदर्य शब्द का क्या अर्थ है? फूल वहां पड़ा रह गया। सौंदर्य वहां पड़ा रह गया। वह पूछता है, सौंदर्य शब्द का अर्थ, पता है एस्थेटिक, जानते हो? सौंदर्य-शास्त्र जानते हो? सौंदर्य का मतलब क्या? सौंदर्य क्या है? वह आदमी कहता है, छोड़ो, सौंदर्य से कोई मतलब नहीं है, यह रहा। वह कहता है, इससे काम नहीं चलेगा। यह रहा से क्या मतलब? क्या रहा? सौंदर्य? सौंदर्य क्या है? सौंदर्य का क्या अर्थ है?
किताबें लिखी हैं लोगों ने हजार-हजार पृष्ठों की--वॉट इ.ज ब्यूटी! पूरी किताब पढ़ जाएं और उतना भी सौंदर्य का पता नहीं चलेगा जितना घास के एक फूल से पता चल जाता है। पूरी किताब पढ़ जाएं। एक हजार पन्ना पढ़ जाएं, सिर भर जाएगा सौंदर्य की व्याख्याओं से, परिभाषाओं से और उतना भी पता नहीं चलेगा जो एक छोटे से फूल को देखने से पता चल जाता है।
रवींद्रनाथ एक किताब पढ़ रहे थे सौंदर्य-शास्त्र पर। पूर्णिमा की रात है। एक बजरे में जा रहे हैं, किताब पढ़ रहे हैं। बाहर चांद पुकार रहा है। लेकिन कौन सुने? किताब पढ़ने वाला कभी नहीं सुनता। रवींद्रनाथ अपनी किताब पढ़ रहे हैं कि सौंदर्य क्या है? बाहर चांद चिल्ला रहा है कि यह रहा! बाहर की झील कहती है कि यह रहा! बाहर की लहरें कहती हैं कि यह रहा! लेकिन किताब में डूबा आदमी कहीं सुनता है?
वे अपनी किताब पढ़े चले जा रहे हैं। रात दो बज गए, थक गए। किताब शुरू की थी, तब थोड़ा पता भी होगा कि सौंदर्य क्या है, किताब की उलझन में वह भी डांवाडोल हो गया। ऊब गए, समझ में नहीं आया कि सौंदर्य क्या है। किताब बंद कर दी थक कर। मोमबत्ती जलती थी, फूंक मार कर बुझा दी। मोमबत्ती के बुझते ही चांद की किरणें भीतर भर गईं। रंध्र-रंध्र से, द्वार-द्वार से, खिड़की-खिड़की से चांद बाहर खड़ा था। किरणें नाचने लगीं। बाहर की ठंडी हवा के झोंके आए। पहले भी आ रहे थे, लेकिन किताब में डूबे आदमी को कुछ भी पता नहीं चलता। किरणें आ गईं भीतर। मोमबत्ती का धीमा सा प्रकाश किरणों को बाहर रोके था। मोमबत्ती चली गई, किरणें भीतर आ गईं। रवींद्रनाथ उठ कर खड़े हो गए, कहा, यह रहा सौंदर्य!
बाहर आ गए। चांद है पूरा, पूरी चांद की रात है। चांदी बरस रही है, सारी झील चांदी हो गई है। यह रहा! लेकिन एक किताब थी, अभी पढ़ते थे इतनी देर। वहां सौंदर्य की व्याख्या थी।
अगर, अगर अनुभव की तरफ जाना हो, तो बहुत दूसरी यात्रा करनी पड़ती है। और अगर शब्दों की तरफ जाना हो, तो बिल्कुल दूसरी यात्रा करनी पड़ती है। मैं शब्दों की यात्रा का पक्षपाती नहीं हूं। धर्म का कुछ भी अर्थ हो, मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। मुझे प्रयोजन यह है कि यह धर्म शब्द, जिसके लिए हमने उपयोग किया है जिस अनुभव के लिए, वह अनुभव क्या है?
मैं उस अनुभव की बात कर रहा हूं, वह अनुभव है मैं जो हूं उसकी पूरी प्रतीति, उसका पूरा साक्षात्कार, मैं क्या हूं इसका पूरा उदघाटन। जैसे रवींद्रनाथ ने कहा, यह रहा, ऐसा किसी दिन मैं अपने भीतर छाती पर हाथ रख कर कह सकूं कि यह रहा, और जान सकूं कि यह क्या है--यह धड़कन, यह श्वास, यह चेतना, यह सब खुल जाए, यह सब पर्दे गिर जाएं और मैं खड़ा हो जाऊं और जान लूं कि यह हूं।
जिस दिन मैं जान लूंगा कि यह रहा मैं, उसी दिन मैंने जान लिया कि वह रहे आप। जिस दिन मैंने जान लिया कि यह मैं हूं, वह आप, मैंने जान लिया कि सब क्या है; क्योंकि मैं भी एक छोटी ईंट हूं उसी सबकी। एक ईंट, एक बूंद जान ली गई, पूरे भवन का पता चल गया। उस दिन कोई कहेगा, धर्म की व्याख्या, तो वह आदमी कहेगा, जाओ कहीं और, पंडितों के पास जाओ, वे किताबें लिए बैठे हैं, वे सब बताएंगे कि धर्म यानी धारण करना या क्या। मैं नहीं कहता, मुझे कुछ मतलब नहीं है।
शब्द कामचलाऊ हैं। सवाल अनुभूति का है, एक्सपीरियंस का है। और शब्द इतना काम कर दे कि इशारा कर दे, काम खत्म हो गया है। इससे ज्यादा मूल्य नहीं है शब्द का। लेकिन हम इशारे को पकड़ लेते हैं। मैं आपको अंगुली बताऊं,

वह रहा चांद, आप मेरी अंगुली पकड़ लें और कहें कि कहां है चांद? तो मैं कहूंगा, चूक गए आप। अंगुली नहीं थी चांद, इशारा था। वहां था चांद जहां अंगुली है ही नहीं। वहां दूर अंगुली को छोड़ दें, वहां देखें। आप कहेंगे, पहले मैं इसकी जांच-परख करूं इस अंगुली की, जिससे आप कहते हैं कि वह रहा चांद।
हम सब यही कर रहे हैं। शब्दों की व्याख्या में खो गए हैं। सारा विवाद दुनिया में शब्दों का है, सत्यों का कोई विवाद नहीं। बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण के बीच कोई विवाद नहीं। लेकिन शब्द बड़े महंगे पड़ गए हैं। सबके शब्द अलग हैं।
बुद्ध कुछ और कह रहे हैं, कृष्ण कुछ और कह रहे हैं, क्राइस्ट कुछ और कह रहे हैं, और सबके पीछे पंडित इकट्ठे हैं, जिनका कोई अनुभव नहीं है। शब्द इकट्ठे कर रहे हैं। बुद्ध ने जो कहा उन्होंने पकड़ लिया। बुद्ध ने कहा, निर्वाण, उन्होंने फौरन पकड़ लिया। बुद्ध ने कहा था निर्वाण किसी अनुभव से। कोई अनुभूति हुई है। कोई अनुभूति हुई है, जिसके लिए निर्वाण शब्द उन्हें ठीक लगा कि शायद काम कर जाए। पंडित ने फौरन निर्वाण पकड़ लिया। वह गया उसने शब्दकोश खोजा कि निर्वाण का क्या अर्थ है?
शब्दकोश में लिखा है, निर्वाण का अर्थ है, दीये का बुझ जाना। तो उसने कहा कि बिल्कुल ठीक है। बुद्ध कहते हैं कि दीये का बुझ जाना ही पा लेना है। अब वह बड़ी मुश्किल हो गई, एब्सर्ड हो गई बात। दीये का बुझ जाने से क्या मतलब होगा बुद्ध का? बुद्ध का कुछ मतलब ऐसा होगा, जो दीये के बुझ जाने से जैसा दीये को लगे, अगर दीया जान सके, तो ऐसा ही आदमी को भीतर जाकर लगे कि मैं तो मिट गया, मैं तो गया, मैं तो नहीं हूं अब, अब कुछ और हो गया। एक दीया बुझ जाए और जान ले कि मैं सूरज हो गया, अब दीया नहीं हूं, ऐसा कुछ लगा होगा भीतर। तो उन्होंने कहा, निर्वाण। अब पंडित बैठा है, उसने खोज लिया शब्द, निर्वाण का क्या अर्थ है?
निर्वाण का अर्थ हैः दीये का बुझ जाना। तो उसने कहा, इसका मतलब साफ हो गया। इसका मतलब यह है कि दीये की तरह बुझ जाओ। दीये का बुझ जाना ही पा लेना सब कुछ है। अब वह इसी व्याख्या पर उलझा हुआ है। इसी पर उलझता रहेगा, खोजता रहेगा, पूछेगा, दीये का क्या अर्थ? बुझ जाने का क्या अर्थ? और डिब्बे के भीतर डिब्बे निकलते चले जाएंगे और उस यात्रा का कोई अंत नहीं।
शब्दों में जो खो जाता है वह खो ही जाता है। शब्दों से वापस लौटें और वहां आएं जहां जिंदगी खड़ी है, एक्झिस्टेंशियल जहां चीजें हैं, जहां अनुभव हैं। प्रेम पर हाथ रखें, प्रेम शब्द को छोड़ दें। धर्म पर हाथ रखें, धर्म शब्द हो छोड़ दें। परमात्मा पर हाथ रखें, परमात्मा शब्द को जाने दें कि क्या मतलब है इसका।
लेकिन आमतौर से हमारी पूरी शिक्षा-दीक्षा शब्दों की होने से बड़ी कठिनाई है। तो अस्तित्व, जहां चीजें हैं, अपनी पूर्णता में खड़ी हैं, वहां हम नहीं देख पाते। शब्द सदा बीच में खड़ा हो जाता है। सदा बीच में खड़ा है। सदा पर्दा बन जाता है। और जितने ज्यादा शब्द जिस आदमी के पास इकट्ठे हो जाते हैं, उसका देखना, दर्पण उतना ही फीका और कमजोर हो जाता है। उसे फिर कुछ नहीं दिखाई पड़ता, शब्द ही सत्य।
एक आदमी आया पास में, उसको आप नहीं देखते कभी कि वह कौन है। बस एक शब्द बीच में आ जाएगा--भंगी है, चमार है, बस एक शब्द बीच में खड़ा हो गया। अब वह शब्द ही सब काम करेगा, अब उस आदमी से आपका कोई संबंध नहीं होगा, कभी भी संबंध नहीं होगा। वह आदमी दूर हो गया, वह असली आदमी जो था वह गया। अब बीच में एक शब्द खड़ा है, आप इसी से व्यवहार करोगे। इसी शब्द को बीच में लेकर सब काम चलेगा। एक आड़ खड़ी हो गई।
एक शब्द, हजार शब्द की आड़ खड़ी हुई है। सब चीजों के संबंध में। जहां भी खड़े हैं, सब दोहरा रहे हैं। आपने कभी फूल का सौंदर्य देखा है? डर है कि न देखा हो। बचपन से सुना है कि फूल सुंदर होते हैं। शब्द पकड़ गए हैं। जब भी फूल दिखाई पड़ते हैं, आप दोहरा देते हैं फूल बड़े सुंदर हैं। लेकिन आपने सौंदर्य को अनुभव किया है? वह आपके प्राणों में घुसा है? आप कभी फूल के पास

खड़े होकर सब भूल गए हैं? कभी फूल के पास खड़े होकर आप नाचे हैं? कभी फूल के पास खड़े होकर आंसू बहे हैं? कभी फूल को छाती से लगा लिया है?
नहीं, फूल के पास से निकले हैं और कहा है, देखो कितना सुंदर फूल है और आगे बढ़ गए हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि बचपन से सुने गए शब्द कि फूल सुंदर होते हैं, दोहरा दिए गए हों? अक्सर यही है। अक्सर यही है। सौ में निन्यानबे मौके पर यही हो रहा है। इसलिए जो सिखा दिया जाता है।...
अगर एक अफ्रीकी आदिम औरत को सामने खड़ा कर दिया जाए, बाल घुटे हुए हैं, सिर घुट्टम-घुट्ट है संन्यासी की तरह। सब चेहरे पर गोदा गया है, बड़े-बड़े दाग बनाए गए हैं, ओंठ खींच-खींच कर लंबे किए गए हैं, और आपके सामने खड़ा कर दिया जाए, तो ऐसा लगेगा कि कोई--कहां भाग जाएं, सौंदर्य का ख्याल बिल्कुल नहीं आएगा कि यह स्त्री बड़ी सुंदर है। लेकिन यह स्त्री अपने कबीले में बड़ी सुंदर है। बच्चों ने बचपन से सुना है कि यह रहा सौंदर्य। इस स्त्री को बड़े दीवाने मिल जाएंगे वहां इसके कबीले में। और हो सकता है आपकी सुंदरतम स्त्री को प्रेम करने वाला खोजना मुश्किल हो जाए उस कबीले में।
हम शब्दों से जी रहे हैं, हम वह नहीं देखते जो सामने है। हमारी अपनी धारणा है, वही हम देखे चले जाते हैं। वही देखे चले जाते हैं। वही धारणा मजबूत हो जाती है।
हम सबको ख्याल है कि गोरा आदमी सुंदर होता है, इसलिए काले आदमी के सौंदर्य को देखना मुश्किल हो गया है। काले आदमी का अपना सौंदर्य है। लेकिन जब तक यह धारणा बनी है कि गोरा आदमी सुंदर होता है तब तक गोरी चमड़ी पर असुंदर से असुंदर चेहरा भी चल जाता है, बस गोरी चमड़ी चाहिए। और सुंदर से सुंदर काला आदमी तरसते दूर खड़ा रह जाता है, उसका पता भी नहीं चलता। सिर्फ हमारी धारणाएं काम करती चली जाती हैं।
हम शब्दों में जीते हैं या तथ्यों को देखते हैं कि क्या है सुंदर। आपको ख्याल है, आज से पचास साल पहले किसी आदमी ने नागफनी और कैक्टस को घर में नहीं लगाया था। पचास साल पहले अगर कोई आदमी नागफनी घर में ले आता, तो कहते, गंवार हो, दिमाग खराब हो गया है, यह नागफनी यहां किसलिए ले आए? घर में लगाने की चीज है यह? ये कांटे बेहूदे हैं, कुरूप हैं।
पचास साल पहले की धारणा यह थी कि कांटा सदा कुरूप होता है, कांटा कभी सुंदर नहीं होता। सिर्फ फूल ही सुंदर होते हैं। कांटे कैसे सुंदर हो सकते हैं? फिर धारणा बदल गई। अब जितना सुशिक्षित आदमी है, कल्चर्ड जिसको हम कहें, वह नागफनी को घर में अपने बैठकखाने में लगाए बैठा है, कैक्टस को। यह बुद्धू बन जाता पचास साल पहले। अभी यह बड़ा ज्ञानी बना है। पचास साल बाद फिर बुद्धू बन सकता है। धारणा बदलने का सवाल है।
सुना था कभी नागफनी सुंदर होती है? कभी नहीं सुना था। अगर किसी स्त्री
से कह देते कि तुम नागफनी की तरह सुंदर हो, तो झगड़ा हो जाता। वह स्त्री कभी लौट कर न देखती। अब आप कह सकते हो। अब कह सकते हो। अभी हिंदुस्तान में कहना जरा मुश्किल है। फ्रांस में कह सकते हो। और स्त्री बड़ी खुश हो जाएगी, नागफनी की तरह सुंदर! नागफनी सुंदर हो गई है। लेकिन मुझे शक है कि नागफनी में हमें सौंदर्य दिखाई पड़ रहा है? सिर्फ शब्द हमने पकड़ लिए हैं, सिर्फ शब्द पकड़ लिए हैं। शब्दों से जी रहे हैं लोग। जहां उन्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता, शब्द भर बीच में आ जाते हैं।
नहीं, शब्दों से बचना है। अगर अस्तित्व को जानना हो और अनुभव में उतरना हो, तो शब्दों को जाने दें अपनी राह पर। वह पंडितों का रास्ता है, ज्ञानियों का नहीं। पंडितों को जाने दें अपनी यात्रा पर। शब्द से नहीं कुछ होगा। धर्म का क्या अर्थ है? दो अर्थ हैं, एक तो शब्द का अर्थ है, वह भाषा-शास्त्री से पूछना चाहिए। और एक धर्म की अनुभूति है। वह अनुभूति अकेले होने का अनुभव है। एकांत का अनुभव है। पूर्णरूप से सबसे मुक्त हो जाने का अनुभव है। सब बंधन का गिर जाना, सब अज्ञान का, सब अंधेरे का। पूर्ण प्रकाश में स्वयं के भीतर पूरी तरह जाग जाने के अनुभव का नाम धर्म है।

एक-दो छोटे प्रश्न और।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि भीतर एब्सल्यूट डार्कनेस, पूर्ण निरपेक्ष अंधकार का अनुभव करना पड़ेगा, तभी पूर्ण निरपेक्ष, एब्सल्यूट लाइट का अनुभव, प्रकाश का अनुभव हो सकेगा। उन्होंने पूछा है कि जीवन में तो सभी सापेक्ष है, रिलेटिव है, यहां तो कुछ भी पूर्ण नहीं है, तो यह पूर्ण अनुभव कैसे हो सकेगा?

उन्होंने ठीक ही पूछा है। जीवन में सभी सापेक्ष है। जिस जीवन को हम जानते हैं बाहर वहां सभी सापेक्ष है। वहां कोई चीज पूर्ण नहीं है। और वहां हर चीज में विरोधी मौजूद है। हम भीतर के लिए भी जो शब्द उपयोग करते हैं, वे भी चूंकि बाहर से ही लिए गए होते हैं। और कोई उपाय नहीं है। इसलिए उन शब्दों में भी रिलेटिविटी, सापेक्षता पहुंच जाती है। लेकिन जिस अनुभव की मैं बात कर रहा हूं, वह पूर्ण का ही अनुभव है, सापेक्ष अनुभव नहीं है। सापेक्ष अनुभव इसलिए नहीं है कि वहां न कोई अनुभव करने वाला बचता है,
और न अनुभूत होने वाली वस्तु बचती है। वहां सिर्फ अनुभव ही रह जाता है, जस्ट एक्सपीरियंस इ.ज। अगर प्रेम का कभी कोई गहरा क्षण जाना है, तो न वहां प्रेमिका रह जाती है, न प्रेमी रह जाता है, बस प्रेम ही रह जाता है। प्रेम का ही आंदोलन, मूवमेंट रह जाता है। प्रेम ही आता और जाता है, प्रेम ही होता है। प्रेम के अतिरिक्त न प्रेमी होता है, न प्रेमिका होती है। और जैसे ही प्रेमी और प्रेमिका हुए कि प्रेम गया, विदा हो गया। और जब तक प्रेमी और प्रेमिका मौजूद होते हैं, तब तक प्रेम का अनुभव हो भी नहीं पाता।
लेकिन जब प्रेमी और प्रेमिका मिट जाते हैं, तो जिस प्रेम का अनुभव होता है, वह सापेक्ष नहीं है। वह आइंस्टीन की दुनिया के बाहर है, वह रिलेटिविटी के बाहर है। वहां जो अनुभव होता है, वह पूर्ण है। वहां घृणा मौजूद भी नहीं है। वहां घृणा का कोई पता ही नहीं है, वहां पता करने वाले का ही कोई पता नहीं है।
वहां सिर्फ एक, और एक भी हम कह रहे हैं शब्द उपयोग करते हैं इसलिए, वहां न एक है, न दो है। वहां जो शेष रह गया, इसीलिए जो जानते हैं, वे कहेंगे, अद्वैत, नॉनडुअल, दो नहीं है। वे यह भी नहीं कहेंगे, एक है क्योंकि एक के होने से दो होने का ख्याल पैदा होता ही है कि एक अकेला कैसे होगा? एक के बोध में दूसरा मौजूद होना ही चाहिए। तो वे कहते हैं, अद्वैत। नहीं, दो नहीं हैं। बस इतना ही कह सकते हैं, वहां दो नहीं हैं। फिर जो वहां शेष रह गया है वह पूर्ण है।
प्रेम का अनुभव भी पूर्ण अनुभव है, अगर हो जाए। और जिसे पूर्ण प्रेम
का अनुभव हो जाए, वह तत्क्षण परमात्मा में सरक जाता है। क्योंकि पूर्ण का कोई भी अनुभव परमात्मा में ले जाता है। कहीं से भी पूर्ण का अनुभव हो जाए, आदमी परमात्मा में प्रविष्ट हो जाएगा।
कोई चित्रकार चित्र बना रहा है। चित्र भी है, चित्रकार भी है, बनाना
भी है। तब तक सापेक्ष दुनिया है। फिर चित्रकार भी मिट गया, चित्र भी नहीं रहा, बनाना भी मिट गया, अब कुछ हो रहा है। जस्ट हैपनिंग। कोई नहीं है वहां। बनाने वाला अलग नहीं है। बनने वाला अलग नहीं है, बनाए जाने की प्रक्रिया अलग नहीं है। तीनों एक हो गए। एक ही घटना रह गई वहां। बस वहीं पूर्ण का अनुभव शुरू हो जाएगा। सापेक्ष, रिलेटिव के बाहर उतर गए हम। वहीं से परमात्मा आ जाएगा।
एक वीणाकार वीणा बजा रहा है। वीणा मिट जाए, बजाने वाला मिट जाए, संगीत मिट जाए, एक हो जाएं तीनों। उसको हम कोई भी नाम दे दें, संगीत कहें, जो कहें, एक रह जाए, तीनों मिट जाएं। वीणा अलग न हो, वीणावादक अलग न हो। पता भी न हो कि वीणा है। वीणावादक को यह भी पता न हो कि मैं हूं, संगीत भर रह जाए, तीनों एक हो जाएं, रिलेटिविटी के बाहर हो गए, सापेक्ष के बाहर चले गए। वह जिस दुनिया को हम जानते हैं, उसके बाहर सरक गए, खिसक गए, अलग हो गए, कहीं और चले गए।
तो संगीत भी पहुंचा सकता है, प्रेम भी पहुंचा सकता है, चित्र भी पहुंचा सकता है। कुछ भी पहुंचा सकता है। जहां तीन मिट जाते हों और एक ही रह जाता हो, वहीं हम सापेक्ष जगत के बाहर हो जाते हैं।

लेकिन आमतौर से हम सापेक्ष में ही जीते हैं, कभी बाहर नहीं होते। यही
तो हमारा दुख है। इसलिए प्रेम करते हैं, प्रेम का आनंद कभी उपलब्ध नहीं होता। वह अधूरा ही रह जाता है, अटका ही रह जाता है। चित्र बनाते हैं, लेकिन चित्रकार नहीं हो पाते। वीणा बजाते हैं, लेकिन कभी वीणा नहीं बजा पाते, क्योंकि वह मिट ही नहीं पाता, हम मिट ही नहीं पाते, अहंकार खड़ा ही रह जाता है।
ध्यान रहे, इसे एक सूत्र में ऐसा कहा जा सकता है, जहां तक अहंकार है वहां तक सापेक्ष जगत है। जहां अहंकार गया, वहां से पूर्ण की शुरूआत हो गई, वहां से पूर्ण की दुनिया आ गई।
लेकिन यह मेरे कहने से कुछ समझ में आने वाली बात नहीं है। उतरना ही पड़े। जिसे हम जानते हैं, वहां सब सापेक्ष है, उतरना ही पड़े। हम तो जो शब्दों का उपयोग कर रहे हैं--अंधेरा, प्रकाश यह शब्द भी सापेक्ष है। इसलिए ये शब्द भी पूरी खबर नहीं लाते। क्योंकि कोई अंधेरा, बिना प्रकाश के नहीं समझा जा सकता। और कोई प्रकाश बिना अंधेरे के नहीं समझा जा सकता। दोनों मौजूद रहेंगे ही। अगर हम कहेंगे, यह प्रकाश है, तो किसी न किसी तल पर अंधेरा खड़ा ही होगा, घेरा बांध कर। नहीं तो अंधेरे के बिना प्रकाश कैसे होगा?
हम जिस दुनिया को जानते हैं, वहां अंधेरे और प्रकाश दो की जरूरत है।
वह दुनिया डुआलिटी की, द्वैत की दुनिया है। इसी शब्द, इसी दुनिया के शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। कोई और उपाय नहीं, कोई और शब्द नहीं है। इन्हीं का उपयोग करके भीतर का इशारा करना पड़ता है। इसीलिए सब इशारे, किसी न किसी तल पर गलत हो जाते हैं।
जिस दिन हम वहां पहुंचेंगे, जहां पूर्ण है, उसको न हम प्रकाश कह सकते हैं, न अंधेरा कह सकते हैं, या दोनों कह सकते हैं, या दोनों इनकार कर सकते हैं, कुछ भी कर सकते हैं, सब चलेगा। किसी ने कहा है कि वह महा अंधकार है, वह भी ठीक कहता है। किसी ने कहा है, वह परम प्रकाश है, वह भी ठीक कहता है। किसी ने कहा है, वह दोनों है--अंधेरा भी, प्रकाश भी एक ही साथ, वह भी ठीक कहता है। और किसी ने कहा है, वहां दोनों नहीं है--न अंधेरा, न प्रकाश, वह भी ठीक कहता है।
ठीक कहने का मतलब यह है कि यह सब कामचलाऊ बातें हैं। वहां जो है उसे कहने का कोई भी उपाय नहीं है। कोई इशारा वहां तक नहीं पहुंच पाता। सब इशारे, जस्ट एप्रॉक्सिमेट, बस पास-पास तक खबर करते हैं। थोड़ी दूर जाकर सब इशारे खो जाते हैं, और वहां, वहां कोई शब्द साथ नहीं जाता।

एक अंतिम बात, एक मित्र ने पूछा है कि हमने सुना है कि जो सत्य को जान लेते हैं, वे चुप हो जाते हैं। फिर आपको सत्य मिला या नहीं, क्योंकि आप तो बहुत बोलते हैं?

उन मित्र से पूछना चाहूंगा, उन्होंने किससे सुना कि जो सत्य को बोलते हैं, वे चुप हो जाते हैं? अगर उस आदमी ने जान लिया होगा, तो वह चुप हो गया होता। और अगर उस आदमी ने नहीं जाना होगा, तो वह कहने का हकदार नहीं रह गया। किसने कहा है कि जो सत्य को बोल लेते हैं, वे चुप हो जाते हैं? इसे बोलने को भी तो बोलना ही पड़ता है। इसे बोलने को भी, इसे कहने को भी बोलना ही पड़ता है। उपनिषद कहते हैंः नहीं कहा जा सकता उसे, फिर भी कहने की कोशिश करते हैं। लाओत्सु कहता हैः कहना मुश्किल है, कहना असंभव है, फिर भी कहता है। बुद्ध कहते हैंः अनिवर्चनीय, नहीं वचन में आएगा, फिर जिंदगी भर बोलते रहते हैं। महावीर कहते हैंः कोई शब्द वहां नहीं ले जाता, फिर जीवन भर शब्द ही शब्द हैं। और जीसस कहते हैंः नहीं कह सकूंगा, शब्द नहीं कह सकते हैं, लेकिन फिर भी शब्द का ही उपयोग करते हैं। अगर यह बात सच हो कि जो सत्य को पा लेता है, वह नहीं बोलता, तो इस बात का भी पता चलना मुश्किल था कि कौन बोलता इसको। निश्चित ही, जो सत्य को पा लेते हैं, वे और ढंग से बोलते हैं। बोलते जरूर हैं, लेकिन यह भी कहते चले जाते हैं साथ में कि बोलने को ही सत्य मत समझ लेना। बोलते भी हैं और कहते हैं साथ में कि बोलने को ही मत पकड़ लेना।

इशारा भी करते हैं, वह चांद है और साथ कहते हैं, अंगुली को चांद मत समझ लेना। बोलते भी हैं और बोलने में विश्वास भी नहीं करते। शब्द का उपयोग भी करते हैं और शब्द के दुश्मन भी हैं। शब्द को इशारा भी मानते हैं, शब्द को सत्य भी नहीं मानते हैं। यह दोनों ही बातें एक साथ हैं।
सत्य जिसे मिल जाता है वह यह जान लेता है कि सत्य को बोला नहीं जा सकता। सत्य जिसे मिल जाता है वह जान लेता है कि बोलना असंभव है। लेकिन अपनी इस पीड़ा को कि बोला नहीं जा सकता है, ऐसा कुछ पा लिया है, कैसे कहें? इसे कैसे खबर पहुंचाएं? चुप हो जाएं?
चुप होकर भी लोगों ने देखा है। चुप होकर भी देखा है। चुप होकर भी कहने
की कोशिश की है। लेकिन चुप होने की बात केवल वे ही समझ सकते हैं जो खुद भी चुप होने में समर्थ हों। अगर मेरे पास आ जाएं और बिल्कुल चुप होकर बैठ जाएं, तो मैं भी चुप होकर ही कहूंगा। लेकिन आप शब्द में पूछें और मैं चुप होकर कहूं, आप तक नहीं पहुंचेगा।
चुप में ही कहा जा सकता है। साइलेंस भी लैंग्वेज बनती है, मौन भी भाषा
बन जाती है। लेकिन फिर समझने वाला रिसीवर भी तो चाहिए। अगर कोई मौन होने को तैयार हो, तो उससे मौन में भी बात हो सकती है, फिर शब्दों की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन दुनिया इतने शब्दों से भरी है कि मौन चिल्लाने से नहीं सुनाई पड़ता, मौन कैसे सुनाई पड़ेगा? डंका पीटो बाजार में तो सुनाई नहीं पड़ता, मौन कैसे सुनाई पड़ेगा? मौन से ही कहना चाहता हूं, लेकिन तब मौन में ही सुनने आना पड़े। मौन से ही कहा जा सकता है, लेकिन तब मौन में ही सुनना पड़े।
किसी फकीर के पास कोई गया और कहा कि बिना शब्दों में बताएं, बताइए? बिना शब्दों में बताएं, बताइए, क्योंकि मैंने सुना है कि सत्य शब्दों में नहीं बताया जा सकता।
वह फकीर खूब हंसने लगा। उसने कहाः बताएंगे। तुम बिना शब्दों में पूछो। क्योंकि जो सत्य शब्दों में नहीं कहा जा सकता वह सत्य शब्दों में पूछा भी नहीं जा सकता।
पूछने और कहने के तल पर शब्द होगा। लेकिन इतना ही फर्क पड़ेगा कि जो सत्य की जिसकी कोई झलक नहीं है, वह कहेगा, शब्द ही सब कुछ हैं, शास्त्र ही सब कुछ हैं। बस कह दिया, इसी को पकड़ लेना, यही सत्य है।
और जिसे सत्य की थोड़ी भी झलक मिल जाएगी, वह कहेगा, जो कह दिया है इसे छोड़ देना, पकड़ मत लेना। इससे कुछ भी नहीं होगा। सिर्फ इशारा किया है, इंगित किया है। इंगित सत्य नहीं है। इंगितों को छोड़ देना। उस तरफ बढ़ जाना जहां सत्य है।
इतना तो हम कह सकते हैं न कि मौन से सत्य मिलेगा। कहना पड़ रहा है यह, मौन से सत्य मिलेगा। लेकिन मौन का इशारा तो कर सकते हैं।
लेकिन कोई हो सकता है इस शब्द को पकड़ ले कि मौन से सत्य मिलेगा। बैठ जाए आंख बंद करके और कहने लगे, मौन से सत्य मिलेगा, मौन से सत्य मिलेगा, मौन से सत्य मिलेगा। इस बेचारे को कभी नहीं मिलेगा। क्योंकि यह शब्दों को दोहरा रहा है। कहा था, मौन से सत्य मिलेगा, तो ये शब्द भी छोड़ देने थे, सब शब्द छोड़ देने थे, हो जाना था मौन।
जैसे ही कोई मौन होता है वह सब प्रकट हो जाता है जो है। हम इतने भरे हैं शब्दों से कि सत्य हमारे भीतर आ नहीं सकता। स्पेस नहीं है, भीतर जगह नहीं है।
एक छोटी सी कहानी से अपनी बात पूरी करूंगा।
एक युनिवर्सिटी का प्रोफेसर एक फकीर के पास मिलने गया। जापान के एक छोटे से गांव में घटी घटना है। क्योटो में एक फकीर है, उसके पास एक युनिवर्सिटी का प्रोफेसर आया। युनिवर्सिटी का प्रोफेसर शब्द ही शब्द से भरा हुआ है। प्रोफेसर के पास और क्या हो सकता है? शब्द ही शब्द हैं। वह आया। उसने आते से ही पसीना भी नहीं पोंछा, आते से ही उसने कहा कि मैं जानने आया हूं सत्य क्या है? बताइएगा?
उस फकीर ने कहाः थोड़ा विश्राम तो कर लें। इतनी जल्दी में सत्य कभी जाने गए हैं ऐसे भागते हुए? पसीना तो पोंछ लें, दो क्षण श्वास तो ले लें।

श्वास जोर से चलने लगी है पहाड़ चढ़ने में। बैठें, थोड़ा सुस्ता लें, थोड़े आराम में हो जाएं। इतने श्रम में, इतने भागते-भागते सत्य नहीं मिलता।
प्रोफेसर बैठ गया। बाहर तो भागना बंद हो गया, भीतर तो भागना जारी है।
वह पूछ रहा है, कितना समय खराब हुआ जा रहा है। जल्दी से बता दे तो अच्छा है यह आदमी। मुझे दूसरी जगह जाना है। एक और फकीर से पूछना है, वह नीचे पहाड़ के उस तरफ रहता है। यह सब भीतर भागना चल रहा है।
वह फकीर कहता हैः बाहर से तो रुक गए, थोड़ा भीतर भी शांत हो जाओ तो अच्छा हो। तो थोड़ी बात हो सके। फिर मैं थोड़ी चाय बना लाऊं, तुम थक गए हो, चाय पी लो। और यह भी हो सकता है, चाय पीने में ही उत्तर भी मिल जाए।
उस प्रोफेसर ने सोचा, किसी पागल के पास आ गए? मैं इतना कीमती प्रश्न पूछ रहा हूं, वह कह रहा है, चाय पीने में उत्तर मिल जाएगा। लेकिन अब आ ही गया हूं तो कम से कम चाय तो पी ही लूं। यह सोच कर वह रुक गया।
वह फकीर चाय बना लाया है, प्रोफेसर के हाथ में उसने एक प्याली पकड़ा दी है। केतली से चाय ढाल रहा है। प्रोफेसर को सिर्फ चाय ही दिखाई पड़ रही है। वह फकीर कुछ और भी ढालना चाहता है, वह प्रोफेसर को दिखाई नहीं पड़ रहा है। चाय की प्याली भर गई पूरी। फकीर चाय को ढाले ही चला गया है। नीचे की बसी भी भर गई। फकीर चाय को ढाले ही चला गया। फिर नीचे की बसी पूरी भर गई, फिर बूंद नीचे टपकने को हो गई। तब प्रोफेसर चिल्लाया कि रुकिए, यह आप क्या कर रहे हैं? अब जगह बिल्कुल भी नहीं है। फकीर ने कहाः समझे कुछ? प्रोफेसर ने कहाः क्या खाक समझा! इतना ही समझा है कि चाय भर गई है पूरी और प्याली में जगह नहीं है।
फकीर ने कहाः भीतर की प्याली में जगह है? वहां भी शब्द भर गए हैं पूरे। थोड़ा खाली करो, जगह बनाओ। भीतर आने की जगह तो चाहिए। भगवान भी आएगा, तो फर्नीचर थोड़ा तो हटाओ। फर्नीचर ही फर्नीचर घर में। तो भीतर जगह भी तो होनी चाहिए। आने दो भीतर, जगह तो बनाओ। प्याली भर गई, तुम्हें दिखाई पड़ गई, लेकिन खोपड़ी भर गई है, यह अब तक दिखाई नहीं पड़ा।
हम सबकी खोपड़ी भरी हुई है शब्दों से। जरा भी जगह नहीं है। है जगह भीतर इंच भर भी? अगर रही होती तो हमने पहले ही एक शब्द और भर लिया होता। हमारी हालत तो वैसे ही है कि एक ब्राह्मण को निमंत्रण किया था, वह खूब लड्डू खा गया है, फिर वह इतना बीमार पड़ गया कि घर ले जाना मुश्किल है।
वैद्य को बुलाया। उसने कहाः गोली खा लो।
उसने कहाः पागल, अगर गोली की जगह होती तो हम एक लड्डू और पहले ही नहीं
खा लेते।
वह जगह तो बची कहां है, कुछ भी जगह नहीं है भीतर। पहले जगह बनानी है।
जगह बनाने का मतलब ही मौन है। साइलेंस का मतलब ही है स्पेस, साइलेंस का मतलब ही है जगह, खाली जगह। उस खाली जगह में उतरेगा वह--उतरेगा कहना गलत है, है ही वही। खाली जगह में दिखाई पड़ जाता है।
और प्रश्न रह गए हैं, कल उनकी बात हो सकेगी।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
पांचवां प्रवचन

जीवन का सम्मान

मेरे प्रिय आत्मन्!
बाहर एक जगत है पदार्थ का, उससे हम परिचित हैं। भीतर एक जगत है परमात्मा का, उससे हम अपरिचित हैं। पदार्थ दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है। पदार्थ छुआ जा सकता है, परमात्मा के स्पर्श का कोई उपाय नहीं है। शायद इसीलिए पदार्थ सब कुछ हो गया और परमात्मा कुछ भी नहीं। कैसे इस भीतर के परमात्मा से संबंध हो सके? कैसे हम बाहर पकड़ गए हैं और रुक गए हैं? किसने हमें पदार्थ के पास बांध रखा है? पदार्थ ने? पदार्थ तो किसी को कैसे बांध सकेगा। हम ही बंध गए होंगे। बंधने की कड़ियां कुछ और होंगी, जो हमने ही निर्मित की होंगी।
एक बड़े मकान के सामने मैं खड़ा था। आग लग गई है। मकान का मालिक रो रहा है, चिल्ला रहा है। उसका मकान जल गया है। पास से दौड़ कर किसी ने उस आदमी को कहाः मत रोओ, व्यर्थ परेशान हो रहे हो। कल तुम्हारे बेटे ने मकान बेच दिया है, रुपये मिल गए हैं।
मकान अब भी जल रहा है। वह आदमी हंसने लगा। मकान थोड़ी देर पहले भी जल रहा था, यही मकान। यही आदमी रोता था। पता चला है, रुपये मिल गए हैं, मकान बेच दिया गया है। यही आदमी है, वही मकान है। यह आदमी हंस रहा है। मकान अब भी जल रहा है।
क्या फर्क पड़ गया है? मकान मेरा नहीं रहा। मकान बांधे था बाहर, तो अब
भी यह आदमी रोता-चिल्लाता। मकान अब भी जल रहा था। नहीं, मकान नहीं बांधे था। मकान के आस-पास इस आदमी ने मैं का, मेरे का एक जाल फैलाया था। और वह बांधे था। वह मकान बिक गया है। वह मेरा नहीं रहा है। अब जले, न जले, कोई फर्क नहीं। वह आदमी हंस रहा है।
लेकिन तभी किसी और आदमी ने उससे कहा कि मकान बेच दिया, यह तो ठीक, लेकिन रुपये अभी नहीं मिले हैं। और खबर आई है कि अब जले हुए मकान को वह आदमी लेने को राजी नहीं है।
वह आदमी फिर रोने लगा है। मकान वही है। वह आदमी फिर छाती पीट रहा है। मेरा मकान फिर हो गया है। फिर पीड़ा शुरू हो गई है। फिर दुख शुरू हो गया है। कौन बांधे है बाहर? पदार्थ?
पदार्थ किसी को बांधने में समर्थ नहीं है। बांधता है ममत्व, बांधता
है मेरा होना। बांधता है मेरे मैं का विस्तार। मेरा मैं जहां-जहां फैल जाता है वहीं-वहीं मैं बंध जाता हूं। मैं के फैलाव का नाम मेरा है। मैं के फैलाव का नाम ममत्व है।
वह हमारा जो ईगो है, वह जो मेरा मैं है, जहां-जहां फैला लेता हूं, जितने दूर तक फैला लेता हूं--मेरा बेटा है, मेरी पत्नी है, मेरा मित्र है, मेरा धर्म है, मेरा देश है, मेरी जाति है, मेरा मकान है। वह जहां-जहां मैं पहुंच जाता है, वहीं-वहीं मैं बंध जाता हूं।
बंधने का सूत्र क्या है? गुलामी का सूत्र क्या है? परतंत्रता का मूल आधार क्या है? पदार्थ? नहीं, बंधने का मूल आधार मैं हूं, मेरा मैं है, मेरे मैं का फैलाव है। और हम सबने मैं का फैलाव किया है। बल्कि हम उस आदमी को सफल कहते हैं, जो जितनी बड़ी सीमा तक अपने मैं को फैला ले। जो जितने दूर तक कह सके, मेरा, वह आदमी उतना सफल हो जाता है। और जिसके पास अपने को छोड़ कर मेरा कहने जैसा कुछ भी न हो, हम कहेंगे, बहुत दीन-हीन है।
पाम्पेई नगर में ज्वालामुखी फूटा। नगर आग से भर गया। लाखों लोग आधी रात को अपना सामान लेकर भागना शुरू कर दिए। एक दार्शनिक, एक फकीर भी उस गांव में था। वह भी चल पड़ा है। रास्ते पर सारे भागते हुए लोग हैं। कोई अपने आभूषण, हीरे-जवाहरात, धन, कोई कुछ और, जो जिसके पास है, सब बोझ से दबे हैं। वह अकेला एक आदमी निर्बोझ सुबह घूमने की छड़ी लेकर चल पड़ा है। रास्ते पर जो भी है उससे पूछता है, क्या आप कुछ बचा कर नहीं लाए? वह कहता है, जो भी मेरा था वह मेरे साथ है, उसे मैं बचा लाया हूं। जो भी मिलता है रास्ते पर, देखता

है, सिर पर बोझ नहीं, हाथ खाली हैं, वह पूछता है, क्या सब छूट गया, सब जल गया, कुछ बचा नहीं पाए? वह कहता है, मेरा कुछ था ही नहीं। जल भी नहीं सकता था, छूट भी नहीं सकता था, और जो मैं हूं वह साथ है।
वह सारा गांव रोता हुआ जा रहा है। सब कुछ बचा कर ले आए, लेकिन फिर भी कुछ पीछे छूट गया है। बड़े महलों में ज्यादा पीछे छूट गया है, छोटे झोपड़ों में भी पीछे छूट गया है। कम से कम झोपड़े तो पीछे छूट गए हैं। कुछ भी बचा लाए हैं, फिर भी पीछे छूट गया है।
और जिनका "मेरा भाव" जितना विस्तीर्ण होता है, उन्हें जो बच जाता है
वह दिखाई नहीं पड़ता, जो छूट जाता है वह दिखाई पड़ता है; क्योंकि जो बच गया है उसके साथ तो मेरा मैं अब भी जुड़ा है। जो छूट गया है उससे मेरे मैं को तोड़ना पड़ रहा है। वह मकान जो पीछे रह गया उससे मैं को खींचना पड़ रहा है। कष्ट है, पीड़ा है। मैं छूटता नहीं है। वे सभी लोग रोते हुए जा रहे हैं। वह एक आदमी उस लाखों की भीड़ में हंस रहा है।
लोग उससे पूछते हैं, हंसते हो? कुछ बचा भी नहीं पाए, फिर कैसे हंसते हो?
वह कहता है, कुछ खोने को ही नहीं था, बचाने का सवाल नहीं था। और हंसता हूं इसलिए, सिर्फ इसलिए हंस रहा हूं कि तुम सबको देखता हूं, इतना बचा लाए, फिर भी रो रहे हो। तुम्हें देख कर हंस रहा हूं।
हम सबके फैलाव हैं। हम सबके आंसू भी हैं। फैलाव की मात्रा में आंसू भी
बढ़ जाते हैं। हम सबके फैलाव हैं, हम सबकी पीड़ाएं भी हैं। हम सबका फैलाव है, हम सबके बंधन भी हैं।
कौन बांधे है बाहर? अगर इसे हम ठीक से न समझ लें, तो भीतर पहुंचना बहुत मुश्किल है। कौन बांधे है अंधेरे के बाहर, जो प्रकाश तक नहीं पहुंचने देता?
लोग कहेंगे, संसार बांधे है, वे लोग झूठ कहते हैं। संसार किसी को भी बांधे हुए नहीं है। हम नहीं होंगे, तो भी संसार होगा। हम नहीं थे, तो भी संसार था। संसार हमारे लिए नहीं है। संसार हमें बांधे हुए नहीं है। जो भी कहते हैं, संसार बांधे हैं, गलत कहते हैं। हम संसार से बंध जाते हैं, दूसरी बात है। संसार किसी को बांधता नहीं है। इसलिए जो कहते हैं, संसार बांधे है, वे संसार को व्यर्थ ही गाली दिए चले जाते हैं।
संसार का कोई संबंध हमें बांधने से नहीं है। अगर मैं एक खूंटी पर अपने कोट को टांग दूं और कहूं कि खूंटी मेरे कोट को टांगे हुए है, और खूंटी पर नाराज हो जाऊं, तो लोग मुझे पागल कहेंगे। वे कहेंगे, अपना कोट उतार लो, खूंटी ने कभी कहा नहीं कि टांगो। टांगा है, इसलिए खूंटी टांगे हुए है। निकाल दो तो खूंटी ने कभी किसी को कहा नहीं कि टांगो, और नहीं टांगा था, तो खूंटी बुलाने नहीं आई थी। निकाल लोगे, खूंटी एतराज नहीं करेगी। खूंटी कुछ टांगती नहीं, हम कुछ टांगते हैं। तो खूंटी टंग जाने के लिए राजी हो जाती है। खूंटी इनकार भी नहीं करती।
संसार किसी को बांधता भी नहीं, स्वतंत्र भी नहीं करता। हम चाहें तो बंध जाएं, चाहे तो स्वतंत्र हो जाएं। संसार को कुछ मतलब ही नहीं है। संसार की धारा को हमसे कोई संबंध भी नहीं है। उसकी यात्रा अपनी है। हम अलग हैं, चाहें तो बंध जाएं, चाहें तो अलग हो जाएं। बंध जाएं तो अपने से छूट जाते हैं स्वयं से व भीतर से। और छूट जाएं बाहर से तो पहुंच जाते हैं वहां जहां हमारा असली होना है। भीतर की यात्रा में यह समझ लेना जरूरी है कि संसार किसी को बांधे नहीं है।
लेकिन आदमी बहुत बेईमान है, और आदमी बहुत धोखेबाज है। आदमी उन सब चीजों को भी दूसरों पर थोप देना चाहता है जो उसने ही निर्मित की हैं। बंधते हम हैं, संसार को गाली दिए चले जाते हैं। कोई कहता है, पत्नी बांधे हुए है; कोई कहता है, बेटे बांधे हुए हैं; कोई कहता है, धन बांधे हुए है। न पत्नी किसी को बांधती है, न पति किसी को बांधता है, न बेटा, न धन। कुछ भी नहीं बांधता।
संसार बिल्कुल असमर्थ है किसी को भी बांधने में। हम बंधते हैं, तो बंध जाते हैं। बंधना हमारी अपनी च्वाइस, अपना चुनाव है। हम गुलाम होना चाहते

हैं, इसलिए गुलाम हो जाते हैं। हम बाहर रुकना चाहते हैं, इसलिए रुक जाते हैं।
एक आदमी नाटक देखता है, नाटक से भी बंध जाता है। देख रहा है, नाटक है। देख रहा है, जो सीता चोरी गई है वह असली सीता नहीं है। रामलीला चल रही है। और जो राम रो रहे हैं और वृक्षों से पूछ रहे हैं, मेरी सीता कहां है? वह राम बिल्कुल झूठे हैं। और थोड़ी देर बाद सीता और राम दोनों पर्दे के पीछे चाय पीते मिल जाएंगे। लेकिन देखने वाला रोने लगा है। सीता चोरी चली गई है, देखने वाला रोने लगा है। नाटक देख कर भी हम बंध जाते हैं, ख्याल भूल जाता है कि नाटक है।
टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी मां नाटक देखने की बड़ी शौकीन थी। रोज ही किसी थियेटर में मौजूद होती थी और थियेटर में पूरे समय रोती रहती थी। रूमाल आंसुओं से गीले हो जाते थे। टाल्सटाय छोटा है, वह अपनी मां को पूछता है कि तू रोती क्यों है? नाटक ही तो है।
बच्चे ऐसे सवाल पूछ लेते हैं, तो हम उन्हें कहते हैं, नासमझ हो, तुम्हें अभी कुछ अनुभव नहीं है। वह टाल्सटाय पूछता है, रोती क्यों हो? नाटक ही तो है, कहानी तो ही है, और तो कुछ भी नहीं।
हम भी नाटक से बंध जाते हैं, कहानी से। स्मरण ही नहीं रह जाता है कि जो देखते हैं कहानी है। तो फिर जिंदगी से बंध जाना तो बहुत आसान है। मंच पर पर्दे से बंध जाते हैं। फिर पहले तो नाटक होते थे, अब तो नाटक भी नहीं हैं। अब तो खाली पर्दे पर दौड़ती हुई तस्वीरें हैं। तस्वीरें भी क्या हैं, सिर्फ धूप-छाया का खेल है, सिर्फ प्रकाश और अंधेरे का खेल है। उसमें भी रोते हैं, उसमें भी दुखी और पीड़ित हो जाते हैं।
अगर अंधेरा न हो सिनेमागृह में तो लोगों को बड़ी परेशानी होगी, क्योंकि चारों तरफ लोग देखें कि कौन रो रहा है। अभी भी रोते हैं तो देख लेते हैं पास-पड़ोस के लोग देखते तो नहीं? चुपचाप आंसू पोंछ लेते हैं। पर्दे पर कुछ भी नहीं है, पर्दा बिल्कुल खाली है। सच तो यह है कि जितना खाली है उतना ही अच्छा पर्दा है। एक-एक पर्दे के पचास-पचास हजार रुपये भी खर्च करने पड़ते हैं, खाली होने की ही कीमत है। पर्दा बिल्कुल खाली है, एक रेखा भी उस पर नहीं है। बिल्कुल कोरा है, एकदम कोरा है। जितना कोरा है, उतना कीमती है। उस पर सिर्फ धूप-छाया का खेल है और लोग रो रहे हैं। अगर हम सोचेंगे तो बड़ी हैरानी होगी।
हम सपनों से भी बंध जाते हैं। रात सपना देखा है, नींद खुल गई है, लेकिन छाती धड़कती चली जा रही है। अभी घबड़ाहट लगी है। वह सपने में जो देखा था वह अभी पीछा कर रहा है। सपनों से बंध जाते हैं, नाटक से बंध जाते हैं, तो जिंदगी जो इतनी सच है बाहर उससे तो हम बंध ही जाएंगे। हमारी बंधने की कीमिया, केमिस्ट्री है कुछ। हमारे बंधने की कोई भीतरी तरकीब है जो कहीं भी बांध देती है। हम बंधने को राजी हैं, कुछ भी मिल जाए, उसी से बंध जाते हैं। एक आदमी घर छोड़ कर चला जाता है। बंधने की तरकीब साथ लिए चला जाता है। फिर आश्रम से बंध जाता है। घर छोड़ा था, फिर आश्रम बंध जाता है। बच्चे छोड़े थे, बेटे-बेटियां छोड़े थे, फिर शिष्य-शिष्याएं इकट्ठे हो जाते हैं। फिर वह उनसे बंध जाता है।
एक बहुत बड़े जैन मुनि की मैं जीवन-कथा पढ़ रहा था। लिखा है कि एक शिष्य
से उन्हें बड़ा प्रेम था। निश्चित ही, मुनि प्रेम करे तो आध्यात्मिक ही करता है। साधारण लोग प्रेम करें तो शारीरिक होता है। आध्यात्मिक प्रेम था। कभी उस शिष्य का साथ नहीं छोड़ते थे। निरंतर उसी के साथ विहार करते थे। फिर दूसरे शिष्यों को ईर्ष्या हो गई। संन्यासियों को भी ईर्ष्या होती है। ईर्ष्या तो साथ चली जाती है, संन्यास से क्या संबंध? दूसरे शिष्यों ने कहाः यह नहीं चलेगा। इसको कभी तो छोड़िए। इसको किसी दूसरे रास्ते पर, दूसरे मार्गों पर, दूसरे गांवों में भ्रमण करने दीजिए।
गुरु बामुश्किल राजी हुए। एक गांव में खुद चौमासा किया, दूसरे गांव में शिष्य ने चौमासा किया। बीच में नदी है, वर्षा के दिन हैं, लेकिन दोनों नदी के किनारे दोनों तरफ सुबह आकर खड़े होकर एक-दूसरे को देख लेते हैं। तब तृप्ति मिलती है।

उनका प्रेम आध्यात्मिक है? और अगर आप अपनी पत्नी को सुबह देखे बिना तृप्त न हों, तो यह शारीरिक है? नाम बदल लेते हैं। आदमी भीतर अगर वही रह गया, तो नाम बदल लेने से कुछ भी नहीं हो जाता है।
मैं एक और महात्मा का जीवन पढ़ता था। तीस साल पहले उन्होंने घर छोड़ दिया। फिर उनकी पत्नी मरी तीस साल बाद। वे बनारस में थे। पत्नी के मरने की खबर पहुंची, तो उन संन्यासी ने कहाः चलो झंझट मिटी। उनकी जीवन-कथा में उनके शिष्यों ने लिखा हैः इतना महान आदमी कि पत्नी मरी तो उसने राग का एक शब्द न कहा, उसने कहा, चलो झंझट मिटी।
मैंने पढ़ा तो मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने उस किताब लिखने वाले लेखक को
एक पत्र लिखा और मैंने पूछा, अपने गुरु से पूछना, तीस साल पहले जिस पत्नी को छोड़ आए थे, उसकी झंझट अभी बाकी थी कि उसके मरने से मिटी? झंझट कहीं भीतर बाकी रह गई होगी। कहीं भीतर सब वही चलता रहा होगा। वह पत्नी अभी भी पत्नी थी।
पत्नी छोड़ कर भाग जाने का सवाल नहीं है, मेरे होने की धारणा अगर बाकी
है तो हजार मील दूर भी जो है वह मेरा है। छोड़ कर भाग जाऊं, तो भी मेरा है। आंख बंद कर लूं, तो भी मेरा है। वह मर जाए, तो भी मेरा है। मेरे का भाव, उसका फैलाव, नये रास्ते खोज लेगा। और एक खूंटी छोड़ेगा दूसरी खूंटी पर टंग जाएगा। एक जगह से हटेगा दूसरी जगह फिर निर्माण कर लेगा।
हमारा, मेरा, मैं, मेरे संसार का निर्माता है। हम क्रिएटर्स हैं। एक संसार हम बनाते हैं, एक संसार परमात्मा ने बनाया है। वह सत्यों का संसार है। वहां ट्रुथ्स हैं, वहां फैक्ट्स हैं, तथ्य हैं। एक संसार हम सब भी बनाते हैं। वहां सपने हैं, फिक्शंस हैं।
कौन बंधता है? कौन बांधता है? यह ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह एक बार ठीक से ख्याल में आ जाए, तो भीतर की यात्रा बड़ी सुगम है। भीतर की यात्रा कठिन नहीं है। लेकिन बाहर से बंधे हुए भीतर की यात्रा कैसे हो सकती है? और हम सब बंधे हैं। लेकिन हम कहेंगे, बाहर हमें बांधे हुए है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम क्या करें? पत्नी-बच्चे बांधे हुए हैं, मकान-दुकान बांधे हुए हैं। मैं बहुत हैरान होता हूं कि कौन किसको बांधे हुए है? कौन किसको बांध सकता है? हम बंधे हुए हैं, इस सीधे से सत्य को स्वीकार नहीं करना चाहते, इसे भी दूसरों पर थोप देते हैं।
तो साधु-संन्यासी स्त्रियों को गाली दिए चले जा रहे हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। वह तो स्त्रियां किताबें नहीं लिखती हैं, नहीं तो पुरुष को नरक का द्वार लिखतीं। उन्होंने किताबें लिखी नहीं, इस झंझट में वे पड़ी ही नहीं। सब किताबें पुरुष लिखते हैं, तो वे लिखते हैं, स्त्रियां नरक के द्वार हैं। कौन नरक का द्वार हो सकता है, अगर हम ही खुद नरक के द्वार नहीं हैं तो? लेकिन मनुष्य का तर्क सदा खुद को बचा लेता है।
आप मुझे गाली देंगे, मैं क्रोध से भर जाऊंगा, तो मुझे कभी ख्याल नहीं आएगा कि क्रोध मुझमें था, इसलिए गाली क्रोध को जगा सकी। अगर क्रोध न होता तो गाली नपुंसक हो जाती, व्यर्थ हो जाती, निकल जाती, छेद नहीं पाती कहीं। लेकिन कहूंगा मैं यह कि तुमने मुझे क्रोध करवा दिया। कहूंगा मैं यह कि लोग मुझे क्रोध करवा रहे हैं, मैं क्या कर सकता हूं?
और ध्यान रहे, जितनी मनुष्य के मन की खोज-बीन होती है, उतना पता चलता
है कि जो आदमी क्रोध करता है, अगर उसे कोई गाली न दे, कोई क्रोध का मौका न दे, तो भी वह आदमी मौके खोज कर क्रोध करेगा ही। वह बच नहीं सकता।
अगर एक आदमी को हम कमरे में बंद कर दें, जहां कोई भी नहीं है, तो भी वह आदमी क्रोध करेगा। हो सकता है फाउंटेनपेन को गाली दे और पटक दे। अब फाउंटेनपेन बिचारा तो गाली नहीं दे सकता है। हो सकता है दरवाजे को धक्का मार कर खोले और दरवाजे के साथ ऐसा व्यवहार करे जैसा दुश्मन के साथ कर रहा हो। और हो सकता है कपड़े इस भांति फेंके कि उनकी हत्या कर रहा हो। और जूते इस भांति उतारे जैसे जन्मजात शत्रुता उनसे हो। वह आदमी क्रोध तो जारी रखेगा, वह क्रोध जारी रखेगा। वह दीवालों को गाली देने लगेगा। वह सपने में लड़ना शुरू कर देगा। अकेला आदमी भी क्रोध करेगा। क्रोध भीतर है, तो निकलेगा। बाहर तो सिर्फ खूंटियां हम खोजते हैं।

और इसलिए अगर किसी क्रोधी आदमी को ऐसे लोगों के साथ रहने मिल जाए जो क्रोध का मौका न दें, तो इस बात से भी उसे बहुत क्रोध आएगा कि कैसे लोग मिल गए हैं? उसे पता नहीं चलेगा कि यह क्या हो रहा है, लेकिन वह परेशान और बेचैन हो जाएगा। क्रोध हमारे भीतर है, बाहर सिर्फ खूंटियां हैं। लेकिन हम जोर यह देते हैं कि दूसरे लोग क्रोध करवाते हैं, इसलिए हम क्रोधित हो जाते हैं।
बुद्ध एक गांव के पास से निकले हैं। कुछ लोगों ने बहुत गालियां दी हैं, पत्थर फेंके हैं। बुद्ध ने उनसे कहा कि मैं जाऊं, मुझे जल्दी दूसरे गांव पहुंच जाना है। अगर तुम्हारी बातें पूरी हो गई हों तो मुझे आज्ञा दो या कि मैं थोड़ी देर और रुकूं? बातें बाकी हैं?
उन लोगों ने कहाः बातें? हम सीधी गालियां दे रहे हैं, समझ नहीं पड़ता आपको? हम सीधे तीर चला रहे हैं, ख्याल में नहीं आता आपको? ये बातें नहीं हैं। हम जितनी गंदी गालियां दे सकते थे हमने दी हैं। आप क्रोधित नहीं हो रहे हैं?
बुद्ध ने कहाः कौन कब किसको क्रोधित कर सका है। आज तक सुना तुमने कि कोई किसी को क्रोधित कर सका हो? हां, कोई चाहे तो क्रोधित हो सकता है।
लोग क्रोधित होते हैं, कोई किसी को क्रोधित नहीं करता। बहाने बन जाते हैं, दूसरे लोग खूंटियां बन जाते हैं। टांगते हम सदा अपने को ही हैं। बुद्ध ने कहाः तुमने गालियां दीं, मैंने सुनीं। मैं समझा कि तुम बड़े क्रोध में हो। बात खत्म हो गई। गालियां तुम दे रहे हो, मेरा क्या संबंध है? अब मैं तुमसे कहता हूं, अगर मैं न निकलता तो तुम किसी और को भी गालियां देते, तुम कोई और खोज लेते, जिसको गालियां देते हैं।
अगर असली आदमी न मिले, तो लोग मूर्तियां बना कर, कपड़े के पुतले बना कर, उन्हीं को गालियां देकर जला देते हैं। असली आदमी मिलना जरूरी थोड़े ही है। अगर पाकिस्तान से झगड़ा हो जाए, तो अयूब खां का पुतला ही जला कर बड़ी तृप्ति मिलती है। अब आदमी पागल है। और रावण का पुतला तो हम जलाए ही चले जा रहे हैं हजारों साल से। हम ऐसे भी निकाल लेते हैं।
बुद्ध ने कहाः मैं न आता तो तुम कोई और खोज लेते। मुझसे क्या संबंध है? तुम्हें गाली देनी है। फिर मैंने तुम्हारी गालियां सुन लीं, लेकिन मैं तुम्हारी गाली लेने को राजी नहीं हूं। मैं तब लेता था जब मुझे क्रोध करने में रस आता था। तब मैं गालियां ले लेता था; क्योंकि बिना गालियां लिए क्रोध करना मुश्किल है। मैं तत्काल ले लेता था। तुम देते नहीं कि मैं फौरन ले लेता। अब मैं लेता नहीं।
दस वर्ष पहले तुम्हें आना था, तो बड़ा मजा आता, तुमको भी बड़ा मजा आता। तुम खाली हाथ न जाते, मैं भी तुम्हें गालियां लौटा देता। लेकिन आज तुम्हें खाली हाथ वापस लौटना पड़ेगा, या अपनी ही गालियों को वापस ले जाना पड़ेगा। और कोई उपाय नहीं है।
मैं लेता नहीं हूं। मैं मजबूर हूं। मैंने लेना बंद कर दिया है, क्योंकि मेरे भीतर जो लेने वाला तत्व था, वह विदा कर दिया है। अब मेरे भीतर क्रोध नहीं है, तुम्हारी गालियां व्यर्थ हैं। मेरे क्रोध में तुम्हारी गालियों की सार्थकता थी। तुम्हारे क्रोध का अर्थ, तुम्हारी गाली का अर्थ मेरे क्रोध में था। वह खत्म हो गया है। गालियां सुन ली हैं मैंने, जैसे कोई सूने भवन में चिल्ला दे। आवाज गूंजे और विदा हो जाए, भवन फिर सूना हो जाए। मैं जाऊं? दूसरे गांव मुझे जल्दी पहुंचना है।
वे लोग तो बड़ी मुश्किल में पड़ गए। चलते वक्त बुद्ध ने कहाः तुम्हें देख कर मुझे बड़ी दया आती है। दूसरे गांव में कुछ लोग मिठाइयां लाए थे, मैंने कहाः मेरा पेट भरा है, वे वापस ले गए। क्या किया होगा उन लोगों ने उन मिठाइयों का?
एक आदमी ने उस भीड़ में से कहाः गांव में बांट दी होंगी, और क्या किया होगा!
बुद्ध ने कहाः तुम क्या करोगे? तुम गालियों के थाल सजा कर लाए थे, अब वापस ले जाना पड़ेगा। तुम क्या करोगे? मैं तो लेता नहीं हूं। तुम बड़े गलत आदमी के पास आ गए हो।

लेकिन दस साल पहले यह बुद्ध भी यही कहता कि तुमने मुझे क्रोधित करवा दिया है। हमारी दलील और हमारा तर्क यह है कि हम सब दूसरे पर टांग देते हैं। दूसरे हमें बांधे हुए हैं। दूसरे क्रोध करवा रहे हैं। दूसरे मोह पैदा करवा रहे हैं। धन बांधे हुए है, पद बांधे हुए है, गांव-घर बांधे हुए है।
कोई किसी को बांधे हुए नहीं है। हम बंधना चाहते हैं, इसलिए बहाने खोज लेते हैं। और एक बहाना छोड़ेंगे और हमारे बंधने की पुरानी आदत जीवित रहेगी। हम दूसरा बहाना खोज लेंगे और उससे बंध जाएंगे।
बंधन की हमारी आतुरता है। हम भीतर से गुलाम होने को बहुत उत्सुक हैं। बिना जंजीरों के हमें अच्छा नहीं लगेगा। लेकिन अगर यह हमें ख्याल आ जाए कि हम ही बंधते हैं, तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर एक ही सवाल रह जाएगा, नहीं बंधना है, तो बंधने वाले सूत्रों को भीतर से तोड़ दो।
अभी हम क्या करते हैं? अभी भी बंधन से लोग भागते हैं। सूत्र नहीं तोड़ते। सिर्फ खूंटियां बदल लेते हैं। खूंटियां बदलने वाले लोगों को हम संन्यासी कहते हैं। सूत्र नहीं तोड़ते। वह जो गुलामी की भीतरी आकांक्षा है, वह नहीं टूटती। एक स्त्री अपने पति को छोड़ देती है, फिर वह कृष्ण की मूर्ति के सामने कहती है कि तुम्हीं मेरे पति हो। मामले में फर्क नहीं पड़ता है। दिमाग वही है, और वह कृष्ण से यह कहती है कि कब मेरी सेज पर आओगे? वह चल रहा है भीतर। वही दिमाग है, वही बनावट है, सोचने का वही ढांचा है, वही प्रोजेक्शन है, वही कल्पनाएं फिर पकड़ने लगी हैं। अब पति छूट गया है, तो कृष्ण पति हो गया है, लेकिन पति पैदा करने की जो कामना है, वह जाएगी नहीं, वह जा नहीं सकती।
वह ऐसे कैसे जाएगी? पति को छोड़ने से जाएगी? घर छोड़ने से जाएगी? तो मेरा आश्रम, फौरन खड़ा हो जाएगा, और वह आश्रम उतना ही पकड़ लेगा। जाएं आश्रमों में, खोजें साधु-संन्यासियों को, खातेबही खोले हुए हिसाब-किताब रख रहे हैं आश्रमों का। जाएं, देखें, आश्रमों के मकान बना रहे हैं--खड़े हैं धूप में, बरसात में। ऐसा साधारण आदमी भी, गृहस्थ आदमी भी खड़ा नहीं होता। लेकिन गृहस्थ खड़ा होगा, तो वे कहेंगे, बंधन में पड़े हो। आश्रम बनाने से आदमी बंधन में पड़ता ही नहीं?
लेकिन आदमी भीतर अगर वही है, तो क्या फर्क पड़ सकता है कि हम क्या कर रहे हैं। धोखा जरूर हम अपने को दे सकते हैं। खूंटी बदलने से धोखा पैदा होता है। मैं आपसे इस बात को जोर देकर कहना चाहता हूं, बाहर कोई भी आपको बांधे हुए नहीं है। शिकायत मन में कभी किसी की मत लेना कि किसी ने मुझे बांधा है। किसी ने आज तक पृथ्वी पर किसी को नहीं बांधा। और पदार्थ बेचारा क्या बांधेगा? पत्थर मिट्टी क्या बांधेंगे? मकान की ईंटें क्या बांधेगी? सोना-चांदी क्या बांधेगा किसी को? बंधते हम हैं। बंधना हम चाहते हैं। फिर हम बंध जाते हैं। फिर सोने-चांदी की भी जरूरत नहीं, कागज का नोट भी बांध लेगा। फिर सोने-चांदी की जरूरत नहीं, फिर कागज का नोट भी बांध सकता है। किसी स्त्री की ही जरूरत है बांधने के लिए। कोई जरूरत नहीं है। उसकी स्मृति भी बांध सकती है।
बंधते हम हैं, बंधने की हम तलाश में हैं। यह सत्य ठीक से ख्याल में आ जाए, तो भीतर जाना बहुत आसान है। क्योंकि तब हमें किसी को छोड़ना नहीं। तब हमें बंधने की प्रवृत्ति को ध्यानपूर्वक देखना, जानना, पहचानना है कि मैं कब और कहां बंध जाता हूं? मैं कैसे बंध जाता हूं? मेरा ममत्व कैसे फैल जाता है? मेरा मैं कैसे विस्तीर्ण हो जाता है?
स्वामी राम अमरीका गए, तो लोग बड़े परेशान हुए। उनके बोलने का ढंग बहुत अजीब था। अमरीका के आदमी को ख्याल में भी नहीं आ सकता था कि कोई ऐसा बोलेगा। राम हमेशा थर्ड पर्सन में ही बोलते थे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि मुझे भूख लगी है। वे यही कहते थे, अब मालूम होता है राम को भूख लग रही है। वे कभी यह नहीं कहते थे कि रात मुझे बहुत ठंड लगी, वे यही कहते थे, रात बड़ा मजा आया, राम ठंड में बहुत सिकुड़ते रहे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि रास्ते पर कुछ लोग मिल गए और मुझे गालियां देने लगे, लौट कर भी यही कहते थे, आज बड़ा मजा आया, हम खड़े देखते रहे, राम को बहुत गालियां पड़ीं। वे ऐसे ही बोलते थे, जैसे राम कोई दूसरा आदमी है। राम कोई और है, मैं कोई और हूं।

जो आदमी ममत्व को तोड़ना चाहता है उसे स्वयं को और स्वयं के होने की जो तस्वीर बन गई है दुनिया में उसको और ही तरह देखना जरूरी है। नहीं तो ममत्व नहीं टूटता।
उनसे अमरीका में किसी ने पूछा, कि आप कहते हैं, राम को भूख लगी है, आपको भूख नहीं लगती?
वे कहतेः मुझे सिर्फ पता चलता है कि राम को भूख लगी है। मैं जानने वाला हूं कि राम को भूख लगी है। फिर मैं जानने वाला हूं कि अब राम का पेट भर गया है। कई दफा तो ऐसा होता है कि मैं जान लेता हूं कि पेट भर गया और राम खाए ही चले जाते हैं। ऐसा भी हो जाता है कई बार।
यह जो राम, यह जो पर्सनैलिटी, यह जो एक व्यक्तित्व हमारे चारों तरफ खड़ा है, यह व्यक्तित्व और मैं भिन्न हूं। पर्सनैलिटी व्यक्तित्व और आत्मा भिन्न हैं। इसका थोड़ा सा बोध गहरा हो, तो ममत्व टूटना बंद हो जाता है। ममत्व की सीमा सिकुड़नी शुरू हो जाती है।
ममत्व का मूल सूत्र एक ही है कि मैंने व्यक्तित्व को ही मैं समझ रखा है। फिर व्यक्तित्व से संबंधित सारी चीजें मैं होती चली जाती हैं। एक आदमी बड़े मकान में है, इस आदमी को झोपड़े में रख दें, आपको पता है? इसकी पर्सनैलिटी में फर्क पड़ गया है, इसका व्यक्तित्व और हो गया है। बड़े मकान में यह बड़ा आदमी था, इसके व्यक्तित्व में बड़े होने का भाव था। इसका मकान छिन गया, इसे एक झोपड़े में रख दें, यह आदमी छोटा हो गया। हो सकता है झोपड़े में सब सुविधा हो, फिर भी यह आदमी छोटा हो गया। इसके व्यक्तित्व को सिकुड़ना पड़ा।
व्यक्तित्व हमारे शरीर पर सीमित नहीं है। व्यक्तित्व हमारे सारे ममत्व पर सीमित है। सारा ममत्व हमारा व्यक्तित्व है। जितना ममत्व है, उतना ही हमारा व्यक्तित्व है। बाप बेटे को अपना हिस्सा समझता है, एक्सटेंशन है वह उसी का। मां अपने बेटे को अपना हिस्सा समझती है, मेरा ही फैला हुआ एक हाथ है। बेटे को चोट लगती है तो मां तकलीफ में पड़ जाती है। अपना ही फैला हुआ एक हाथ पीड़ित होता है।
मकान को आग लगती है, तो मालिक तकलीफ में पड़ जाता है। खुद का व्यक्तित्व कहीं से जलने लगता है। किसी आदमी से उसका पद छीनो, वह कितना बेचैन हो जाता है। पद छीनने से क्या फर्क पड़ता है? एक आदमी को कुर्सी से उतार दो। उतर कर कुर्सी से खड़े हो जाना चाहिए।
नहीं, इतना आसान नहीं है। कुर्सी उसके व्यक्तित्व का हिस्सा हो गई थी, उसकी पर्सनैलिटी हो गई थी। कुर्सी थी, तो वह था। कुर्सी नहीं है, तो सब मामला गड़बड़ हो गया है। उसे अब कुछ और होना पड़ेगा। इसलिए देखें, जैसे ही कोई आदमी भूतपूर्व हो जाता है--भूतपूर्व और बहुत भूतपूर्व--हमारे मुल्क में मिनिस्टर हैं। गांव-गांव में वही हैं। भूतपूर्व मिनिस्टर बढ़ते चले जाते हैं। एक जमाना तो ऐसा आएगा कि हमें बताना पड़ेगा कि यह आदमी भूतपूर्व मिनिस्टर नहीं हैं; क्योंकि इतने लोग भूतपूर्व मिनिस्टर होते चले जाते हैं। भूतपूर्व मिनिस्टर को देखा है आपने कैसा हो जाता है? जैसे कपड़े की क्रीज निकल जाए, ऐसा हो जाता है। एकदम व्यक्तित्व लोचपोच हो जाता है। एकदम व्यक्तित्व गया। वही व्यक्तित्व था, वही सब कुछ था, वही जान थी, वही अकड़ थी, वही चारों तरफ का फैलाव था, वह गया, एकदम सिकुड़ गया आदमी।
तो आदमी मर जाना पसंद करता है, लेकिन पद छोड़ना पसंद नहीं करता। इसलिए
जब तक कोई न मर जाए, उससे पद छुड़ाना बड़ा मुश्किल होता है। मर जाता है, बेचारे को मजबूरी हो जाती है, लोग जल्दी से लाश उठा कर ले जाते हैं। इधर लाश नहीं उठ पाती और जो रो रहे हैं चारों तरफ बैठे हुए इस फिकर में लग जाते हैं कि जरा गड़बड़ न हो जाए, कौन कुर्सी पर बैठ जाए! इधर लाश नहीं उठी है कि कुर्सी पर बैठने का विचार शुरू हो गया है।
आदमी मरघट पर पीछे पहुंचता है, कुर्सी पर बैठने का इंतजाम पहले होने लगता है। वे ही सारे लोग जो रो रहे हैं, उसके मरघट पर खड़े होंगे, कि बड़ा दुख हुआ कि आप मर गए और चित्त में भगवान को धन्यवाद दे रहे हैं कि अगर यह न मरता तो वह जगह खाली होने वाली नहीं थी। अब जगह खाली है, अब जल्दी यह निपटारा हो तो भागूं, उस कुर्सी पर कोई और न बैठ जाए तब तक।

हमारा व्यक्तित्व, हमारे धन, हमारे मकान, हमारे पद, हमारी प्रतिष्ठा सबसे जुड़ा हुआ है। हिटलर जिस दिन अपनी आत्महत्या किया, मरने के पहले कितना सिकुड़ गया होगा? मरते दम तक हिटलर यह घोषणा करता रहा है रेडियो पर कि हम जीत रहे हैं। बर्लिन में दुश्मन आ गया, जर्मनी तो गया, राजधानी जा रही है। बर्लिन के बाहर के हिस्सों में बम गिर रहे हैं, बर्लिन के ऊपर दुश्मन के जहाज उड़ रहे हैं, लेकिन हिटलर अपने मकान के बाहर आकर देखने को राजी नहीं है।
उसके मित्रों ने कहाः आप क्या कह रहे हैं? सब गया है।
लेकिन हिटलर कहता है कि तुम गद्दार हो, तुम झूठ हो, बाहर निकल जाओ। मुझसे हार की बात मत करो। और वह रेडियो पर घोषणा करता है कि हम जीत रहे हैं। हमारी जीत में कोई शक नहीं है।
पागल हो गया होगा। क्या हुआ होगा उसको? उसके दरवाजे के बाहर गोलियां
चल रही हैं। दुश्मन के सिपाहियों की चोटें और पैरों की आवाजें उसके घर के बाहर आ रही हैं और वह रेडियो पर कह रहा है कि हम जीत रहे हैं। हमारी जीत सुनिश्चित है।
और जो मित्र उससे कहते हैं कि क्या आप कह रहे हैं? पागल हो गए हैं?
वह उनसे कहता है, गोली मरवा दूंगा, बाहर हो जाओ। इस तरह की झूठी बातें मुझसे मत कहो, हम कभी हार सकते हैं? जर्मनी कभी हार सकता है?
कैसा, क्या हो गया होगा उसके मन को? विक्षिप्त, वह अपने व्यक्तित्व को छोड़ने को राजी नहीं है। वह जीतता हुआ, फैलता हुआ। हेल। फ्यूहरर, वह व्यक्तित्व इतना बड़ा, वह कैसे मान ले कि हम हार रहे हैं। वह मरना मान सकता है, हारना नहीं मान सकता।
और जब उसे पता ही चल गया है पक्का, कि हार सुनिश्चित हो गई है, और जर्मन पार्लियामेंट के ऊपर दुश्मन का कब्जा हो गया है। तब वह मर जाना पसंद करता है। वह गोली मार कर मर जाता है। लेकिन मरते वक्त तक भी वह फ्यूहरर, मरते वक्त तक भी वह विजेता है। वह हारा हुआ आदमी नहीं है।
हमारे व्यक्तित्व का फैलाव है, और उस व्यक्तित्व को हम पकड़े हुए हैं।
और वही हमारी जकड़ है, वहीं से हम भीतर आत्मा तक नहीं पहुंच पाते हैं। पर्सनैलिटी से जो जकड़ गया है वह इसेंस तक नहीं पहुंचता। व्यक्तित्व से जो जकड़ गया है वह आत्मा तक नहीं पहुंचता।
तो एक बोध भीतर विकसित करना जरूरी है अंतर्यात्रा के लिए, अंधेरे से प्रकाश की तरफ जाने वाले यात्री के लिए कि मैं कौन हूं? यह पद मैं हूं? पद नहीं था तब भी मैं था, पद नहीं होगा तब भी मैं रहूंगा, तो निश्चित ही पद तो मैं नहीं हो सकता। यह धन मैं हूं? धन नहीं था तो भी मैं था, धन नहीं होगा तो भी मैं रहूंगा, यह धन मैं हूं? तो धन तो मैं नहीं हो सकता। ये बेटे, पत्नी, ये मित्र, यह समाज, यह संगठन, यह राज्य, यह देश, यह मैं हूं? इसका सचेत बोध भीतर होना चाहिए।
और जैसे-जैसे बोध होता है, वैसे-वैसे लगता है कि कुछ है जो मैं नहीं हूं और मैंने मान रखा है कि मैं हूं। कुछ है जो मैं बिल्कुल नहीं हूं, लेकिन मैं जोर से चिपक गया हूं उससे और मान रहा हूं कि मैं हूं। यह मुझे बाहर रोके हुए है, यह मेरे बाहर से बंधन हैं। व्यक्तित्व, ममत्व, मेरे बाहर से जुड़ा हुआ, मेरा बंधन है।
हिटलर ने कभी शादी नहीं की। मरने के दो घंटे पहले शादी की थी। शादी नहीं की जिंदगी भर, क्योंकि हिटलर कभी किसी को अपने बराबर मानने को राजी नहीं हो सका। हिटलर का कोई मित्र नहीं था। कोई उसे तू नहीं कह सकता था हिटलर से। उसके व्यक्तित्व को भारी चोट लग जाती। तू कोई भी नहीं कह सकता। हिटलर के कंधे पर कोई मित्र-भाव से हाथ नहीं रख सकता था। उसी दिन खत्म कर दिया जाता।
हिटलर की आज्ञा में कोई इनकार नहीं कर सकता था। इसलिए पत्नी जैसी निकटतम किसी को पास लाना खतरनाक है। वह तू भी कह सकती है, कंधे पर हाथ भी रखेगी। तो हिटलर ने शादी नहीं की।
एक लड़की से प्रेम था। एक वर्ष तक वह उसके पास थी। एक दिन उस लड़की ने कहा कि मुझे मां से मिलने जाना है।

हिटलर ने कहाः नो, नहीं। हिटलर चला गया दफ्तर।
उस लड़की ने कहाः इसमें क्या बात है नहीं की? मैं मिल कर घंटे भर में आ जाती हूं।
वह मिलने गई। हिटलर लौट कर आया। उसने आकर पूछा, तू मां से मिलने गई थी? उसने कहाः हां।
उसने उसे गोली मार दी उसी वक्त। मित्रों ने कहाः यह तुम क्या करते हो, तुम इतना प्रेम करते हो?
उसने कहाः मैं सिर्फ हां को प्रेम करता हूं; नहीं को मैं बिल्कुल प्रेम नहीं करता। यह औरत किसी मतलब की नहीं है। इसने इनकार किया, इसने मेरी बात नहीं मानी, हिटलर की! फ्यूहरर की! वह व्यक्तित्व, वही मैं हूं। मरने के दो घंटे पहले शादी की। उस औरत को वह दस-बारह साल से प्रेम करता था, लेकिन टालता रहा, उससे विवाह नहीं किया। मित्रों ने कहा, तो उसने कहाः विवाह नहीं कर सकता हूं, क्योंकि कोई मेरे कंधे पर हाथ रख दे, या कोई मुझसे तू कह कर बोले दे। यह असंभव है। मैं फ्यूहरर हूं!
दो घंटे पहले, जब मरने के करीब आ गया, आत्महत्या करनी है, एक पादरी को दौड़ा कर उठवाया, सोए हुए किसी भी पादरी को उठा लाओ। उस औरत को नींद से बुलवाया और कहा कि जल्दी तलघरे में... नीचे तलघरे में शादी हो गई है। कोई मौजूद न था। एक पादरी था, एक दो मित्र थे, एक हिटलर था, वह औरत थी।
उस औरत ने कहा कि इतनी जल्दी क्या पड़ी है?
उसने कहाः अब देर नहीं। अब समय नहीं है। शादी हो गई और शादी के बाद जो पहला काम किया, वह आत्महत्या--दोनों ने आत्महत्या कर ली।
हिटलर से उस पादरी ने पूछा भी कि मरते वक्त क्यों कर रहे हो?
उसने कहाः जीते-जी करना मुश्किल था; मैं किसी को निकट और समान नहीं मान सकता हूं।
हम सब भी छोटे-मोटे हिटलर तो हैं ही, बड़े नहीं होंगे। छोटे-मोटे सब हैं। और सबका एक व्यक्तित्व का ढांचा है। उस व्यक्तित्व के ढांचे को बचाने के लिए जिंदगी भर लड़ते हैं। उसी लिए धन, उसी लिए पद, उसी लिए सब।
बाप अपने बेटे को कहता है, मेरी इज्जत का ख्याल रखना। ऐसा कोई काम मत करना कि मेरी इज्जत पर आंच आ जाए। यह बेटा भी इज्जत बचाने के लिए एक साधन है। यह बेटा भी एक उपकरण है, एक मीन्स है कि बाप की इज्जत बचे। हमारा कुल, हमारा परिवार, हम विशिष्ट हैं, इसे बचाना।
हम साधारण लोग नहीं है। सब अहंकार का प्रक्षेपण। इसीलिए तो बेटा न हो
तो बाप को बड़ी बेचैनी होती है। क्योंकि फिर अहंकार को प्रक्षेपण करने के लिए आगे कौन बचेगा, इसलिए बेटा होना जरूरी है।
ये हमारी सारी चेष्टाएं किसलिए हैं? एक व्यक्तित्व की हमारी धारणा है
कि मैं कुछ हूं। और इस मैं को हम मजबूत करते हैं सब तरफ से। यही मजबूती हमारा बंधन है, यही हमें बाहर से बांध लेती है।
नहीं। खोज करनी पड़ेगी, मैं हूं? कपड़ों में, इज्जत में, प्रतिष्ठा में, सम्मान में, मैं हूं या मैं कुछ अलग हूं?
ईरान में एक सम्राट अपने दरबार के बुद्धिमान लोगों को कहा कि मुझे एक ऐसा सूत्र लिख कर दे दो जो हर समय काम आ सके--सुख में भी, दुख में भी; जीत में भी, हार में भी; जीवन में भी, मृत्यु में भी, एक सूत्र। ज्यादा नहीं चाहता हूं।
बुद्धिमानों ने बहुत खोजा। बड़े-बड़े शास्त्र बुद्धिमान ला सकते थे, एक सूत्र लाना बहुत मुश्किल था। जितना कम बुद्धि का आदमी हो उतनी बड़ी किताब आसानी से लिख सकता है। छोटा सूत्र खोजना बहुत मुश्किल बात है। बड़ी कठिन बात है।
रुजवेल्ट से कोई पूछ रहा था कि अगर आपको दस मिनट बोलना हो, तो कितनी तैयारी करनी पड़ती है? रुजवेल्ट ने कहाः दस मिनट? दो दिन तैयारी करनी पड़ती है।
और उसने कहाः अगर दो घंटे बोलना हो?
तो उसने कहाः तैयारी की कोई जरूरत ही नहीं है, फिर तो मैं बोलना शुरू
कर दूंगा।

बुद्धिमान जिनको हम कहते हैं, पंडित जिनको हम कहते हैं, वे बहुत फैलाव
कर सकते हैं, लेकिन सिकुड़ना बहुत मुश्किल बात है। सीड्स, बीज पकड़ना बहुत मुश्किल बात है।
पंडित बहुत मुश्किल में हो गए। एक सूत्र जो सुख में भी काम आ सके, दुख में भी; जीत में भी, हार में भी; जीवन में भी, मृत्यु में भी? उन्होंने कहाः यह तो बड़ा मुश्किल है।
फिर एक फकीर के पास गए। उस फकीर ने कहाः यह सूत्र मैं लिखे देता हूं, लेकिन तुम मत देखना, क्योंकि तुम्हारी समझ में नहीं आएगा। तुम्हारी समझ में आ सकता होता तो तुमने खुद ही खोज लिया होता। इसे बंद कर देता हूं एक ताबीज में। यह ताबीज सम्राट को दे देना और कहना, जब जरूरत पड़े खोल कर सूत्र पढ़ लेना।
ताबीज सम्राट को दे दिया गया। दो वर्ष तक ख्याल भी नहीं रहा, ताबीज पड़ा रहा गले में। फिर सम्राट हारा, दुश्मन जीत गया। सम्राट भाग रहा है। दुश्मन की ताकत पीछे आ रही है। सेनाएं सब भाग गईं हैं, बिखर गई हैं। हार निश्चित हो गई है। सम्राट जान बचाने को जंगल में भाग रहा है। दुश्मन पीछे हैं।
तेज घोड़ा सम्राट का आगे जाकर खड्ड पर ठहर गया है। नीचे खड्ड है, जहां आगे अब कोई जाने का एक क्षण भी, एक पल भी उपाय नहीं है। एक कदम आगे नहीं जाया जा सकता। पीछे दुश्मन आ रहा है। आवाजें बढ़ती जा रही हैं घोड़ों की टापों की। उसे ख्याल आया, अब क्या करूं? ख्याल आया, ताबीज। ताबीज खोला, एक छोटा सा वाक्य लिखा है, जिसका अर्थ हैः दिस टू विल पास अवे, यह भी चला जाएगा। पढ़ा, हंसने लगा। कहाः देखें। देखें चला जाता है या नहीं? ख्याल आया कि जिंदगी में सब तो आया और चला गया, तो यह भी कैसे रुक जाएगा? हो सकता है चला जाए। और सच ही घोड़ों की तेज आती हुई टापें बिखर गईं।
जीवन के बहुत अनुभव उसे भी ज्ञात थे--सब आता है, सब चला जाता है। हो सकता है जो आज आ गया है यह भी चला जाए। अभी घबड़ा रहा था, अब हंस कर प्रतीक्षा करने लगा कि देखें, चला जाता है या नहीं?
अब तक खुद हिस्सेदार था, भाग था खेल का, अब द्रष्टा हो गया। देखें यह
भी चला जाता है या नहीं? भूल गया कि मैं ही हिस्सा हूं अभिनय का एक। मैं ही मुसीबत में पड़ा हूं, यह भूल गया। मैं ही मौत के करीब खड़ा हूं, यह भूल गया। ख्याल आया, देखूं, यह भी चला जाता है या नहीं?
खड़े होकर घोड़े पर बैठे देखने लगा, द्रष्टा हो गया। आश्चर्य, पीछे से घोड़ों के टापों की बढ़ती आवाज धीमी-धीमी हो गई। वे कहीं और रास्ते पर भटक गए हैं जंगल में। जिंदगी के जंगल के रास्ते बहुत बड़े हैं। भटक गए कहीं। वह घोड़ा लौटा कर वापस लौट आया है। ताबीज बंद कर लिया, हंस रहा है।
और पंद्रह दिन बाद उसकी सेनाएं इकट्ठी हो गईं। वह जीत गया, वापस राजधानी लौट रहा है। स्वागत-सत्कार है, फूलमालाएं हैं, दीये जले हैं, धूप जली है, नृत्य है, राजमहल सजा है, वह वापस लौट रहा है। सीढ़ियां चढ़ कर खड़ा हो गया, सोने के सिंहासन पर बैठने को है, तब उसे फिर ख्याल आ गया। ताबीज खोल कर देखा, लिखा हैः दिस टू विल पास अवे, यह भी बीत जाएगा। और खूब हंसने लगा है। दरबारी पूछने लगे, आप हंसते हैं?
उसने कहाः अब हंसता ही रहूंगा। अब एक ख्याल आ गया है। सब बीत जाता है।
और जो नहीं बीत जाता, वही मैं हूं। चीजें आती हैं और चली जाती हैं। सब आता है, बीत जाता है। जो बीत जाता है, उसी को पकड़ लेना व्यक्तित्व है, पर्सनैलिटी है।
अंग्रेजी का शब्द पर्सनैलिटी बहुत अदभुत है। वह ग्रीक ड्रामा में जो लोग ऊपर मुंह पर मुखौटे पहन कर नाटक करते थे, उस मुखौटे को कहते थे, परसोना। नाटक में चेहरा दूसरा लगा लिया, उस दूसरे चेहरे को कहते थे, परसोना। उसी से बना है पर्सनैलिटी। वह जो हम चेहरे लगाए हुए हैं जिंदगी में, और उन्हीं को पकड़ लिया है जोर से, वही हमारा व्यक्तित्व है।
उस सम्राट ने कहाः अब कोई फिकर नहीं। सिंहासन भी वही है, मौत भी वही है, हार भी वही है, जीत भी वही है। क्योंकि सभी बीत जाता है। जब सभी बीत जाता है, तो सभी समान है। सुख भी वही है, दुख भी वही है। मित्र भी वही, शत्रु

भी वही। अपना भी वही, पराया भी वही। जब सभी बीत जाता है तो बराबर है। जो शेष रह जाता है, अब मैं उसकी ही खोज करूंगा। उस फकीर से जाकर पूछो कि शेष क्या रह जाता है? सब बीत जाता है, शेष क्या रह जाता है?
वे भागे हुए फकीर के पास गए। उस फकीर ने कहाः मुझसे मत पूछो। जो बीत जाता है, तुम उसको देखते रहो। तुम्हें उसका पता चल जाएगा जो शेष रह जाता है। वह मुझसे पूछने मत आओ, तुम सिर्फ इतने द्रष्टा बन जाओ कि जो बीत जाता है उसे देखते रहो। फिर जो शेष रह जाता है वही रह जाएगा। तुम वही हो, तुम वही हो जो शेष रह जाता है।
लेकिन क्या हम वही हैं जो शेष रह जाता है? क्या हम वही हैं जो जन्म के पहले थे? क्या हम वही हैं जो मृत्यु के बाद होंगे?
नहीं। हमने बहुत कुछ जोड़ लिया है। न मृत्यु के बाद हो सकते हैं, न जन्म
के पहले थे। हमने बीच में बहुत कुछ जोड़ लिया है, इकट्ठा कर लिया है। वही हमारा ममत्व है, वही हमारा व्यक्तित्व है, वही हमारा फैलाव है, वही हमारा बंधन है, वही कारागृह है। कोई और नहीं बांधे है। हमने मैं को जितना फैला लिया है, उतने हम बंध गए हैं।
और "मैं" हमने किस पर फैला लिया है? जो बीत जाता है। जो बीत ही रहा है।
जो टिकता नहीं क्षण भर, रोज बीत जाता है। कल आप क्या थे, आज आप वही हैं? आप इस कमरे में आए थे, जो थे वही आप इस कमरे के बाहर जा सकेंगे? असंभव है। घंटे भर में गंगा का बहुत पानी बह गया।
आपके व्यक्तित्व का भी बहुत पानी बह गया। घड़ी भर पहले जो आप थे अब आप वही नहीं हैं। लेकिन मन यही माने चला जाएगा कि मैं वही हूं जो घड़ी भर पहले था। हम बंधे हुए, बहते हुए व्यक्तित्व को बांध कर बैठ गए हैं। आप वही सोच रहे हैं जो आप कल थे। वही हैं?
कोई वही नहीं है जो कल था। यहां तो सब बह रहा है। हां, गंगा के किनारे जाकर खड़े हो जाएं, तो ऐसा लगेगा, वही गंगा है जो कल आए थे। लेकिन जो जानता है वह कहेगा, वह गंगा अब कहां? वह पानी अब कहां? सब गया, अब सब नया है वहां, अब कुछ और ही बह रहा है। लेकिन भ्रम पैदा होता है, वही गंगा है। ऐसे ही भ्रम पैदा होता है कि वही मैं हूं जो कल था। वही आप नहीं हैं, वही मैं नहीं हूं, सब बह जाता है। लेकिन इस बहे हुए को हम पकड़े हैं कल्पना में, स्मृति में और अपने को समझे हैं कि मैं वही हूं।
इससे बहुत भ्रम पैदा होता है। बंधन और जाल पैदा होते हैं और व्यक्तित्व की तरलता ठोस, पथरीली हो जाती है, सालिड हो जाती है, पत्थर की तरह बोझिल हो जाती है।
कौन बांधे है, संसार? कौन बांधे है, पदार्थ? नहीं, हमारा ममत्व, हमारा मैं का भाव, हमने अपने को जो समझ रखा है। और क्या समझ रखा है? बहाव को समझ रखा है कि मैं हूं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि शरीर रोज बदल रहा है। कुछ मर रहा है, कुछ नया आ रहा है। आपके पास शरीर वही नहीं है घड़ी भर बाद। कुछ मर कर शरीर से बाहर फिंक रहा है, कुछ नया जीवित रोज शरीर को मिल रहा है। अभी एक क्षण पहले आपने जो श्वास ली थी बाहर हो गई है, अब वह आपके पास नहीं है। दूसरी श्वास आ गई है, और आप जान भी नहीं पाएंगे कि वह बाहर हो जाएगी। इतनी ही तेजी से सब बदल रहा है।
वैज्ञानिक कहते हैं, सात साल में पूरा शरीर बदल जाता है। एक कण भी वही नहीं बचता जो पहले था। और मन तो और तेजी से बदल रहा है। एक क्षण मन वही नहीं है जो था। सुबह क्रोध में थे, अब शांति में हो सकते हैं। अभी गाली दे रहे थे, अभी प्रार्थना कर रहे हो सकते हैं। अभी मन में आग लगी थी, अभी वर्षा हो रही हो सकती है। अभी कांटे ही कांटे थे, अभी फूल खिल गए हैं। मन प्रतिपल बदल रहा है, भाग रहा है, सब बदल रहा है।
शरीर और मन के इस बदलती हुई दुनिया को हमने समझ रखा है--मैं हूं, तो हम बड़े असत्य में उलझ गए हैं। और इस असत्य में उलझे हुए ज्ञान की, प्रकाश की यात्रा कैसे हो सकती है?
असत्य ही अंधकार है, असत्य ही अज्ञान है, और उसे हम पकड़े हुए हैं जोर से। छोड़ने का हमारा जरा भी हमारा मन नहीं है। मरते दम तक नहीं छोड़ना चाहते

हैं। आखिरी क्षण तक हम अपने को पकड़े हुए हैं। जो छूट ही रहा है, जा ही रहा है, उसको पकड़े हुए हैं। मरने की यही तो पीड़ा है, बूढ़े होने की यही तो पीड़ा है, बदलने की यही तो पीड़ा है कि जिसे पकड़ते हैं वही छूटता चला जाता है। लेकिन पकड़े हैं, पकड़ना नहीं छोड़ते हैं। जिसे पकड़ते हैं वह छूट जाता है, लेकिन पकड़ना नहीं छोड़ते हैं, फिर पकड़ लेते हैं, फिर पकड़ लेते हैं। ऐसा क्लिंगिंग माइंड, यह पकड़ने वाला जो चित्त है, यह चित्त भीतर की यात्रा पर सबसे बड़ा अवरोध है, सबसे बड़ा हिंडरेंस है।
नहीं, संसार नहीं रोके हुए है, हम रुके हुए हैं। और यह स्मरण आ जाए, और
यह ख्याल आ जाए, तो इस बंधन को तोड़ देना कठिन है? यह जरा भी कठिन नहीं। क्योंकि जो बंधन मैंने बनाए हों उन्हें तोड़ना कठिन कैसे हो सकता है?
एक छोटी सी कहानी और इस सुबह की चर्चा को मैं पूरा करूंगा।
मैंने सुना है, रोम पर एक बार हमला हुआ और वहां के सौ नागरिक पकड़ लिए गए। उन सबकी हत्या की जाने वाली है। वे जंगल में फेंक दिए जाएंगे। उसमें एक लोहार भी है। कुशल लोहार, जिसने जीवन भर लोहे के सामान बनाए हैं, वह भी पकड़ लिया गया। निन्यानबे लोग रो रहे हैं, वह लोहार हंस रहा है। उसके घर के लोगों ने कहाः तुम हंसते हो? हमारी, हमारी जिंदगी मिट गई तुम्हारे साथ। हम मरे! तुम खो रहे हो, हम कैसे बच सकेंगे तुम्हारे बिना? और तुम हंस रहे हो? उसने कहाः घबड़ाओ मत, तुम जानती हो, तुम जानते हो, पत्नी से कहा, बेटों
से कहा कि मैं लोहार हूं, जिंदगी भर मैंने लोहे के सामान बनाए, मेरी सारे जगत में यही ख्याति थी कि मुझसे बड़ा कोई कारीगर नहीं। मैं इन जंजीरों को तोड़ कर सांझ तक वापस आ जाऊंगा। घबड़ाओ मत। सूरज के ढलते मेरी प्रतीक्षा करना।
फिर वे सौ ही बड़े नागरिक दुश्मनों ने पकड़ कर जंजीरें पहना कर, ऐसी जंजीरें जो कभी नहीं खोली जातीं, जिनमें कोई ताला नहीं होता, जो मर जाएं, तो हाथ काट कर ही खुलती हैं--पैरों में, हाथों में जंजीरें डाल दीं। उन सौ ही आदमियों को जंगल में फेंक दिया। वे निन्यानबे आदमी तो रोते हुए जंगल में फेंके गए गड्ढों में, जंगली जानवर उन्हें खा जाएंगे। वह सौवां आदमी हंसता हुआ गड्ढे में गया।
गड्ढे में गिरते ही जो पहला काम उसने किया, जो कोई भी समझदार करता, हालांकि हम कभी नहीं करते, उसने जो पहला काम किया, जंजीरें गौर से देखीं कि जंजीरें क्या हैं? बहुत कम लोग हैं जो जंजीरें गौर से देखें कि जंजीरें क्या हैं?
रोना-चिल्लाना एक तरफ, पहले जंजीरें देखीं कि जंजीरें क्या हैं? जंजीरें गौर से देखीं, उसे पता है कि कितनी ही मजबूत जंजीर बनाई जाए, एक जगह कमजोर होती है जहां से जोड़ी गई होती है। कितनी ही मजबूत जंजीर भी एक जगह तो कमजोर होगी जहां से जोड़ी जाएगी। जोड़ सदा कमजोर होता है। जोड़ से ही चीजें टूटती हैं, ध्यान रहे, और कहीं से नहीं टूटती हैं। उसने कहाः जोड़ खोज लूं, जोड़ कहां है? जंजीर पर गौर किया, जोड़ तो था। लेकिन छाती पीट कर वह लोहार रोने लगा। अब तक हंसता था, अब रोने लगा।
एक फकीर ने गांव में देखा था इन सौ आदमियों को जाते हुए। फकीर ने देखा, निन्यानबे आदमी रो रहे हैं एक आदमी हंस रहा है। मालूम होता है इस आदमी को जिंदगी का राज मिल गया है। वह फकीर इसी खोज में था कि जिंदगी का राज मिल जाए। और जिंदगी का राज जिसको मिल जाता है वह मौत के सामने हंस सकता है। यह आदमी मरने को है, हंस रहा है?
फकीर पीछे हो लिया था कि जब दुश्मन छोड़ कर चले जाएंगे, इससे पूछू लूंगा जिंदगी का राज क्या है? मुझे भी बता दे, इसी की खोज में हूं, मौत के सामने मैं भी खड़े होकर हंस सकूं। यह मुझे भी बता दे। वह पीछे-पीछे छिपे चला आया था, वृक्ष के पीछे छिप कर खड़ा था।
जब लोहार को रोते देखा, तो वह हैरान हो गया। उसने कहाः मेरे मित्र, मुझे व्यर्थ तुमने भटकाया। इतनी देर हंसते रहे, अब रोते हो? और मैं यह पूछने आया था कि मौत के सामने हंसने की कला क्या है?
उस लोहार ने कहाः इससे मैं नहीं हंस रहा था। मुझे मौत-जिंदगी का कुछ पता नहीं, मैं तो सिर्फ लोहार हूं, बेड़ियां, कड़ियां बनाना जानता हूं। सोचा

था, तोड़ दूंगा, लेकिन बहुत मुश्किल है। उसने कहाः क्यों? उसने कहाः बेड़ी पर मेरे हस्ताक्षर हैं, मेरी आदत थी जो भी मैं बनाता था उस पर हस्ताक्षर कर देता था। ये मेरी ही बनाई हुई जंजीरें हैं, इसलिए रो रहा हूं। यह कभी सोचा भी नहीं था कि जंजीरें ढाल रहा हूं वे मेरे ही ऊपर पड़ जाएंगी, नहीं तो कभी जंजीरें नहीं ढालता। आज रो रहा हूं, अपनी ही बनाई हुई जंजीर अपनी मौत बनी जाती है।
उस फकीर ने कहाः पागल, यह रोने की नहीं, हंसने की बात है। अगर तेरी ही बनाई जंजीरें हैं, तो तू तोड़ सकता है।
उस लोहार ने कहाः वही सोच कर हंसता रहा था कि तोड़ सकूंगा, लेकिन मुझे कमजोर चीज बनाने की आदत नहीं है। टूटना बहुत मुश्किल है। यही तो मेरी प्रसिद्धि थी कि मैं कमजोर चीजें नहीं बनाता हूं। बड़ी मजबूत जंजीरें हैं, टूटना बहुत मुश्किल है।
उस फकीर ने कहाः तू बिल्कुल पागल है। मजबूत कितनी ही हो जंजीरें, बनाने वाले से ज्यादा मजबूत नहीं हो सकतीं। बनाने वाले से बनाई गई चीज कैसे मजबूत हो सकती है? कोई चित्र किसी चित्रकार से बड़ा हो सकता है? असंभव। कितना ही बड़े से बड़ा चित्र चित्रकार से बड़ा नहीं हो सकता। और कितना ही बड़ा गीत गीतकार से बड़ा नहीं हो सकता। और कितना ही अदभुत संगीत संगीतज्ञ से बड़ा नहीं हो सकता। क्योंकि जो जिससे पैदा होता है उससे छोटा ही रह जाता है।
क्रिएटर से क्रिएशन बड़ा नहीं हो सकता। परमात्मा से दुनिया बड़ी नहीं होगी। कोई उपाय नहीं है। बनाने वाला सदा बड़ा रह जाता है। हम कितनी ही बड़ी मशीनें बना लें, कोई मशीन आदमी से बड़ी कभी नहीं हो सकती। वह बनाने वाला सदा पीछे बड़ा रह जाता है।
उस फकीर ने कहाः तू घबड़ा मत। अच्छा मैं जाता हूं। मुझसे तेरा कोई मतलब नहीं। मैं समझा था, तूने जिंदगी का राज पा लिया है, इसलिए आ गया। लेकिन इतना कहे जाता हूं कि घबड़ा मत। तू अगर जंजीरें बनाता रहा है, तो कोई जंजीर तुझसे बड़ी नहीं हो सकती। तू तोड़ सकता है।
और मैंने सुना है, सांझ होते वह लोहार अपने घर वापस पहुंच गया। उसने जंजीरें तोड़ ली होंगी।
लेकिन हममें से कितने लोग सांझ होते घर वापस पहुंचेंगे, यह कहना मुश्किल है। जंजीरें हमारी ही बनाई हुई हैं। जंजीरें हमसे कमजोर हैं। जंजीरों में कमजोर कड़ियां हैं, क्योंकि जहां से हमने जोड़ा है वहां वे कितनी ही मजबूत हों, तो भी मजबूत नहीं हो सकती हैं।
हम तोड़ कर घर वापस पहुंच सकते हैं। सांझ होते घर पहुंच जाएं, अच्छा है। उस घर को ही मैं प्रकाश कह रहा हूं। वह भीतर का जो घर है, उसको ही प्रकाश कह रहा हूं। और हमारी जो भटकन है चारों तरफ, उसी को मैं अंधकार कह रहा हूं। पहुंच सकते हैं घर आप भी। उधर घर में बहुत प्रतीक्षा हो रही है कि आओ। हम बाहर भटके चले जा रहे हैं।
एक तो हम जंजीरें कभी देखते नहीं कि किसकी बनाई हुई हैं। और अगर देख
भी लेते हैं, तो रोते-चिल्लाते हैं और दूसरे को दोष देते हैं कि तुमने जंजीरें पहना दीं। ऐसे जंजीरें नहीं टूटतीं। किसी ने पहनाई हों, किसी की बनाई हों, जंजीरें तोड़नी पड़ेंगी। लेकिन यहां तो मजा यह है कि निश्चित ही सब जंजीरें हमारी बनाई हुई हैं, और जंजीरें हम तोड़ सकते हैं, और सांझ होते घर पहुंच सकते हैं।
अंतिम सूत्र के संबंध में कल सुबह बात करूंगा। सांझ आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा। जो भी प्रश्न हों वह लिख कर दे दें।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
छठवां प्रवचन

फूल खिलने का क्षण

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछली चर्चाओं के संबंध में एक मित्र ने बहुत अजीब प्रश्न पूछा है। अजीब इसलिए कि पहली अजीब बात तो यह है कि वह प्रश्न ही नहीं है। उन्होंने पूछा है, प्रश्न भी पूछा है, साथ लिखा है, अगर आपको पता न हो, तो मैं इसका उत्तर आपको आकर दे सकता हूं।

उन्हें उत्तर पहले से पता है तो व्यर्थ पूछने की परेशानी नहीं करनी चाहिए। और अक्सर ऐसा होता है कि हम पूछते हैं लेकिन उत्तर हमें पता है तो हमारा पूछना झूठा हो जाता है, ऑथेंटिक नहीं रह जाता। अगर पता ही है, तो बात खत्म हो गई। अगर पता नहीं है, तो ही पूछने में रस है, अर्थ है, खोज का आनंद है। लेकिन हम सभी को...
(बीच में प्रश्नकर्ता द्वारा कुछ हस्तक्षेप)
----मैं उत्तर दे रहा हूं, पूरा कर लेने दें। बड़ी कृपा की कि आप पता भी
चल गए कि कौन हैं। उत्तर दे रहा हूं। उत्तर मैं देता हूं।
मैंने सोचा था, नाम उनका न लूंगा कि वे पता न चल जाएं, लेकिन वे मानते नहीं, ठीक है।
मुझे उत्तर तो दे लेने दें?
पहली तो बात यह है कि अक्सर हम पूछने के पहले ही हमारा उत्तर तैयार रखते हैं। जिस आदमी का उत्तर तैयार है, वह आदमी सुनने में भी असमर्थ होता है। सुनने के लिए जो तैयारी चाहिए, वह भी उसके भीतर नहीं होती, उसके भीतर अपना उत्तर ही घूमता रहता है। वह सुनने को तो, सुनने के लिए मुक्त और खुला उसका मन भी नहीं होता।
दूसरी बात है, उन्होंने बड़े मजे की बात लिखी है, उन्होंने लिखी है, कि
वे रियलाइज्ड सोल हैं, खुद आत्मा को जान चुके हैं, ज्ञान उन्हें उपलब्ध हो चुका है, प्रकाश उन्होंने पा लिया है। और यह भी लिखा है कि मनुष्य-जाति में अब तक कोई आदमी जिस गहराई पर नहीं पहुंचा उस पर वे पहुंच कर वापस आ गए हैं। तब मुझे बड़ी हैरानी हुई कि मुझ जैसे अज्ञानी को सुनने इतने ज्ञानियों को नहीं आना चाहिए।

(बीच में किसी मित्र का अवरोध।)
सुन तो लें पूरी बात, इतनी जल्दी तो नहीं है। इतनी जल्दी... पूरी बात...
बैठ जाइए। बैठ जाइए।
असल में, न, आप परेशान न हों, आप परेशान न हों। न, न, उनसे कुछ न कहिए, उनको बैठा रहने दीजिए। बीच-बीच में बोले तो हर्जा भी नहीं है, थोड़ा ज्यादा आनंद आएगा। उनको बैठे रहने दीजिए। न, न, कोई हर्ज नहीं है, बीच में थोड़ा बोलेंगे तो...
नहीं, उनमें इतनी उत्सुकता मत लीजिए, आप तो बैठ जाएं। उनमें इतनी उत्सुकता लेने की कोई बात नहीं है। आप लोग बैठ जाएं, उनको, उनको बैठने दें। कुछ कहते हैं तो हर्ज भी नहीं है, बैठें, आप उनकी फिकर न करें थोड़ी भी।

जिस मनुष्य को भी, जिस व्यक्ति को भी ऐसा ख्याल पैदा हो जाए कि उसे ज्ञान उपलब्ध हो गया है, उसे अब किसी और ज्ञान की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिसे भी यह ख्याल हो जाए, उसने परमात्मा को पा लिया है, अब पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता है। उसकी खोज खत्म हो गई है। एक अर्थ में वह आदमी, वह व्यक्ति अब और किसी अन्वेषण पर जाने में असमर्थ हो गया, अंतिम खोज पूरी हो गई। बहुत लोगों को यह ख्याल पैदा हो सकता है। मैं नहीं कहता उनका ख्याल गलत है। लेकिन एक बात पक्की है, चाहे सही हो चाहे गलत, जिस आदमी को यह ख्याल हो गया है कि मैंने सब जान लिया है, अब जानने का उसमें और उपाय नहीं बचता

है। उसकी जानने की कोशिश अब व्यर्थ परेशानी पैदा करती है और कुछ भी पैदा नहीं करती।
एक व्यक्ति ही नहीं पूरा समाज भी इस भ्रम में पड़ सकता है कि हमने जान लिया। हमारा देश ऐसे ही भ्रम में बहुत दिन तक रहा है कि हमने सब जान लिया है। और उस सब जानने के भ्रम के कारण तीन हजार वर्षों से भारत में ज्ञान की कोई नई किरण नहीं उतरी, कोई नया द्वार नहीं खुला, हमने कोई नई खोज नहीं की। क्योंकि जब पूरे समाज को यह ख्याल पैदा हो गया कि सब जान लिया गया, तो अब और जानने को क्या शेष रह जाता है?
आइंस्टीन से कोई पूछ रहा था मरने के आठ ही दिन पहले कि आप एक वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति में और एक अवैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति में क्या फर्क करते हैं? आइंस्टीन ने जो कहा, वह सुनने-समझने जैसा है। आइंस्टीन ने कहा कि अगर एक वैज्ञानिक व्यक्ति से आप सौ प्रश्न पूछें, तो निन्यानबे प्रश्नों के संबंध में तो वह कह देगा कि मुझे पता नहीं है, सौवें प्रश्न के संबंध में वह कहेगा, मुझे पता है लेकिन बहुत थोड़ा, क्योंकि कल और पता हो जाएगा, परसों और पता हो जाएगा, ज्ञान रोज विकासमान है, इसलिए जो मैं कहता हूं इस शर्त के साथ कि अभी तक जो जाना गया है वह इतना है। ज्ञान पूरा नहीं है, पूर्ण नहीं है। लेकिन एक अवैज्ञानिक आदमी से आइंस्टीन ने कहाः अगर आप सौ प्रश्न पूछें, तो वह सौ की जगह एक सौ एक के उत्तर देगा और हर उत्तर पर दावा करेगा कि यह उत्तर पूर्ण है और आखिरी है, इसके आगे उत्तर नहीं हो सकता।
मनुष्य को अज्ञान में रखने का बड़े से बड़ा कारण जो है वह ज्ञान की सर्वज्ञता, पूर्णता का भ्रम है। जिस समाज को, जिस व्यक्ति को, जिस राष्ट्र को यह मस्तिष्क में आप्शेसन, यह पागलपन पकड़ जाए कि सब जान लिया गया है। उस आदमी के ज्ञान की सब यात्राएं समाप्त। उसकी नौका किनारे से बंध गई, अब यात्रा आगे नहीं हो सकेगी। मैं नहीं कहता वह गलत है, लेकिन इतना मैं कहता हूं, अब उसकी जीवन में कोई अर्थवत्ता और जरूरत नहीं, वह व्यर्थ हो गया। इसीलिए तो पुराने लोग कहते हैं, जिसका ज्ञान पूर्ण हो जाता है उसे फिर पृथ्वी पर भेजने की कोई जरूरत नहीं पड़ती, उसे मोक्ष में भेज देते हैं। फिर यहां कोई जरूरत नहीं है।
यहां जीवन अधूरा है प्रतिदिन और सब ज्ञान अधूरा रहेगा सदा। कितना ही
हम जानें फिर भी जानने को अनंत शेष रह जाता है। यही तो परमात्मा की अनंतता, इनफिनिटी है। हम एक तरफ कहते हैं, परमात्मा अनंत है और दूसरी तरफ एक आदमी कहता है, मैंने परमात्मा को जान लिया है। इन दोनों में क्या अर्थ हुआ? अगर परमात्मा अनंत है तो मैं कितना ही जान लूं तो भी अनंत जानने को सदा शेष रह जाएगा, और मैं कभी दावा नहीं कर सकता कि मैंने जान लिया है। परमात्मा के अनंत होने का एक ही अर्थ हो सकता है कि हम सीमित, कितना जान सकेंगे? हम एक किनारे से थोड़ा सा स्वाद ले लें, काफी है। लेकिन जो स्वाद ले लेगा अनंत का, जो भी थोड़ा सा स्वाद ले लेगा, जो थोड़ा सा भी आंख खोल सकेगा उस प्रकाश की तरफ, वह यह भूल ही जाएगा कि मैं और जानता हूं? क्योंकि उस प्रकाश में मैं तो खो जाता है ऐसे ही जैसे सुबह सूरज निकलता है पत्तों पर पड़े ओस के कण सूरज की रोशनी में विलीन हो जाते हैं। ऐसे ही हम हमारे मैं उस प्रकाश की रोशनी में विलीन हो जाते हैं।
इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि जो कहता हो, मैं जानता हूं, जान लेना कि
वह कम से कम निश्चित है कि नहीं जानता है। जो कहता हो कि मैं जानता हूं, निर्णय दे दिया उसने कि वह नहीं जानता है। क्योंकि यह दावा बहुत गहरे में सूक्ष्मतम अहंकार है। कोई आदमी दावा कर सकता है मैं धनी हूं, कोई आदमी दावा कर सकता है मैं पद वाला हूं, कोई आदमी दावा कर सकता है मैं ज्ञानी हूं, कोई आदमी दावा कर सकता है मैं त्यागी हूं। लेकिन सब दावे के पीछे एक ही खड़ा हुआ है मैं। और वह मैं ज्ञान की, सत्य की, प्रकाश की यात्रा में सबसे बड़ी बाधा है।
मैं कोई पूर्णज्ञानी नहीं हूं। इसलिए किसी से कोई झगड़ा नहीं है। कोई झगड़ा नहीं है। और मुझे अपने को अज्ञानी मान लेने में जितना सुख मालूम पड़ता है उतना किसी और चीज में मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि अज्ञानी हूं तो खोज

सकता हूं। तो परमात्मा और शेष रह गया है उसे और जाना जा सकता है। और कभी नहीं चाहता कि यह खोज बंद हो जाए। उसे हम जानते ही चलें, जानते ही चलें, हम उसे कितना ही जान लें फिर भी वह शेष रह जाए। क्योंकि जिस दिन ऐसा हो जाए कि परमात्मा भी पूरा जान लिया गया उस दिन आत्महत्या के सिवाय और क्या उपाय रह जाएगा? फिर करने को क्या बचता है? सब खत्म।
बट्रेंड रसल ने कहीं एक मजाक लिखी है। लिखा है कि मैं स्वर्ग या मोक्ष जाने से बहुत डरता हूं। किसी ने पूछाः क्यों? बट्रेंड रसल ने कहा कि इसलिए डरता हूं, एक तो मोक्ष में कोई प्रश्न नहीं होंगे, क्योंकि वहां सभी ज्ञानी होंगे, पूर्णज्ञानी वहां रहते हैं, कोई बातचीत नहीं हो सकेगी, क्योंकि किससे कौन बात करेगा? और बड़े मजे की बात है वहां खोजने को कुछ न होगा, करने को कुछ न होगा, जीने को कुछ न होगा, बस बैठे रहना, बैठे रहना, होना और होना। बहुत बोर्डम पैदा हो जाएगी। बट्रेंड रसल कहता है, मोक्ष जाने से बहुत डर लगता है और वहां से लौटने का भी उपाय नहीं है। एंट्रेंस है, एक्झिट नहीं है मोक्ष से। एक दफा चले गए, वापस लौटने का उपाय नहीं है। कितना ही तड़पो, लौटने का रास्ता ही नहीं है। मोक्ष से लौटने का सवाल कहां है? बट्रेंड रसल कहता है, अज्ञानी भले पूर्ण ज्ञान से क्षमा चाहते हैं। रवींद्रनाथ मर रहे थे। जिस दिन मृत्यु हुई है, सुबह ही एक आदमी ने आकर रवींद्रनाथ को कहा, बूढ़ा आदमी है, रवींद्रनाथ को प्रेम करता है। कहा कि अब प्रभु से प्रार्थना करो कि अब दुबारा जगत में न भेजे, मुक्ति दे दे, मोक्ष दे दे, आवागमन से छुटकारा दे दे। रवींद्रनाथ आंख बंद किए पड़े थे, आंख खोली कहा, क्या कहते हैं? मैं और मुक्ति मांगूं! नहीं, मैं तो मांगूंगा निरंतर मुझे वापस भेज देना, अभी बहुत जानने को शेष रह गया, अभी बहुत जीने को शेष रह गया। और मैं मुक्ति मांगूं तो परमात्मा पर बड़ा एतराज हो जाएगा। उसने भेजा और मैं मुक्त होना चाहता हूं! मैं मुक्ति नहीं मांगूंगा क्योंकि उसके बंधन भी बड़े आनंदपूर्ण थे। और इस जगत की यात्रा भी बड़ी रस से भरी थी। मैं चाहूंगा कि अगर मुझे योग्य पाया हो तो बार-बार भेज देना ताकि यह खोज, यह जीना, ये जीवन के अनंत-अनंत दिशाओं में यात्रा जारी रहे। मैं, मैं मुक्ति नहीं मांग सकता हूं।
लेकिन कुछ लोग, कुछ समाज, कुछ परंपराएं मृत हो गई हैं। यही धारणा पकड़
कर सब जान लिया, सब पा लिया, सब हो गया, फिर? फिर सिवाय मृत्यु के, महामृत्यु के, महाअंत के और क्या?

उन मित्र ने जो प्रश्न पूछा है वह भी बहुत बढ़िया है, उस पर भी थोड़ी बात
कर लेनी चाहिए।
उन्होंने पूछा है कि क्या आप भारतीय संस्कृति को गलत मानते हैं?

भारतीय और अभारतीय का सवाल नहीं है। आज तक मनुष्य के जीवन में जिस संस्कृति से हमने व्यवस्था दी है अगर वह सही होती तो जीवन के सारे दुख, सारी पीड़ाएं, सारे तनाव, सारी चिंताएं विदा होनी चाहिए थीं। पांच हजार वर्ष के प्रयोग के बाद चिंताएं निरंतर बढ़ती चली गई हैं, दुख गहरा होता चला गया है। आदमी ज्यादा पीड़ित, ज्यादा परेशान होता चला गया है।
पांच हजार वर्ष के...

(पुनः हस्तक्षेप।)
बैठें, बैठें, उन्हें जाने दें। कोई बात नहीं। न, उनको जाने दें जाना
हो तो। दरवाजा खोल दें। वे परेशान हो रहे हैं, उनको जाने दें। न, बैठिए, बैठिए।

मनुष्य की जो भी समाज-व्यवस्था, जो भी सभ्यता, जो भी संस्कृति हमने निर्मित की है, हम उसी के फल हैं, हमने जो धारणाएं निर्मित की हैं, जो संस्कार निर्मित किए हैं, उनका हम परिणाम हैं। यह सवाल भारतीय-अभारतीय का बिल्कुल नहीं है। यह सवाल है इस बात का कि पुराना ठीक है या हम नये की खोज करें? अगर पुराना ठीक है तो फिर हम पुराने ढांचे में ही जीए चले जाएं। और

अगर पुराना ठीक साबित न हुआ हो, तो हम नये संस्कार, नई संस्कृतियों, नई शिक्षाओं, नई दिशाओं की खोज करें, यह सवाल है। यह भारतीय-अभारतीय का सवाल ही नहीं है।
आज तक पीछे मनुष्य ने एक ढंग से सोचा था। उस ढंग से सोच कर हमने प्रयोग
भी किया है। आदमी ने जीने की कोशिश भी की है, परिणाम क्या है? परिणाम अत्यंत ट्रेजिक, अत्यंत दुखद आया है। जीवन हमारे सामने खड़ा है, यह परिणाम है। क्या इस जिंदगी को ही आगे दोहराए चले जाना है या फिर बदलाहट चाहिए? जैसे मैं उदाहरण के लिए दो-चार बातें कहूं। जैसे हमने पुराने समस्त इतिहास में सब मनुष्यों को राष्ट्रीयता सिखाई--भारतीयता, चीनी होना, जापानी होना, जर्मनी, इंग्लैंड, अमरीकी, रूसी, पुरानी पूरी संस्कृतियां देशी-राष्ट्रीय एक भूगोल की सीमा को मान कर जीती थीं। उनका आग्रह था हम विशिष्ट हैं दूसरों से। भारतीय होना विशिष्ट होना है, चीनी होना विशिष्ट होना है, जापानी होना विशिष्ट होना है, सारी संस्कृतियां राष्ट्रीय थीं। राष्ट्रीय संस्कृतियों ने जितने युद्ध और हिंसा और परेशानी दी है, अब आगे भी राष्ट्रों को बनाए रखना है या विदा कर देना है? क्या मनुष्यता को एक होना चाहिए, पूरी पृथ्वी को या खंड-खंड में टूट कर ही हमें जीए चले जाना है?
पुरानी सब संस्कृतियां राष्ट्रीय थीं, भविष्य की संस्कृति अंतर्राष्ट्रीय ही हो सकती है। अगर हमने सोच-विचार कर काम किया तो वह भारतीय नहीं होगी, चीनी नहीं होगी, जापानी नहीं होगी, मानवीय होगी, ह्यूमन होगी, जागतिक होगी, युनिवर्सल होगी। खंड-खंड में तोड़ कर हमने कितना उपद्रव पैदा किया है, आज सोचना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है।
अगर हम तीन हजार वर्ष का इतिहास उठाएं, तो आदमी रोज लड़ता रहा है-- राष्ट्र के नाम पर, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, आदमी लड़ता ही रहा है। अगर पूरे इतिहास की किताब पढ़ कर कोई कहे, तो कहना पड़ेगा, मनुष्य की परिभाषा करने में अरस्तू कहता हैः मैन इ.ज ए रेशनल एनिमल, आदमी बुद्धिशाली प्राणी है। इतिहास देख कर कहना पड़ेगा, नहीं, मैन इ.ज ए वॉरिंग एनिमल, आदमी युद्ध करने वाला प्राणी है।
तीन हजार साल सिवाय युद्ध के हमने कुछ भी नहीं किया। और सारी शक्ति युद्ध के अस्त्र-शस्त्र खोजने में लगा दी। आज जमीन पर इतनी गरीबी है, इतना दुख है, लेकिन सारी जमीन की साठ प्रतिशत संपत्ति और नये बम ईजाद करने में संलग्न है। राष्ट्रों के कारण। अगर राष्ट्र न हों तो यह सारी संपत्ति मनुष्य को सुखी करने में संलग्न हो सकती है। नहीं, पुरानी खंड-खंड पृथ्वी आगे अखंड होनी चाहिए।
रूसी पहला अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन आकाश में उठा। पहला आदमी जिसने पृथ्वी के वायुमंडल को छोड़ा। लौट कर उसके मित्रों ने पूछाः ऊपर जाकर तुम्हें कैसा भाव उठा, पहला क्या भाव उठा? रूस की याद आई?
यूरी गागरिन ने कहाः क्षमा करना, रूस की याद नहीं आई, याद आई मेरी पृथ्वी की, माई अर्थ, माई रसा नहीं, मेरा रूस नहीं, क्योंकि उस दूरी से देखने पर सारी पृथ्वी एक मालूम पड़ी। पहली दफा पता चला कि पृथ्वी एक है, खंड सब आदमी के बनाए हुए हैं। पृथ्वी बिल्कुल एक है, कोई खंड नहीं हैं। मेरी पृथ्वी ऐसा भाव उठा उसमें अमरीका भी था, रूस भी था, चीन भी था, सब थे, और पृथ्वी अखंड थी।
मनुष्य जितना ऊंचा उठेगा, चाहे आकाश में और चाहे अंतरात्मा में, उतने खंड गिरते चले जाएंगे। जितना ऊंचा उठेगा आदमी, उतने खंडों के ऊपर उठेगा। जितना नीचे गिरेगा आदमी, उतना खंडों में गिरेगा।
भारतीय संस्कृति भी बड़ा खंड है। अगर भारत में गांव-गांव घूमें तो पता चलेगा, महाराष्ट्र अलग संस्कृति है, गुजरात अलग संस्कृति है, तमिल अलग, आंध्र अलग, बंगाली अलग। और गुजरात में भीतर प्रवेश कर जाएं, तो पता चलेगा कि सौराष्ट्र अलग, गुजरात अलग। और भीतर घुसते चले जाएं, तो पता चलेगा कि सबके अपने-अपने बहुत ही छोटे-छोटे आंगन हैं। इन छोटे-छोटे आंगनों को पृथ्वी में बांट दें अगर हम, तो सिवाय कलह के और युद्ध के क्या पैदा हो सकता है?

इसलिए मैं कहता हूं, अब तक की संस्कृतियां भारतीय थीं, जापानी थीं; अगर अच्छी दुनिया बनानी है, तो आने वाली संस्कृति भारतीय नहीं होगी, जापानी नहीं होगी; पूर्वीय नहीं होगी, पश्चिमी नहीं होगी, संस्कृति होगी, मनुष्य की होगी, पूरी पृथ्वी की होगी, सार्वलौकिक होगी, सार्वजनीन होगी, हम सबकी होगी, एक पृथ्वी, वन वर्ल्ड, एक जगत की होगी।
इसलिए भारतीय संस्कृति और गैर-भारतीय के भेद में और विचार में पड़ने
का कोई प्रयोजन नहीं है। यह भी ध्यान रहे, अब तक की सारी संस्कृतियां मनुष्य के संबंध में बहुत गहरे अज्ञान पर खड़ी थीं। असल में मनुष्य के संबंध में हमारा ज्ञान ही बहुत कम है। हम पदार्थ के संबंध में जितना जानते हैं उतना मनुष्य के संबंध में नहीं जानते।
तीन हजार, साढ़े तीन हजार साल पहले मनु ने एक संस्कृति का आधार रखा। साढ़े तीन हजार वर्ष पहले आदमी के संबंध में ज्ञान इतना कम था जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। उस ज्ञान के आधार पर मनु ने कुछ सूत्र बनाए, उस समय के ज्ञान के लिए शायद वे श्रेष्ठतम सूत्र रहे होंगे। साढ़े तीन हजार वर्षों में आदमी के ज्ञान ने अदभुत गति की है। इतना विकास हुआ है कि अगर हम आदमी के पूरे ज्ञान का प्रयोग करें तो एक बिल्कुल ही और तरह की संस्कृति निर्मित होगी जो कि अतीत में कभी निर्मित नहीं हुई थी।
उदाहरण के लिए एक आदमी सिगरेट पी रहा है, तो पुरानी संस्कृति कहती है, सिगरेट पीना पाप है, बंद करो, सिगरेट मत पीयो। पांच हजार साल से हम समझा रहे हैं, सिगरेट मत पीयो। कोई फर्क नहीं पड़ता सिगरेट पीने वाला पीए ही चला जाता है। रोज सिगरेट पीने वाला बढ़ता चला जाता है। अरबों-खरबों रुपयों की आदमी सिगरेट पीता है, तंबाकू पीता है, चिलम पीता है। हजारों उपाय हैं, कितना हमने चिल्लाया, सिगरेट मत पीयो, कितना हमने समझाया है, नुकसान होता है, लेकिन आदमी पीए चला जाता है। क्या हम चिल्लाते रहें आगे भी? पांच हजार साल काफी नहीं हैं चिल्लाने के लिए?
नहीं, नया ज्ञान मनुष्य के बाबत यह कहता है कि जो आदमी तंबाखू खाता है
या सिगरेट पीता है उसके शरीर में निकोटिन की कमी है, और जब तक निकोटिन की कमी है कोई शिक्षा काम नहीं करेगी। निकोटिन पूरा हो, आदमी सिगरेट, धूम्रपान से मुक्त हो सकता है।
मैक्सिको में एक बड़ी लेबोरेटरी पिछले पंद्रह वर्षों से काम करती रही
है और नतीजे बहुत अदभुत हैं। एक बूंद निकोटिन की आपके शरीर में डाल दी जाए फिर आप सिगरेट पीएं तो बिल्कुल कचरा मालूम पड़ेगी। वह सिगरेट से जो निकोटिन जा रहा है वही आपको जरूरी मालूम पड़ रहा है, उसी के लिए आप सिगरेट पीए चले जा रहे हैं। नया मनुष्य अब इसकी फिकर छोड़ देगा कि समझाओ, सिगरेट मत पीयो। जो बच्चे सिगरेट पीने जाते हैं मां-बाप उनके परीक्षण करवा सकें कि उनको निकोटिन की कमी तो नहीं है? कमी है तो निकोटिन की कमी पूरी कर दो। सिगरेट पीने वाला बच्चा खबर दे रहा है कि शरीर में कहीं कुछ कमी है। और आप हैरान होंगे, अस्सी परसेंट लोगों के शरीर में निकोटिन की कमी है। थोड़े बहुत लोगों के शरीर में नहीं है कमी। वह कुछ प्राकृतिक भूल मालूम पड़ती है। बहुत कम लोगों के शरीर में निकोटिन पूरा है। लेकिन जिसके शरीर में पूरा है वह सिगरेट न पीने से महात्मा हो जाएगा। मामला सिर्फ निकोटिन का है और कुछ भी नहीं है।
मनुष्य के संबंध में हमारा ज्ञान इतना बड़ा है, एक-एक चीज के संबंध में हमारा ज्ञान इतना बड़ा है कि अब हम पुरानी बातों को दोहराए चले जाएं जिनसे कोई फल नहीं निकला, परिणाम नहीं निकला, बहुत गलत बात है। हम हजारों साल से मानते रहे हैं कि एक आदमी इसलिए गरीब है कि उसके भाग्य में गरीब होना लिखा है। अब यह बात नहीं मानी जा सकती, यह बात सरासर झूठ है। किसी के भाग्य में गरीब होना नहीं लिखा है। समाज की व्यवस्था गरीब और अमीर को पैदा करती है। अगर समाज की व्यवस्था बदल जाए तो गरीब-अमीर को मिटाया जा सकता है बिना किसी के भाग्य की रेखा को जरा भी छुए।
बीस करोड़ लोग रूस में एक भाग्य के हो गए? बीस करोड़ लोग वही खोपड़ी है? वही हाथ की रेखाएं हैं? कोई फर्क नहीं पड़ा हाथ की रेखाओं में। हम अभी अपने मुल्क में जानते हैं, सैकड़ों राजा थे मुल्क में, एक व्यवस्था से वे विदा हो

गए। सैकड़ों राजाओं के हाथ की रेखाएं, एकदम से राजा होने की न रह गई हों ऐसा नहीं हो सकता। हिरोशिमा में एटम गिरा एक लाख आदमी मरे, उनके हाथ की रेखाएं देखें, किस-किस की मौत आ गई थी अभी? एक लाख आदमियों की मौत आ गई थी एक साथ, एक घड़ी में? हाथ की रेखाएं झूठी साबित हो गई हैं।
भाग्य की रेखाएं समाज की व्यवस्था की सुरक्षा हैं। भाग्य की कोई रेखा नहीं है इस तरह की किसी को गरीब बनाए, किसी को अमीर बनाए। पुरानी सारी संस्कृति भाग्य पर, कर्म पर और एक-एक आदमी की अपनी जीवन-व्यवस्था पर निर्भर थी। समाज की व्यवस्था का कोई बोध नहीं था, सोशल कंसेप्ट ही नहीं था, कोई समाज की धारणा नहीं थी। क्या हम इसी को दोहराए चले जाएं? एक भिखमंगे को यही कहें, तेरा भाग्य है कि तू भीख मांग रहा है और धनपति को समझाएं कि तुम दो पैसे इसे दान देते चले जाओ, क्योंकि तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें दान देने का अवसर मिला है। यह हम कहते रहे हैं। इससे गरीबी तो नहीं मिटी, इससे गरीबी नहीं मिट सकती है, आगे भी नहीं मिट सकती है। और जिस समाज को, जिस जाति को, जिस देश को यह ख्याल हो जाए भाग्य का, वह देश एकदम शक्तिहीन हो जाता है। भाग्य एकदम इंपोटेंस ला देता है, सब तरफ निर्वीर्य छा जाता है। क्योंकि भाग्य! फिर हम खत्म हो गए।
अगर भाग्य नहीं है और हमें कुछ करना है तो शक्तियां जगती हैं। परमात्मा सबके भीतर है और बड़ी शक्तियां लिए भीतर है। लेकिन भाग्य ने सबके परमात्मा को एकदम शक्तिहीन कर दिया है।
पुरानी सारी संस्कृति भाग्यवादी थी, फैटलिस्ट थी। मनुष्य की भविष्य
की संस्कृति भाग्यवादी नहीं हो सकती है। मनुष्य की भविष्य की संस्कृति पुरषार्थ की होगी। अगर गरीबी है तो मिटाएंगे, अगर बीमारी है तो मिटाएंगे, अगर उम्र कम है तो बढ़ाएंगे। नहीं, अब यह नहीं चलेगा कि एक आदमी मान कर बैठ जाए कि मेरी उम्र सत्तर साल की थी इसलिए सत्तर साल जीया। आदमी की उम्र कितनी भी बढ़ाई जा सकती है। और वैज्ञानिक इस ख्याल में हैं कि कोई भी आदमी कितने ही लंबे समय तक जीवित रखा जा सकता है। और आज नहीं कल पचास वर्षों के भीतर हम वह सूत्र खोज लेंगे कि आदमी को अंतहीन काल तक जीवित रखा जा सके। एक अमरीका के अरबपति ने, मर गया है पांच वर्ष पहले, अपनी लाश को वैज्ञानिकों को सौंप गया है। और कई करोड़ रुपये का फंड सौंप गया है साथ में कि उसकी लाश को फ्रीज करके, ठंडा करके सुरक्षित रखा जाए तब तक जब तक मनुष्य को पुनरुज्जीवित करने और लंबी उम्र देने का नियम न मिल जाए। जिस दिन मिल जाए उस दिन उसकी लाश को पुनरुज्जीवित किया जाए। वह लाश सुरक्षित है, उस पर भारी खर्च हो रहा है। और वैज्ञानिकों को आशा है कि जिस दिन सूत्र मिल जाएगा, उस लाश को पुनरुज्जीवन दिया जा सकेगा।
दुनिया कहां जा रही है? मनुष्य का ज्ञान क्या खोज रहा है? लेकिन नहीं,
वह पुराने ढांचे की बुद्धि वह क्या कहती है? पुरी के शंकाराचार्य ने अभी क्या कहा? उन्होंने कहा कि यह चांद पर आदमी गया ही नहीं। यह आर्मस्ट्रांग वगैरह, यह सब कपोल-कल्पनाएं, यह सब झूठी बकवास है। कोई कहीं गया नहीं, ये सब अफवाहें हैं, एक। और अगर पहुंच भी गए हों तो यह असली चांद नहीं है, असली चांद हमारा शास्त्रों का सूरज के आगे है।
दुनिया हंसेगी हम पर, हमारे बच्चे भी कल हंसेंगे हम पर और सोचेंगे कि किस तरह के लोग हैं? उसका कारण है, पुरानी संस्कृति मानती थी सब पा लिया गया, सब जान लिया गया, आगे अब कुछ जानने को नहीं है। उन्होंने जो सूत्र और नियम बनाए थे उस समय के ज्ञान के लिए पर्याप्त थे, लेकिन ज्ञान रोज आगे बढ़ रहा है। जिन्होंने गणना की है वे लोग कहते हैं कि अठारह सौ वर्षों में जीसस से लेकर जितना ज्ञान विकसित हुआ था उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विकसित हुआ। और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान विकसित हुआ था पिछले पंद्रह वर्षों में हुआ है। और पिछले पंद्रह वर्षों में जितना विकसित हुआ है आने वाले डेढ़ वर्षों में होगा। इतनी तीव्रता से ज्ञान का विस्तार और फैलाव है।
हम जीवन के बाबत इतना जान रहे हैं जिसकी कि कल्पना करनी कभी संभव नहीं थी। इस सबको ध्यान में रख कर नई संस्कृति निर्मित करनी पड़ेगी। नई संस्कृति का पुराने से कोई बहुत संबंध होने वाला नहीं है। नई संस्कृति के

सारे आधार नये होंगे। बच्चों को हम शिक्षा दे रहे हैं, सारी शिक्षा हमारी बहुत पुराने ढांचे की है। जो नवीनतम खोज हो गई हैं उसकी एप्लीकेशन अभी मुश्किल मालूम पड़ रही है।
रूस में वे एक नया प्रयोग कर रहे हैं। वे प्रयोग कर रहे हैं कि बच्चों
को बजाय दिन में शिक्षा देने के रात में स्लीप-टीचिंग देना ज्यादा उचित होगा। दिन भर बच्चे खेलें, क्योंकि बच्चों का खेलना छूट जाता है, जो कि एक बहुत बड़ा नुकसान है। पांच साल के बच्चे को हम स्कूल में भरती कर देते हैं। उसका बचपन बुढ़ापे में बदलना शुरू हो गया। पांच साल के बच्चे को स्कूल में भरती कर दिया, वह कभी खेल नहीं पाया, आनंद से नाच नहीं पाया, तैर नहीं पाया, वृक्षों पर चढ़ नहीं पाया, पहाड़ियों पर दौड़ नहीं पाया, बस्ते का बोझ ही उसका पहाड़ बन गया, स्कूल की सीढ़ियां उतरना-चढ़ना ही उसका सारा खेल हो गया। पांच-छह घंटे पांच साल के बच्चे को हम स्कूल में बिठा देते हैं, उसकी सारी बुद्धि को जड़ता उपलब्ध हो जाती है, सारा मन कुंठित हो जाता है। अभी दौड़ने का वक्त था, छलांग लगाने का। कहीं रुकने का नहीं, चंचल होने का, हमने थिर होकर उसको पांच घंटे बिठा दिया।
स्कूल से छुट्टी होते वक्त देखा है आपने, बच्चे कैसे जोर से चिल्लाते हुए स्कूल से निकलते हैं जैसे किसी कारागृह से बाहर निकले हों। वह कारागृह हो गया है। वह कारागृह है। लेकिन अभी तक कोई उपाय नहीं था, तो हमारी समझ के बाहर था कि हम क्या करें। रूस में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने नया प्रयोग सफल कर लिया है। और वे कहते हैं कि बच्चों को दिन भर खेलने दो, कूदने दो, नाचने दो, जो उन्हें करना है। उनका बचपन मत छीनो। क्योंकि बचपन एक बार छीन लिया गया, फिर दुबारा नहीं मिलेगा। और ध्यान रहे, जिसका बचपन छीन लिया गया, उसकी जवानी भी थोड़ी अधूरी रहेगी, क्योंकि वे जो बचपन के जो आधार उसकी जवानी को ताजगी देते, वे कभी रखे ही नहीं गए, वे छिटक गए, वे बिखर गए।
दिन भर खेलने दो उससे बचपन मत छीनो उसका, रात में उसके सोते में स्लीप-टीचिंग हो सकती है। रात सोते में उसके कान के पास टेप-रिकार्डर लगा कर उसे सारी शिक्षा दी जा सकती है, जो दिनों में, महीनों में नहीं दी जा सकती। उस पर वे सफल होते चले जा रहे हैं। निश्चित ही आने वाले स्कूल रात में लगा करेंगे, बच्चे स्कूल में जाकर सो जाएं। दिन भर घर रहें, रात स्कूल में सो जाएं, सुबह घर लौट आएं। यह संभावनाएं बढ़ती चली जा रही हैं। और भी अदभुत संभावनाएं आदमी खोज रहा है।
एक शिक्षक मरता है, तो अब तक हमारे पास एक ही उपाय है कि अगर मैं कुछ जानता हूं तो मैं आपको बताऊं, तभी आपको पता चलेगा। एक शिक्षक मरेगा, तो उसका जो ज्ञान है उसकी स्मृति है, वह सब उसके साथ नष्ट हो जाएगी। वैज्ञानिक सफल हो गए हैं इस बात में कि मेमोरी को ट्रांसप्लांट किया जा सके। एक आदमी मरे तो उसकी सारी स्मृति को एक नये बच्चे को दिया जा सके, सारी स्मृति, उसका पूरी स्मृति का ढांचा निकाल कर बच्चे को दिया जा सके। यह इतनी बड़ी संभावनाएं हैं कि सारी शिक्षा दूसरी होगी, मनुष्य के संबंध दूसरे होंगे। अब तक हम यही सोचते थे कि हर बच्चे को मां-बाप के पास पाला जाना चाहिए, यह बहुत सोचने-विचारने पर गलत साबित होता चला जा रहा है।
और इतनी हैरानी की बात पता चल रही है कि मां-बाप के पास जब तक बच्चे पलते हैं तब तक अच्छे बच्चे पैदा करना मुश्किल है। उसके कई कारण समझ में आते हैं। हमें ख्याल में भी नहीं हो सकता, एक बच्चा अपनी मां के पास बड़ा होता है, बीस साल तक वह एक ही स्त्री को जानता है अपनी मां को, उसके प्रेम को जानता है, और किसी स्त्री को नहीं जानता, और किसी के प्रेम को नहीं जानता, उसके मन में स्त्री का एक इमेज, एक धारणा बन जाती है। उसके अचेतन मन में स्त्री की एक कल्पना प्रविष्ट हो जाती है जो उसकी मां के आधार पर निर्मित होती है। अगर उसको ऐसी पत्नी मिल जाए जो ठीक उसकी मां जैसी है, तब तो यह दांपत्य सफल होगा, अन्यथा कलह निश्चित है। और हर आदमी अपनी पत्नी से उसी कलह में पड़ा हुआ है। वह मां की खोज कर रहा है जाने-अनजाने, और मां कहां मिलने वाली है? और हर पत्नी अपने पिता की खोज कर रही है पति में, लेकिन पिता कहां मिलने वाला है? वह जो इमेज उनके मन में बैठ गया है पुरुष और

स्त्री का, वही खोज चल रही है। इसलिए सारी दुनिया का दांपत्य एक कलह... ऊपर से हम कुछ कहें, ऊपर से हम मुस्कराएं, ऊपर से हम बताएं कि सब ठीक है, लेकिन जो खोज करते हैं, जो खोज में भीतर जाते हैं, उन्हें पता है कि चेहरे पर मुस्कुराहटें हैं, भीतर बड़ी कलह है।
मैंने सुना है, एक आदमी की औरत मर गई, वह रो रहा है, औरत की अरथी बांधी
गई है और घर के बाहर निकाली जा रही है। बाहर एक पीपल का दरख्त है, अरथी उससे टकरा गई, वह औरत मरी नहीं थी सिर्फ बेहोश थी, टकराने से हिल गई और उसने आवाज दी कि मुझे बांधा हुआ क्यों है? अरथी उतारनी पड़ी। वह औरत तीन साल और जिंदा रही। फिर दुबारा मरी। जब अरथी निकाली जाने लगी, वह आदमी रो रहा है, लेकिन अरथी निकालने वालों से उसने कहा, भाइयो, जरा सम्हाल कर निकालना, फिर दरख्त से न टकरा जाए।
भीतर सब कलह हो गई है। भीतर छुटकारे का भाव है। कितनी बार पत्नी सोचती
है आत्महत्या कर लें, नहीं करती यह दूसरी बात। कुछ तो कर ही लेती हैं। कितनी बार पति सोचता है कहां चला जाऊं, मर जाऊं, कट जाऊं, कहां चला जाऊं। लेकिन पुरानी संस्कृति उस ढांचे को जरा भी नहीं समझ पाती कि बात क्या है? मनस्शास्त्र कहेगा, बात यह है कि वे जिसे खोज रहे हैं वह नहीं मिल सकता तो किसी बच्चे को मां के पास एकदम पालना बहुत खतरनाक है।
इजराइल में, वे उन्होंने कुछ प्रयोग किए हैं किबुत्स नाम की एक व्यवस्था का। बच्चों को स्कूल में पाला जा रहा है, नर्सरीज में पाला जा रहा है। एक नर्स तीन महीने से ज्यादा बच्चे के पास नहीं रहेगी। बीस साल की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते बच्चे के करीब बहुत तरह की स्त्रियां आएंगी। मां भी आएगी कभी, मिलने आएगी, चली जाएगी। कभी बच्चा दिन दो दिन के लिए घर जाएगा, फिर वापस लौट आएगा। एक बच्चा इतनी स्त्रियों के परिचय में आएगा कि उसके पास स्त्री की कोई फिक्सड इमेज, कोई ठहरा हुआ चित्र नहीं होगा। वह किसी भी स्त्री के साथ एडजेस्ट हो सकता है। फिक्सड इमेज हुआ, ठहरा हुआ चित्र हुआ, तो फिर समायोजन बहुत मुश्किल है।
बीस साल के अनुभव से उन्होंने जो नतीजे निकाले हैं वे यह कि इजराइल में पति-पत्नी के बीच जैसा प्रीतिपूर्ण संबंध पैदा हो रहा है वैसा पृथ्वी पर कभी भी कहीं नहीं रहा होगा। मां से छुड़ाना पड़ा बच्चे को। और आमतौर से हम सोचते हैं कि मां के पास बच्चा नहीं पलेगा तो सब गड़बड़ हो जाएगा। और एक मजे की बात हुई कि मां के पास बच्चा पलता है तो मां चौबीस घंटे तो प्रेम नहीं दे सकती। चौबीस घंटे प्रेम देना बड़ा टिडिएस काम है, बड़ा महंगा, मुश्किल काम है। चौबीस घंटे प्रेम देना पड़े, घंटे, आधे घंटे चलता है। प्रेम चौबीस घंटे चलाओ तो भारी, वजनी हो जाता है। मां चौबीस घंटे प्रेम तो नहीं दे सकती। घड़ी आधी घड़ी प्रेम देगी, नाराज भी होगी, मारेगी भी, चिल्लाएगी भी, डांटेगी भी, क्रोधित भी होगी। बच्चे के मन में मां के प्रति प्रेम भी पैदा होगा, घृणा भी पैदा होगी। दोनों एकसाथ होंगे। जब वह नाराज होगी तब बच्चा घृणा करेगा। और जब वह प्रेम करेगी तब बच्चा प्रेम करेगा। एक ही आब्जेक्ट, एक ही व्यक्ति के प्रति प्रेम और घृणा बच्चे का मन बड़ा खतरनाक कांप्लेक्स हो जाएगा। और इसलिए फिर बाद में वह जिसको भी प्रेम करेगा उसको साथ में घृणा भी करेगा। यह बड़ी मुश्किल बात है, हम जिसको प्रेम करते हैं उसको हम कहीं किसी कोने पर घृणा भी करते हैं। इसीलिए प्रेम के घृणा में बदल जाने में क्षण भर की देर नहीं लगती। प्रेम कभी भी घृणा बन सकता है। अगर मेरी आपसे बहुत दोस्ती है, बहुत प्रेम है, एक जरा सी बात और सब घृणा में बदल जाएगा। घृणा पीछे खड़ी है। दूसरा हिस्सा है, इसी सिक्के का दूसरा हिस्सा है।
वे कहते हैं, मां के पास बच्चे को अगर पाला पूरे वक्त, तो घृणा और प्रेम एक ही व्यक्ति से जुड़ जाएंगे। जो जिंदगी भर व्यक्ति के मन को द्वंद में रखेंगे, कांफ्लिक्ट में रखेंगे। उचित है कि बच्चे को मां से दूर पालो। मां कभी मिलने आएगी तो प्रेम करेगी। बच्चा कभी घर जाएगा तो प्रेम करेगी। प्रेम का ही भाव मां के प्रति बनेगा, घृणा का नहीं। और एक व्यक्ति के प्रति अगर प्रेम का बीस साल तक भाव बने तो वह व्यक्ति कांफ्लिक्ट के बाहर होता है, वह एक व्यक्ति को बिना घृणा किए प्रेम करने में सफल हो जाता है। पूरी

संस्कृति के आधार, परिवार के आधार बहुत गलत हैं, बहुत ही गलत हैं। लेकिन जो नया ज्ञान मनुष्य के जीवन के संबंध में रोज नये अध्याय खोल रहा है, हम कुछ अंधे हैं, हम उस सबका कुछ प्रयोग नहीं करना चाहते हैं।
नई कार आती है, हम उसका उपयोग कर लेते हैं। नया मकान बनता है, हम नया मकान बना लेते हैं। आदमी, आदमी के संबंध में जो नई खोज होती है उसका उपयोग नहीं करता। और सब चीजों में नया हो जाता है। फाउंटेनपेन नया आ जाएगा, कार नई आ जाएगी, सड़क नई बन जाएगी, हवाई जहाज नया आ जाएगा। पदार्थ के संबंध में जितनी खोज होती है आदमी उसका उपयोग करता है। आदमी के संबंध में जो खोज होती है उसके बाबत आदमी बहुत डरता है। क्योंकि खुद के संबंध में प्रयोग करने में पूरे जीवन की व्यवस्था बदलनी पड़ेगी। और उसमें डर लगता है। तो हम उसके मामले में पुराने ही बने चले जाते हैं। सब नया हो गया है, सिर्फ आदमी पुराना है। और सब नये के साथ पुराना आदमी बहुत बेमौजू हो गया है, एब्सर्ड हो गया है, उसका कोई तालमेल नहीं बैठ रहा। और इसलिए तकलीफ हो गई। फिर कुछ बुद्धिमान लोग कहते हैं, जो नया हो गया है उसको भी पुराना कर दो। हवाई जहाज छोड़ो, रेलगाड़ी छोड़ो, मशीन छोड़ो, बड़ी मशीन की जरूरत नहीं, सब छोड़ दो, पुराने हो जाओ, बाहर भी पुराना कर लो। एक रास्ता तो यह है कि हम बाहर भी सब पुराना कर लें।
मनु के जमाने में जो बैलगाड़ी थी उस पर ही चलें तो मनु की स्मृति की समाज-व्यवस्था चल सकती है। और मनु के जमाने में जो इंतजाम था जीवन का वही हम बाहर भी स्वीकार करें? नहीं; बाहर तो हमने आइंस्टीन तक आई हुई दुनिया को स्वीकार कर लिया। और मनुष्य के भीतर मनु को पकड़े हुए हुए हैं। आइंस्टीन और मनु के बीच साढ़े तीन हजार साल का फासला है। हमने हर आदमी के भीतर साढ़े तीन हजार साल का टेंशन पैदा कर दिया है। हम उसको चिंता में डाले हुए हैं, मुश्किल में डाले हुए हैं।
दो रास्ते हैं, या तो बाहर भी हम पीछे लौट चलें। कोई राजी नहीं होगा, कोई राजी नहीं है, होना भी नहीं चाहिए। कौन राजी होगा वापस लौट जाने को पीछे आदिम हो जाने के लिए? फिर दूसरा रास्ता यह है कि हम आदमी को आगे ले आएं। आदमी के संबंध में जो भी नवीनतम ख्याल आए हैं उनका भी हम प्रयोग कर लें। सब बदलना पड़ेगा--विवाह की व्यवस्था, परिवार की व्यवस्था, मां-बाप के संबंध, सब बदलने पड़ेंगे, तो शायद अब तक जो हमने बनाया उससे एक भिन्न समाज बन जाए। जो खोजते हैं, उन्हें क्या दिखाई पड़ता है? उन्हें यह दिखाई पड़ता है कि हर आदमी इतना पीड़ित और परेशान है कि अपनी पीड़ा और परेशानी निकालने के हजार उपाय खोजता है।
रास्ते पर कोई आदमी लड़ रहा है, आप भीड़ लगा कर खड़े हो जाते हैं। कभी आपने सोचा, आप क्यों देखने के लिए उत्सुक हैं? दो आदमी लड़ रहे हैं आपको क्या मतलब है? नहीं; आप हजार जरूरी काम छोड़ कर भीड़ में खड़े हो गए हैं। और भीतर से दिल धड़क रहा है और बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि हो जाए कुछ जोरदार, कुछ कश्मकश हो जाए, मुक्केबाजी हो जाए तो आनंद आ जाए। पुलक आ रही है भीतर। हालांकि ऊपर से भीड़ लगे हुए लोग कहेंगे भाई, क्यों लड़ते हो? लड़ो मत। भीतर कहेंगे कि कहीं ऐसा न हो कि लड़ें ही न, लड़ जाएं तो आनंद हो जाए। अगर उन्होंने मान लिया भीड़ की बात और कहा, अच्छा आप कहते हैं तो हम नहीं लड़ते हैं, तो भीड़ बड़ी उदास वापस लौटेगी। कुछ भी नहीं हुआ, बेकार समय जाया हुआ। और अगर वे लड़ गए, तो हमें भी बहुत रस आएगा। किस बात का रस आ रहा है? हम भी लड़ना चाहते हैं, लड़ नहीं पाते हैं तो आइडेंटिटी खोज रहे हैं, कहीं लड़ाई हो रही हो तो हम भी देख लें।
फिल्म देखते हैं आप, डिटेक्टिव फिल्में हैं, स्टंट पिक्चर्स हैं, गोलियां चल रही हैं, कारें एक-दूसरे के पीछे पागल होकर दौड़ रही हैं, तब आपने देखा फिल्म के हाल में क्या हो जाता है? सबकी रीढ़ एकदम से सीधी हो जाती है। योगी कितना ही सिखाएं कि रीढ़ सीधी रखना, कोई नहीं सुनता। लेकिन जब स्टंट फिल्म में कोई कार किसी के पीछे दौड़ती है पागल होकर, पहाड़ी रास्तों पर मोड़ लेती है, तब आप देखें, फिल्म के भीतर एक आदमी कुर्सी से टिका हुआ मिल जाए तो समझना बहुत अदभुत आदमी है। सबकी रीढ़ सीधी हो जाएगी। जरा भी चूक न जाए। और सबके हाथ-पैर में गति आ जाएगी; जैसे आप ही कार को चला

रहे हों या आपका ही पीछा किया जा रहा हो। हम आइडेंटिटी कर रहे हैं। नहीं तो स्टंट फिल्में कौन देखेगा? और जासूसी कहानियां कौन पढ़ेगा? जो पढ़ रहे हैं, जो देख रहे हैं, उसके पीछे भीतरी कारण हैं। युद्ध में कौन रस लेगा? युद्ध होता है तो कितनी ताजगी छा जाती है! सुबह जो आदमी आठ बजे उठता था वह पांच बजे उठ कर रेडियो खोलने लगता है कि क्या खबर है? जो कभी सुबह देखा नहीं, जिसने सूरज उगते नहीं देखा, वह बाहर खड़ा होकर रास्ता देखता है अखबार वाला कब आ जाए? युद्ध के वक्त आपने देखा, आदमी कितने ताजे मालूम पड़ते हैं, गति मालूम पड़ती है, हाथ-पैर में ताकत मालूम पड़ती है, शिथिल ढीले-ढाले नहीं, तेज हो जाते हैं कुछ हो रहा है! भीतर हमारे युद्ध की बड़ी आकांक्षा है कुछ हो जाए। बुरे की बड़ी आकांक्षा है क्योंकि हम बहुत क्रोध में, बहुत दुख में, बहुत पीड़ा में जी रहे हैं। कुछ हो जाए, उस कुछ हो जाने में हम बड़ा रस लेते हैं। उस रस में रुग्ण भाव है। जब तक मनुष्य का जीवन भीतर से दुख से भरा है तब तक बाहर के युद्ध बंद नहीं हो सकते। जब तक मनुष्य भीतर से परेशान है तब तक बाहर से शांति की सब बातें फि जूल हैं।
विनोबा से लेकर बट्रेंड रसल तक सारे लोग शांति की बातें करते हैं। लेकिन शांति नहीं हो सकती। क्योंकि आदमी को जो आपने व्यवस्था दी है वह उसे भीतर से अशांत और परेशान कर देती है। एक-एक आदमी अशांत है तो दुनिया शांत कैसे हो सकती है?
जब तक एक-एक आदमी शांत न हो जाए, दुनिया में शांति खोजनी असंभव है, क्योंकि दुनिया हम सबका जोड़ है और क्या है? संस्कृति बदलनी पड़ेगी। यह सवाल भारतीय का नहीं है। यह संस्कृति पुरानी है। वह जो अब तक हमने सोचा और जाना था उससे बहुत ज्यादा जाना गया उसका प्रयोग करना पड़ेगा। घबड़ाहट क्या है? पुराने का प्रयोग हो चुका, काफी हो चुका, पांच हजार वर्ष किसी भी प्रयोग को देने के लिए काफी हैं। नये के प्रयोग करने की हिम्मत जुटानी चाहिए। हो सकता है, नया भी असफल हो जाए, तो हम और नये को खोजेंगे, डर क्या है? जिंदगी तो खोज है निरंतर। अगर यह भी असफल हुआ और नया खोजेंगे। असफलता भी नये की तरफ ले जाएगी।
आइंस्टीन एक युवक के साथ एक रिसर्च का, शोधकार्य में लगा हुआ था। उन्होंने सात सौ प्रयोग किए। सब प्रयोग असफल हो गए। वह युवक इस बूढ़े के साथ थक गया। सात सौ प्रयोग? हर प्रयोग असफल होता चला गया। और आइंस्टीन रोज सुबह दूसरे दिन ताजा फिर आकर खड़ा हो जाता है। फिर नया प्रयोग करने लगता है। वह युवक थक गया है उसकी दस साल उम्र बढ़ गई ऐसा उसे लगने लगा कि यह क्या पागलपन है? सात सौ बार असफलता हो गई और यह आदमी रोज सुबह फिर हाजिर है उतनी ही खुशी से फिर प्रयोग शुरु कर रहा है? उसने आइंस्टीन से पूछा कि हम सात सौ बार असफल हो गए, आप थक नहीं गए? आइंस्टीन ने कहाः असफल? हम सात सौ बार असफल नहीं हुए; सात सौ दिशाओं में हमने खोज लिया, सात सौ दिशाएं असफल हो गईं; हम जीतते चले जा रहे हैं। अब कम दिशाएं बची हैं, धीरे-धीरे और एलिमिनेशन हो जाएगा, और दिशाएं खत्म हो जाएंगी; फिर वह एक ही बच जाएगी जहां कि सफल होना निश्चित है। हमारी जीत चल रही है।
सिर्फ एक तरह के लोग हार जाते हैं जो प्रयोग करना बंद कर देते हैं। हमने तो बंद ही कर दिए हैं प्रयोग हजारों साल से। हम कोई प्रयोग नहीं कर रहे हैं। हम छोटा-मोटा प्रयोग भी नहीं करते हैं। हम तो बंधी हुई लीक पर चलने के ऐसे आदी हो गए हैं कि आटोमैटा मशीन हो गए हैं, आदमी नहीं हैं। बस बंधी हुई लीक हैं--पिता ऐसा करते थे, उनके पिता ऐसा करते थे, उनके पिता ऐसा करते थे, उनके बेटे भी वैसा ही किए चले जा रहे हैं। यह शुभ नहीं है। बगावत चाहिए, विद्रोह चाहिए, नये के प्रयोग की कोशिश चाहिए। नया भी गलत हो सकता है। लेकिन प्रयोग न करने से गलत कोई प्रयोग नहीं हो सकता। प्रयोग करना ही चाहिए। होगा गलत, छोड़ेंगे और नये की खोज करेंगे। पुराना मनुष्य का ढांचा असफल हो गया है, यह कोई कहने की बात? हम अपने को देख कर कह सकते हैं। हम फल हैं उस ढांचे के।

एक और प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि भीतर जाने में यदि कोई पागल हो जाए तो क्या करें?

उन मित्र को पता नहीं कि जब तक कोई बाहर है तब तक ही पागल होता है।
भीतर जाने में पागलपन छूटना शुरू होता है। लेकिन ऐसा हो सकता है कि भीतर गया हुआ आदमी दूसरों को पागल मालूम पड़ने लगे।
मेरे एक मित्र हैं, वे पागल हो गए थे, उन्नीस सौ छत्तीस में, बूढ़े आदमी हैं अब तो वे। पागल हो गए हैं, घर से भाग गए। तो कहीं भी कुछ उपद्रव किया। आगरा में--अदालत में उनको छह महीने की सजा दे दी। लेकिन देखा अदालत ने कि आदमी पागल है, तो उन्होंने कहा कि यह सजा पागलखाने में बिताई जाए, इलाज भी चले और पागलखाने में छह महीने की सजा भी बिताई जाए। वे लाहौर के पागलखाने में भेज दिए गए। वे मुझसे कहते थे कि दो महीने तक बड़े मजे में दिन कटे, क्योंकि मैं भी पागल था, और तीन सौ पागल और मिल गए थे, मित्र मिल गए थे, समाज मिल गया था। बहुत मजे में दिन कटे। दो महीने बाद फिनायल का एक डिब्बा कहीं रखा हुआ मिल गया पागलखाने में, वे उसे उठा कर पी गए। फिनायल का डिब्बा पी लिया, तो इतनी कै, इतने दस्त हुए कि सारे मस्तिष्क की और शरीर की गर्मी निकल गई, तो वे ठीक हो गए। लेकिन वे मुझसे कहते थे, जब मैं ठीक हो गया तब मेरी असली मुसीबत शुरू हुई। क्योंकि तीन सौ आदमी पागल थे--कोई मेरी टांग खींचता है, कोई मेरा कान पकड़ता है, कोई चांटा मार जाता है, कोई मेरे ऊपर बैठ जाता है। दो महीने तक मैं भी यह कर रहा था तो कोई गड़बड़ न थी, सब ठीक था। अब वहां तीन सौ पागल के बीच एक आदमी जो पागल नहीं है उसकी मुसीबत, वह चिल्ला- चिल्ला कर कहता है डाक्टरों से कि मैं पागल नहीं हूं, लेकिन डाक्टर कहते हैं, यह तो सभी पागल कहते हैं। यह कोई बात ही नहीं है। वह जितना जोर से चिल्लाता है, डाक्टर कहते हैं, शांत रहो, यह सभी पागल कहते हैं, और जोर से चिल्लाओगे तो और कड़ी सजा हो सकती है।
वे मुझसे कहते थे चार महीने मैंने ऐसा नरक भोगा कि मैं भगवान से रोज प्रार्थना करता कि कोई तरकीब से मुझे फिर पागल कर दे। पागलों के बीच ठीक हो जाना बड़ा मुश्किल मामला है।
भीतर जाने वाला आदमी पागल नहीं होता, लेकिन बाहर की भीड़ को पागल दिखाई
पड़ सकता है।
जीसस हमें पागल ही दिखाई पड़े, नहीं तो हम सूली पर लटकाते? लगा कि यह आदमी पागल है, खत्म करो इस आदमी को। सुकरात हमें पागल ही मालूम पड़ा, नहीं तो हम जहर पिलाते? लगा, यह आदमी पागल है, इसे खत्म करो।
भीतर गया आदमी हमें पागल मालूम पड़ सकता है। लेकिन भीतर गया आदमी पागल होता नहीं। बाहर ही हम पागल हैं। हम करीब-करीब पागल हैं। हमारे पागलपन में डिग्री के फर्क हैं। एक आदमी ज्यादा पागल है, तो दिखाई पड़ने लगता है। हम नार्मल पागल हैं, तो हमें कभी पता नहीं चलता। जिंदगी चलती चली जाती है। लेकिन अगर हम थोड़ी खोज-बीन करेंगे, तो हमें पागलपन के लक्षण अपने में मिलने कठिन नहीं हैं। एकांत में चले जाएं, द्वार बंद कर लें, एक कागज और कलम ले लें और लिखें कि आपके मन में क्या चलता है। आधा घंटे तक जो भी चलता हो उसे लिख डालें और फिर किसी मित्र को दिखाएं। वह एक दफा कागज को देखेगा और दूसरी तरफ आपको देखेगा, फिर कागज देखेगा फिर आपको देखेगा और कहेगा, जल्दी बैठिए रिक्शे में, किसी डाक्टर के पास ले चलें। आपके दिमाग को यह क्या हो गया? ये तुम्हारे भीतर बातें चलती हैं? हालांकि अगर वह मित्र भी एकांत में बैठ कर लिखेगा, तो यही बातें उसके भीतर भी चलती हैं। और अगर वह जिस डाक्टर के पास ले जा रहा है, वह भी एकांत में लिखेगा, उसके भीतर भी यही बातें चलती हैं। इससे कोई फर्क नहीं।
लेकिन हम भीतर झांकते ही नहीं कि कैसा पागलपन है भीतर। कभी आप, आप कभी झांके, खोजें, तो पता चलेगा क्या-क्या पागलपन के ख्याल उठते हैं, कैसे-कैसे विचार उठते हैं। हम उन्हें दबाए हुए हैं। पागल वह है जो दबाना भूल गया और निकल गया। हम संयमी पागल हैं, संयम साधे हुए हैं। लेकिन जरा में संयम टूट सकता है। दीवाला निकल जाए, पत्नी मर जाए, कुछ भी हो जाए, जरा में सब गड़बड़ हो सकता है। और भीतर की सब भाप बाहर आ सकती है। जरा सी स्थिति में बदलाहट हो सकती है। निन्यानबे डिग्री पर सब उबल रहे हैं, सौ डिग्री हो जाए, भाप बन जाए। यह जो हमारी हालत है यह स्वस्थ हालत नहीं है। भीतर जितने हम गहरे

जाएंगे उतना हम स्वास्थ्य के करीब पहुंचेंगे, क्योंकि भीतर वह सोर्स, वह केंद्र है, जहां से जीवन की धाराएं मिलती हैं।
आपने ख्याल किया होगा, पागल आदमी की नींद चली जाती है। और जिसकी नींद चली जाए उसके पागल होने का डर पैदा हो जाता है। क्यों? क्योंकि नींद में भर हम भीतर जाते हैं थोड़ा सा, बस, जिंदगी में जागते तो कभी जाते नहीं। गहरी नींद हो जाती है तो भीतर चले जाते हैं। और भीतर से जो जीवन के रसस्रोत हैं उनको लेकर वापस लौट आते हैं, इसलिए सुबह हम ताजा लगते हैं। सुबह की ताजगी रात भीतर उतर जाने का फल है। जो जितनी गहरी नींद सोता है उतना ताजा हो जाता है। अगर रात भर नींद न आए तो सुबह हम पागल जैसे हो जाते हैं। अगर दस-पंद्रह दिन नींद न आए...
चीन में वे एक काम करते थे। सजा देते थे। एक कठिन से कठिन सजा थी, जिसको फांसी से भी ज्यादा कठिन सजा देनी होती, अब फांसी से ज्यादा कठिन और क्या होगा? तो उसे एक खास सजा देते थे। वह सजा यह थी कि उसे एक कोठरी में खड़ा कर देते थे, जिस कोठरी में चारों तरफ से भाले छिदे होते थे, वह आदमी जरा भी यहां-वहां हो, तो भाले छिद जाएं, और उसकी खोपड़ी पर एक बूंद-बूंद पानी टपकता रहता थाः टप टप टप। चौबीस घंटे नींद उसको आ नहीं सकती। हिलेगा- डुलेगा, जरा ही नींद आई, झपकी लगी कि भाला छिद जाएगा और वह टप टप जो है वह उसकी खोपड़ी को खा रही है ऊपर से। टप टप, अब वह परेशान हुआ जा रहा है, वह धीरे-धीरे टप टप ऐसा मालूम होने लगेगा जैसे पहाड़ टूट रहा है निरंतर-निरंतर और नींद आ नहीं सकती। पंद्रह दिन में वह आदमी विक्षिप्त हो जाएगा। पंद्रह दिन भी बहुत ताकतवर लोग टिक सकते हैं। आमतौर से तीन दिन में आदमी पागल हो जाएगा।
यह सबसे बड़ी सजा थी। फांसी के बाद ईजाद करने वाले लोग हुए हैं, खतरनाक लोग हैं, वे क्या-क्या ईजाद कर लें नहीं कहा जा सकता। लेकिन एक बात तय है कि हम जितनी गहरी नींद में जाते हैं उतने ताजे होकर वापस लौटते हैं। भीतर हम जितने उतरते है...
अभी नींद का बहुत विश्लेषण चलता है। अमरीका में कोई दस लेबोरेट्रीज खड़ी की गई हैं, जिनमें कोई दस हजार लोगों पर प्रयोग चलता है। रोज रात को सैकड़ों आदमी सुलाए जाते हैं उनकी नींद की जांच करने के लिए। जिस आदमी को सपने चलते रहते हैं वह आदमी सुबह उठ कर कहता है कि ताजगी नहीं आई और रात भर करीब-करीब सपने चलते रहते हैं। बहुत कम लोग हैं जिनको थोड़ी-बहुत देर के लिए सपने बंद होते हैं। जितनी देर के लिए सपना बंद होता है उतनी देर तक नीचे एक डुबकी लग जाती है। और अब तो जांचने के उपाय हैं, मशीन जांच लेती है कि आदमी कितना गहरा गया नींद में। सपने में चलता है तो ग्राफ ऊपर बनता है, गहरा जाता है तो नीचे। क्योंकि जो खोपड़ी की नसें हैं वे सपने में चलती हैं, तेजी से नींद आती है शिथिल हो जाती हैं, और नींद आती है बंद हो जाती हैं, गति बिल्कुल धीमी हो जाती है। कौन आदमी कितनी गहरी नींद में गया है, उन्होंने जो हिसाब लगाया है वह यह है कि जो आदमी जितनी गहरी नींद में चला जाता है वह आदमी के पागल होने की उतनी कम संभावना है। और जो आदमी नींद में ऊपर ही ऊपर घूमता रहता है उसके पागल होने का कभी भी डर है। छोटी सी चीज उसे पागल कर दे।
तो नींद में तो हम बेहोश होकर भीतर जाते हैं और धर्म हमें वह प्रक्रिया सिखाता है कि हम होश से भीतर पहुंच जाएं। नींद तो, बेहोश भीतर हम जाते हैं। धर्म हमें वह प्रक्रिया और विज्ञान और मेथड सिखाता है कि हम कैसे होशपूर्वक भीतर पहुंच जाएं। तो भीतर जाने से कोई कभी पागल नहीं होता। दूसरों को पागल दिखाई पड़ सकता है। लेकिन अगर कोई भी आदमी भीतर जाना शुरू करेगा तो पहले-पहले उसको भी लगेगा कि कहीं मैं पागल तो नहीं हो रहा? उसका कारण है। उसका कारण यह है कि उसने कभी भीतर झांका ही नहीं, पागल तो हम हैं। भीतर कभी झांका नहीं इसलिए पता नहीं चलता। झांकेंगे तो पता चलेगा। एक लड़का खेल रहा है हाकी, उसके पैर में चोट लग गई, खून बह रहा है। वह खेल में तल्लीन है। सारी भीड़ को दिखाई पड़ रहा है कि उसके पैर से खून बह रहा है, उसको भर पता नहीं है। पता नहीं होने से खून नहीं बह रहा है, ऐसा नहीं है, खून तो बह रहा है लेकिन उसकी पूरी अटेंशन, पूरा ध्यान खेल में उलझा हुआ है।

खेल बंद हुआ और वह एकदम कहता है, अरे, मेरे पैर में चोट लग गई। चोट अभी नहीं लगी, चोट लगी ही थी, अब पता चला, क्योंकि ध्यान उस तरफ गया। जो लोग बाहर ही बाहर भटक रहे हैं--दुकान में, बाजार में, मंदिर में, मस्जिद में घूम रहे हैं, उनको भीतर का ध्यान भी नहीं है कि वहां पागलपन इकट्ठा हो रहा है। जब कोई आदमी भीतर जाएगा तो पहली दफा उसे पता चलेगा कि यह क्या है, कहीं मैं पागल तो नहीं हो रहा? पागल नहीं हो रहे हैं, पागलपन था भीतर, पहली दफे ध्यान गया है, और अगर ध्यान गया है तो पागलपन मिट सकता है, क्योंकि ध्यान से बड़ी चीज पागलपन को मिटाने की और कोई भी नहीं। और अगर ध्यान बाहर ही बाहर भटकता रहा तो पागलपन भीतर इकट्ठा होता चला जाएगा।
जुंग ने जिसने अपनी जिंदगी में शायद पृथ्वी पर सर्वाधिक पागलों का इलाज किया और पागलों के संबंध में इससे बड़ा कोई जानकार खोजना मुश्किल है। जुंग ने लिखा है कि मैं जितने लोगों को अनुभव किया हूं कि जो पागल हो गए हैं उनमें मुझे ऐसा मालूम पड़ता है वे लोग अधिक हैं जिनका धार्मिक साधना से कोई भी संबंध नहीं रहा है। एक मनोवैज्ञानिक यह कहे--हैरानी की बात है! कह रहा है वह यह कि जो लोग पागल हो गए हैं मुझे ऐसा लगता है कि उनकी जिंदगी में धर्म से कोई भी संबंध नहीं रहा।
पश्चिम में जोर से पागलपन ब.ढ़ा है, पूरब में पागलपन थोड़ा कम है। पश्चिम में जोर से बढ़ा है। अमरीका में तो डर है कि अगर सौ-पचास वर्ष ऐसे ही चला तो कौन किससे इलाज करवाएगा यह तय करना मुश्किल हो जाएगा। जोर से पागलपन बढ़ता चला गया है। स्वीकृत हो गया, सामान्य बीमारी हो गई है। क्यों? भीतर जाने के सब द्वार हमने छोड़ दिए हैं। भीतर हम जाते ही नहीं। नींद का एक द्वार था, प्राकृतिक, वह भी छोड़ दिया। रोशनी पैदा हो गई है, रात दिन में बदल गई। अब रात सोने की कोई जरूरत नहीं है। रात नाचो, तीन-चार बजे तक गीत गाओ, कूदो, खेलो, घड़ी दो घड़ी--रात भर का तनाव, दिन भर का तनाव, लेटो बिस्तर पर, करवटें बदलो, सुबह फिर उठ आओ, फिर दौड़ शुरू हो जाए। आदमी पागल नहीं होगा तो और क्या होगा?
भीतर जाना बंद हुआ है, उससे आदमी पागल हो रहा है। भीतर हम जितने जाएंगे उतने हम ओरिजिनल सोर्श, वह जो हमारे भीतर उदगम है जीवन का, शक्ति का, वहां हम पहुंचते हैं। वहां से हम उतनी ही ताकत लेकर बाहर आते हैं। अगर कोई व्यक्ति यह कला सीख जाए भीतर जाने की, तो दिन में कई बार भीतर जा सकता है। जब आंख बंद करे भीतर चला जाए, एक डुबकी ले, ताजा हो बाहर आ जाए। जिंदगी बिल्कुल और हो जाएगी। हम अपने दरवाजे पर खड़े हैं, घर के दरवाजे पर बाहर धूप है हम भीतर चले आते हैं, फिर भीतर सर्दी लग रही है, अंधेरा है, हम बाहर चले आते हैं। अगर जीवन समझपूर्वक जीया जाए तो अपने भीतर और बाहर जाना इतना ही आसान है जैसे घर के बाहर जाना और भीतर आना। इतना ही आसान है। और जिस दिन इतना आसान अनुभव धीरे-धीरे प्रविष्ट हो जाता है उस दिन आदमी देखता है कि बाहर तो सिर्फ जीना है जीवन के मूलस्रोत भीतर हैं। बाहर तो केवल संबंध हैं, सत्य भीतर है। बाहर तो केवल एक विस्तार है, गहराई भीतर है। और जो भीतर जितना ज्यादा उतरता है उतना अपने ही भीतर नहीं दूसरे के भी भीतर देखने में समर्थ हो जाता है।
जिस दिन गहराइयां दिखाई पड़ने लगती हैं उस दिन आपका चेहरा ही दिखाई नहीं पड़ता, आपकी गहराई, डेफ्थ दिखाई पड़ती है। जिस दिन आपका शरीर नहीं दिखाई पड़ता आप दिखाई पड़ते हैं उस दिन यह सारा जगत परमात्मा हो जाता है। उस दिन इस जगत में पत्थर खोजना मुश्किल है। उस दिन इस जगत में पत्ता, फूल खोजना मुश्किल है, उस दिन सब तरफ परमात्मा की गहराई में आंदोलित मालूम होने लगता है। यह जो प्रतीति है परम आनंद की, यह जो प्रतीति है परम स्वास्थ्य की, यह जो प्रतीति है परम अमृत की, क्योंकि जैसे ही यहां कोई पहुंचा भीतर उसने यह भी जान लिया कि मृत्य झूठ है, मृत्यु से बड़ा झूठ कुछ भी नहीं है। कोई कभी नहीं मरा है और कोई कभी मरेगा भी नहीं। लेकिन हम बाहर जीते हैं, हमें पता ही नहीं अमृत का, रोज मरने-मरने से घिरे रहते हैं। हमें पता ही नहीं कि ऐसा भी कुछ है जो कभी नहीं मरता।
एक फकीर के पास कोई गया था और उस फकीर से पूछने लगा कि मैं पूछने आया हूं, जीवन और मृत्यु क्या है? उस फकीर ने कहाः भाग जाओ यहां से, अगर जीवन के

संबंध में पूछना हो तो मुझसे पूछो और मृत्यु के संबंध में पूछना हो तो किसी मरे हुए आदमी को खोजो। मैं कभी मरा ही नहीं। और जिस दिन से भीतर गया हूं मैं हैरान हूं कि लोग मृत्यु में कैसे गुजर जाते हैं? उन्हें पता ही नहीं है कि भीतर जो है वह मरता ही नहीं।
एक, कुछ है जो सब मृत्यु को जीत कर पार निकल जाता है। लेकिन भीतर जाएंगे, तो ही उसका पता चलेगा। आप तो कह रहे हैं, पागल। भीतर गए, पागलपन असंभव है। भीतर गए, मृत्यु असंभव है। कि भीतर जो है वह शाश्वत है, चिरंतन है, सदा है। लेकिन हम वहां कभी गए ही नहीं। हम अपने ही बाहर भटके हैं। जन्मों-जन्मों में, बहुत बार वहीं-वहीं घूमते रहे हैं। एक कोल्हू का चक्कर है जिसमें हम घूमते रहे, उसी में घूमते चले जाते हैं। नये बच्चों को भी दीक्षित कर देते हैं कि तुम भी घूमो, हम भी उसी में घूमते चले जाते हैं। कोई नहीं लौटता अपनी तरफ, और जो लौट आता है उसकी जिंदगी में जो पाने जैसा है उसका सुराग मिल जाता है, द्वार खुल जाता है। ऐसा नहीं है कि भीतर पहुंच कर हमने सब पा लिया, भीतर पहुंच कर सिर्फ पाने की शुरुआत होती है। सिर्फ द्वार खुलता है एक प्रकाश का जहां अनंत प्रकाश है, और अनंत जीवन है, और अनंत आनंद है, और ऐसी सुगंध है जो हमने नहीं जानी, और ऐसा संगीत है जो किसी वीणा से कभी पैदा नहीं होता, और ऐसे फूल हैं जो कभी मुरझाते नहीं, लेकिन उस तरफ हम जाएंगे तभी। और मैं कहूं इससे क्या हो सकता है? मैं कहूं इससे क्या हो सकता है? मैं जो कह रहा हूं उससे कुछ भी पता भी तो नहीं चलता। जाएंगे तो ही पता चलेगा, उतरेंगे तो ही पता चलेगा। किताबों में सब लिखा है उसे पढ़ लेंगे तो पता नहीं चल सकता है।
एक आदमी तैरने के संबंध में सब कुछ पढ़ ले तो भी तैरना नहीं जानता और उसे यह भी पता नहीं चलता कि तैरने की पुलक और आनंद क्या है? और सागर की लहरों के साथ जूझना क्या है? सूरज की किरणों में सागर में तैर जाना क्या है, उतरा जाना क्या है, चुपचाप पड़े रह जाना क्या है? उसे कुछ पता नहीं है। किताब पढ़ लेता है तैरने के संबंध में, सब किताबें पढ़ ले तैरने के संबंध में, खुद भी किताब लिख सकता है, व्याख्यान भी दे सकता है, लेकिन उस आदमी को भूल कर नदी में धक्का मत दे देना। धक्का दिया कि सब किताबों के सहित वह डूब जाएगा। तैरने का उसे कोई भी पता नहीं है।
तो जिस भीतर की मैं बात कर रहा हूं वहां जाए बिना कोई रास्ता नहीं है। मेरी बात सिर्फ एक प्यास जगा सके तो पर्याप्त है, एक ख्याल पैदा कर सके कि है कुछ भीतर खोजें। मैं नहीं कहता कि मान लें। मैं नहीं कहता कि मैं कहता हूं तो मान लें, हो सकता है मैं भ्रम में होऊं? भ्रम में होने की सदा संभावना है। मैं नहीं कहता मेरी बात मान लें, इतना कहता हूं कि कुछ मुझे दिखाई पड़ता है वहां, थोड़ा झांकें शायद आपको भी दिखाई पड़ जाएगा।
और जिस दिन दिखाई पड़ जाएगा उस दिन आप उसी हालत में आ जाएंगे।
एक अंतिम घटना अपनी बात पूरी कर दूं।
एक गांव में बुद्ध गए हैं और उस गांव के कुछ लोग एक अंधे आदमी को पास
ले आए और कहा, यह मानता नहीं कि प्रकाश है, हम क्या करें? बहुत समझाते हैं, समझता नहीं।
बुद्ध ने कहाः तुम पागल हो। अंधे को समझाने से क्या प्रयोजन है? इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ, विचारक के पास नहीं। इसके आंख का इलाज करवाओ, उपचार करवाओ। उपदेश नहीं। ठीक हो जाएगी आंख तो प्रकाश दिख जाएगा। समझाने की जरूरत नहीं है। उन्होंने कहाः हम तो आए थे आपके पास कि आप बुद्धिमान हैं, आप शायद समझा सकें।
बुद्ध ने कहाः मैं इतना बुद्धिमान हूं कि समझाऊंगा नहीं। तुमने समझाया यह बुद्धिहीनता की बात थी। समझाने की क्या जरूरत है इसमें? इसे ले जाओ चिकित्सा के लिए।
उसकी चिकित्सा के लिए ले गए, उसकी आंख ठीक हो गई। छह महीने बाद वह नाचता हुआ गांव में फिर आया और उसने कहा कि मैं भूल में था, प्रकाश तो था, मेरे पास आंख नहीं थीं। और मैं पागल कहता था कि प्रकाश नहीं है। मैं कहता था, प्रकाश मुझे छूकर देखना है, अब मैं जानता हूं कि प्रकाश को कोई छूकर कैसे बतला सकता था? मैं कहता था, प्रकाश को बजाओ, मैं उसकी आवाज सुन लूं, अब

मैं जानता हूं कि प्रकाश को कोई कैसे बजा सकता था? मैं कहता था, लाओ प्रकाश को मेरे पास, मैं चख लूं, स्वाद ले लूं, अब मैं जानता हूं प्रकाश का कोई स्वाद नहीं है, लेकिन प्रकाश है। मेरे पास आंख नहीं थी।
आंख की खोज धर्म है। एक ऐसी आंख की जो भीतर उतार देती है। उस आंख के संबंध में कल सुबह हम बात करेंगे।

आपने मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
सातवां प्रवचन

ज्योति का स्पर्श

सम्राट बूढ़ा हो गया था, और जैसे-जैसे मृत्यु की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी और जैसे-जैसे मृत्यु की छाया गहरी होने लगी उसे स्मरण आया कि मैं जी तो लिया लेकिन जीवन को अभी जान नहीं पाया हूं। शायद बहुत अधिक लोगों को मृत्यु के आने पर ही पहली बार बोध होता है कि जीवन अपरिचित, अनजाना छूट गया है। मौत करीब आने लगी, मौत की छाया घिरने लगी, तो उसे लगा जीवन तो हाथ से निकल गया और मैं जीवन को जान नहीं पाया।
जो बाहर ही जीते हैं वे जीवन को जान भी नहीं पा सकते हैं; क्योंकि जीना
तो बाहर है, जीवन भीतर है। और बहुत लोग जीने मात्र को ही जीवन समझ लेते हैं, तो बड़ी भूल हो जाती है।
उस सम्राट ने तत्काल ही अपनी राजधानी के बुद्धिमान लोगों को बुलाया
और उनसे पूछा कि जीवन क्या है? यह मुझे बताओ।
एक भूल तो उसने यह की कि मौत तक प्रतीक्षा की जीवन को जानने के लिए, जब
कि जीवन रोज मौजूद था, प्रतिपल मौजूद था। दूसरी भूल उसने यह की कि जीवन को जानने के लिए भी किसी और को बुलाया कि तुम मुझे बताओ कि जीवन क्या है? जीवन मैं ही हूं, तो किसी और से पूछने जाऊंगा तो कोई मुझे क्या बता सकेगा? मेरे जीवन को तो मुझे ही जानना पड़ेगा। मेरे भीतर मेरे अतिरिक्त और कोई उतर नहीं सकता--न कोई मेरी जगह मर सकता है, न कोई मेरी जगह जी सकता है। मेरी जगह कोई खड़ा भी नहीं हो सकता। एक क्षण भी जहां मैं हूं कोई और नहीं हो सकता। कोई दूसरा कैसे बताएगा।
लेकिन अक्सर सभी लोग यही भूल करते हैं। वही भूल उस सम्राट ने भी की। प्रश्न उठा तो सोचा किसी से पूछ लें। जब भी प्रश्न उठता है तो हम किसी से पूछने को निकल जाते हैं। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर दूसरों से मिल जाएंगे। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर किसी से भी कभी नहीं मिलते। जिन प्रश्नों के उत्तर दूसरों से मिल जाएं उन प्रश्नों का धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। जिन प्रश्नों के उत्तर किसी से भी नहीं मिलते, खुद ही खोजने पड़ते हैं, उन प्रश्नों का संबंध ही धर्म से है।
उसे प्रश्न उठा था, जीवन क्या है? लेकिन बुलाया बुद्धिमानों को, बुद्धिमान आ भी गए, क्योंकि जो आदमी पूछने जाएगा उत्तर देने वाले भी मिल ही जाते हैं। बुद्धिमान अपने बड़े-बड़े शास्त्र लेकर राजमहल में उपस्थित हो गए। अक्सर बुद्धिमानों के पास सिवाय शास्त्रों के और कुछ होता भी नहीं। जीवन तो वे भी नहीं जानते थे, शास्त्र जानते थे। इतना ही फर्क था सम्राट में और उनमें। सम्राट भी जीवन नहीं जानता था, वे भी जीवन नहीं जानते थे। सम्राट शास्त्र भी नहीं जानता था, वे शास्त्र जानते थे। वे शास्त्र लेकर आ गए, क्योंकि अगर वे जीवन जानते होते तो शास्त्र लेकर आने का कोई भी अर्थ न था। किसी भी शास्त्र में कहीं भी जीवन नहीं है। शास्त्र तो मृत है, मरा हुआ है, शास्त्र में तो कोई जीवन नहीं, राख है अंगार की, खुद अंगार नहीं है।
किसी ने जीवन जाना होगा उसने कुछ कहा है वह शास्त्र में इकट्ठा हो गया है।
वह कहा हुआ राख है, अंगार को जानना था। कहा हुआ राख से ज्यादा नहीं हो सकता। वे बड़ी किताबें लेकर आ गए हैं।
सम्राट ने कहा कि मैं जानना चाहता हूं जीवन क्या है? बताओ।
उन्होंने कहाः बहुत शास्त्र हैं, सभी आपको जानने पड़ेंगे।
सम्राट ने कहाः जितने भी शास्त्र हों, मैं पूर्ण जीवन जानना चाहता हूं। तुम सब शास्त्र ले आओ, जल्दी करो, मौत करीब आती मालूम पड़ती है। सम्राट सत्तर के करीब पहुंच गया है। वे बुद्धिमान गए, बहुत जल्दी की उन्होंने।
लेकिन बुद्धिमानों की जल्दी भी बड़ी देर की होती है। पांच वर्ष बाद लौटे, पांच सौ ऊंट लेकर लौटे। पांच सौ ऊंटों पर लदे हुए शास्त्र लेकर लौटे। सम्राट से कहा कि पृथ्वी पर जितना भी जीवन के संबंध में जाना गया, सब हम ले आए।

सम्राट ने कहाः तुम पागल मालूम पड़ते हो, मैं मरने के करीब हूं, पांच सौ ऊंटों पर लदे हुए शास्त्रों को मैं कब पढ़ूंगा? कौन पढ़ेगा? फुरसत कहां है? समय कहां है? संक्षिप्त करो।
फिर पांच वर्ष लग गए। वे संक्षिप्त करके पांच किताबें लेकर लौटे। तब सम्राट अस्सी वर्ष के करीब हो रहा था। आंखें जवाब दे गई थीं, दिखाई नहीं पड़ता था, चल नहीं सकता था, उठ नहीं सकता था। पांच गं्रथ देख कर उसने कहा, तुम निपट पागल हो, पांच वर्ष लगा दिए संक्षिप्त करने में, और अब पांच ग्रंथ लेकर आए हो? अब जब कि मैं बिल्कुल मरने के करीब हूं। आंखों से दिखाई नहीं पड़ता, ये पांच ग्रंथ पूरे कौन पढ़ेगा? और संक्षिप्त करो। वे पंडित दो वर्ष बाद और संक्षिप्त करके लौटे। अब वे पांच ही पन्ने लेकर आए थे। लेकिन सम्राट बेहोश पड़ा था, मरने के करीब था। आखिरी सांस चल रही थी। उन्होंने उसे हिलाया और कहा हम संक्षिप्त कर लाए हैं। सम्राट ने कहाः अब तो पांच पन्ने भी पांच सौ ऊंटों के बराबर हैं, और संक्षिप्त करो। एक ही शब्द में कह सको तो कह दो अन्यथा मैं जा रहा हूं। वे पंडित किसी तरह पांच पन्नों को पांच शब्दों में उतार पाए। सम्राट के पास गए कि कम से कम पांच शब्द तो सुन लें। लेकिन सम्राट डूब रहा था। डूब ही चुका था। हिलाया उसे, उसके कान में, वह बेहोश था, एक ही शब्द वे कह पाए कि उसकी श्वास टूट गई। पता नहीं उन्होंने क्या शब्द कहा? कुछ लोग कहते हैं, उन्होंने कहा, धर्म, धर्म ही जीवन है। कोई कहते हैं, उन्होंने कहा, परमात्मा, परमात्मा ही जीवन है। कोई कहते हैं, उन्होंने कहा, ज्ञान, ज्ञान ही जीवन है। और बहुत लोग बहुत तरह की बातें कहते हैं। लेकिन उन्होंने क्या कहा, कुछ पता नहीं है।
कुछ भी कहा हो, कहा हो परमात्मा, कहा हो ज्ञान, कहा हो धर्म, कहा हो योग, कहा हो मोक्ष, सम्राट को, उस बेहोश पड़े सम्राट को क्या फर्क पड़ा होगा? कुछ भी कहा हो, सब व्यर्थ हो गया होगा। एक शब्द में भी कहा हो तो भी व्यर्थ हो गया होगा। सम्राट को क्या हुआ होगा? सुन ही लिया होगा और क्या हुआ होगा। हममें से भी बहुत लोग सुन ही लेते हैं और कुछ भी नहीं होता है। सुनने
से कुछ होगा भी नहीं।
कल ही कोई मित्र मेरे पास आए, उन्होंने कहा, हम आपको पांच वर्षों से सुनते हैं, कुछ होता नहीं?
मैंने कहाः मैंने कब कहा है कि मेरे सुनने से और कुछ हो सकेगा? किसी के सुनने से भी कुछ नहीं हो सकेगा। कुछ करना भी पड़ेगा। जानना बहुत गहरे में किसी करने से उपलब्ध होगा। जानना सिर्फ सुनने से, पढ़ लेने से कैसे उपलब्ध होगा। लेकिन हम या पढ़ते हैं, या सुनते हैं; शब्दों का संग्रह इकट्ठा कर लेते हैं। कोई एक शब्द इकट्ठा करता होगा, कोई पांच ग्रंथ, कोई पांच सौ, कोई पांच सौ ऊंटों पर लदे ग्रंथ इकट्ठे कर लेता होगा। लेकिन उससे बोझ बढ़ जाता है, जानना नहीं होता। बोझ एक बात है, जानना बिल्कुल दूसरी बात है।
हम सब भी बहुत कुछ जानते हैं। वह सुना हुआ है, पढ़ा हुआ है, जाना हुआ बिल्कुल भी नहीं। जानें कैसे? इस संबंध की ही बात आज सुबह के सूत्र में आपसे करना चाहता हूं। जानें कैसे? क्या उपाय है सत्य को जानने का? क्या उपाय है जीवन के साक्षात का? चाहे हम उसे परमात्मा कहें, चाहे कोई और नाम दे दें, जो है उसे जानने का उपाय क्या है? और जो है उसे हम जान क्यों नहीं पाते? हम कुछ और क्यों जान लेते हैं? जो है उसे क्यों नहीं जान पाते?
मजनू की कहानी हम सबने सुनी है। उसके गांव के राजा ने उसे बुलाया था
और कहा था तू पागल हो गया है। लैला बहुत साधारण सी लड़की है। उससे बहुत सुंदर लड़कियां हम तुझे दे सकते हैं। तेरी पीड़ा से हमें भी पीड़ा होती है। तेरे बहते आंसुओं से और गांव के आस-पास तेरे गूंजते हुए गीतों की आवाजों से हमें भी पीड़ा होती है। तू व्यर्थ परेशान है। लैला बड़ी साधारण लड़की है। हमने बहुत सुंदर लड़कियां बुलवा भेजी हैं। तू देख ले, तुझे जो पसंद हो वह चुन ले।
मजनू बहुत हंसने लगा, उसने कहा, आपको पता ही नहीं कि लैला कौन है? लैला
को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। मेरे सिवाय कोई नहीं जानता कि लैला कौन है!

सम्राट ने कहाः मैंने देखा है तेरी लैला को और मेरे दरबारियों ने देखी, बड़ी साधारण सी लड़की है। क्यों पागल हुआ चला जाता है?
मजनू ने कहाः वह होगी साधारण। मजनू के लिए नहीं, मजनू की आंख के लिए नहीं।
उस सम्राट ने कहाः ऐसा मालूम होता है लैला जैसी है वैसी तू नहीं देखता, तू जैसी देखना चाहता है वैसी देख लेता है, प्रोजेक्शन है कोई।
हम कोई भी वह नहीं देखते जो है, हम जो देखना चाहते हैं वह तस्वीर हम ऊपर से ढ़ाल देते हैं। जिसे हम मित्र देखना चाहते हैं हम मित्र के भाव उसके ऊपर आरोपित कर देते हैं। और जिसे हम शत्रु देखना चाहते हैं शत्रु के भाव आरोपित कर देते हैं। और जो भाव हम इंपोज कर देते हैं, आरोपित कर देते हैं, वही हमें दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। हम वह नहीं देखते जो है, हम वही देखते हैं जो हम देखना चाहते हैं। इसीलिए एक ही आदमी किसी को प्यारा मालूम होता है, किसी को हत्यारा मालूम होता है। किसी को मित्र, किसी को दुश्मन मालूम होता है। एक ही बात किसी को बहुत अमृत मालूम होती है, किसी को बहुत जहर मालूम होती है। हम जो थोप देते हैं वही हम देख लेते हैं। हम देखते नहीं, हम व्याख्या करते हैं। और जब तक हम व्याख्या करते हैं तब तक हम देख नहीं सकते। हम अपने को भी नहीं देख सकते। हम अपनी भी व्याख्या कर लेते हैं।
एक आदमी है वह मान लेता है कि पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है,
सब शरीर है। उसने जाना नहीं है कुछ, एक धारणा बना ली है कि सब शरीर है, सब पदार्थ है, मृत्यु के साथ सब मर जाता है। मैं देह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हूं। भोजन है, खाना है, पीना है, बस यही जीवन है। ऐसी उसने व्याख्या कर ली। अब वह जो है उसे कभी नहीं जान पाएगा। सदा इसी व्याख्या को आरोपित करके देखता रहेगा। और बार-बार इसी व्याख्या से देखने पर उसे लगेगा कि मेरी व्याख्या ठीक थी, क्योंकि जो मैंने सोचा था वही तो दिखाई पड़ता है। ऐसा एक विसियस सर्कल पैदा होता है, जो हम मान लेते हैं वह दिखने लगता है। जब वह दिखने लगता है तो हम कहते हैं हमारी मान्यता सही थी, क्योंकि देखो वही तो दिखाई पड़ रहा है जो हमने माना था। वह हमारे मानने के कारण ही दिखाई पड़ रहा है।
एक दूसरा आदमी है वह मान लेता है कि मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं। परमात्मा हूं, ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि! वह यही दोहराने लगता है। वह भी व्याख्या कर रहा है। उसे ऐसा ही लगने लगेगा कि मैं ब्रह्म हूं, मैं आत्मा हूं। उसे ऐसा ही लगने लगेगा कि कुछ भी नहीं मरेगा। लेकिन यह भी व्याख्या है। और जब लगने लगेगा तो वह कहेगा, देखो, जो मैंने माना था वह ज्ञान कितना सत्य था। वही दिखाई पड़ने लगा है।
हम व्याख्याएं पहले पकड़ लेते हैं, सत्य सदा पीछे छूट जाता है। जो व्याख्या पकड़ता है वह सत्य को कभी उपलब्ध नहीं होता। और दूसरों के संबंध में हम छोड़ दें, अपने संबंध में भी हम व्याख्याएं पकड़ कर ही जी लेते हैं। आस्तिक आस्तिक होकर जी लेता है। नास्तिक नास्तिक होकर जी लेता है। हिंदू हिंदू, मुसलमान मुसलमान होकर जी लेता है। बौद्ध बौद्ध होकर जी लेता है। लेकिन सब व्याख्याएं पकड़ कर जी लेते हैं। और व्याख्याओं के कारण जो है, दैट व्हीच इ.ज, वह दिखाई भी नहीं पड़ पाता। वह कभी दिखाई नहीं पड़ पाता। स्वयं की खोज में, सत्य की खोज में आखिरी सूत्र है सब व्याख्या छोड़ देना। उसे देखने निकलना जो है। और अगर उसे देखने निकलना है जो है तो अपनी तरफ से कोई भी भाव मत करना कि यह होना चाहिए या ऐसा होगा। खाली, शून्य, रिक्त मन से जो जाएगा वह जान पाता है कि क्या है। भरे मन से जो जाएगा वह वही जान लेता है जो वह सोच कर जाता है कि होना चाहिए। इसीलिए तो सब धर्मों के लोग समझते हैं कि वे सही हैं, क्योंकि जो व्याख्या लेकर वे जाते हैं वही देख लेते हैं।
एक आदमी क्राइस्ट की कल्पना करता है, क्राइस्ट को देख लेता है। एक आदमी राम की कल्पना करता है, धनुर्धारी राम को देख लेता है। एक आदमी कृष्ण की कल्पना करता है, बांसुरी बजाते कृष्ण को देख लेता है। इन तीनों आदमियों को एक ही कमरे में बंद कर दो--क्राइस्ट को देखने वाले आदमी को राम और कृष्ण

बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेंगे। राम दिखाई पड़ने वाले आदमी को क्राइस्ट और कृष्ण बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेंगे। वही कृष्ण दिखाई पड़ने वाले आदमी का भी हाल होगा।
सुबह उनसे पूछो, वे कहेंगे कि क्राइस्ट मौजूद था। एक कहेगा, राम, कृष्ण कोई मौजूद नहीं थे। दूसरा कहेगा, राम मौजूद थे। तीसरा कहेगा, कृष्ण मौजूद थे। वे तीनों लड़ेंगे। वे तीनों इसलिए लड़ रहे हैं कि उन्होंने तीन व्याख्याओं को प्रोजेक्ट किया है। तीन व्याख्याओं में अपने को सम्मोहित किया है।
वे ऑटो-हिप्नोसिस में खुद को सम्मोहित करके जो देखना चाहे थे वह देख लिए हैं। दूसरा, मेरी कल्पना को दूसरा नहीं देख सकता, मेरी कल्पना को मैं ही देख सकता हूं। तो हमारी सबकी अलग-अलग कल्पनाएं हैं। हम अपनी-अपनी कल्पनाएं देख लेते हैं, इसलिए दुनिया में सब धर्म चले जाते हैं। क्योंकि सब धर्मों को यह लगता है कि जो हमारे ग्रंथों में कहा है वह हमने देखा, जाना, पहचाना। और मजा उलटा है। वह ग्रंथों में सत्य कहा है इसलिए नहीं बल्कि हमने उसे पकड़ लिया वह दिखाई पड़ गया है।
सत्य की खोज में जिसे जाना है उसे सब ग्रंथ, सब धारणाएं, सब कंसेप्टस छोड़ देने पड़ेंगे। उसे रिक्त और खाली खड़ा हो जाना पड़ेगा। और उसे कहना पड़ेगा अपने पूरे अंतर्तम में मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। मैं ज्ञान लेकर तुम्हारे पास नहीं आता हूं क्योंकि अगर मैं ज्ञान लेकर आऊंगा तो सत्य को कैसे जान सकूंगा? ज्ञानी ज्ञान के भ्रम से भरे हुए लोग सत्य को कभी नहीं जान पाते हैं। उसे तो जानना पड़ेगा--मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। ऐसा कहना ही नहीं पड़ेगा, ऐसे पूरे अंतर्तम में, पूरे पर्त-पर्त में प्राणों की अनुभव करना पड़ेगा--मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। और सच ही हम जानते क्या हैं? रास्ते पर पड़े पत्थर को भी नहीं जानते हैं और परमात्मा को जानने का दावा शुरू कर देते हैं।
डी. एच. लारेंस एक लेखक और विचारक था। एक बगीचे में घूम रहा है। एक छोटा बच्चा उसके साथ है, वह बच्चा उससे पूछता है, वॉय दीज ट्रीज आर ग्रीन? ये वृक्ष हरे क्यों हैं? लारेंस हंसने लगता है और कहता है, सच-सच बता दूं? तो बच्चा कहता है, सच ही सच जानना है। तो लारेंस थोड़ी देर वृक्ष के पास खड़ा रहता है और फिर कहता है, जहां तक मैं जानता हूं, दीज ट्रीज आर ग्रीन बिकाज दे आर ग्रीन। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। वह बच्चा कहता है कि यह कोई उत्तर हुआ? लारेंस ने कहाः मतलब मेरा यह है कि मैं नहीं जानता। इतना ही है कि वृक्ष हरे हैं। और मैं नहीं जानता। और वृक्ष का हरा होना बड़ा आनंदपूर्ण है। मुझे कुछ पता नहीं है।
ऐसा व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति की मनःस्थिति सत्य को खोज की हो सकती है। वह कुछ आरोपित नहीं करता। वह कोई व्याख्या नहीं करता। जीवन के तथ्यों के सामने चुप खड़ा हो जाता है। हम चुप कभी खड़े होते ही नहीं। हम जीवन के किसी तथ्य के सामने कभी चुप होकर नहीं खड़े हुए। हमारी अपनी धारणा को हमने तथ्य पर थोप दिया है। तथ्य हट गया है, हमारी धारणा ही वहां बैठ कर रह गई है। इसीलिए एक ही तथ्य को दस लोग दस तरह से देख लेते हैं। हजार लोग हजार तरह से देख लेते हैं। तथ्य तो एक ही होता है।
सत्य भी एक ही है, लेकिन हम अपनी-अपनी व्याख्या करके भटक जाते हैं।
स्वयं की यात्रा में अंधकार से प्रकाश की ओर आखिरी सूत्र है। कोई व्याख्या, कोई ज्ञान, कोई विचार लेकर अपने पास मत जाना, गए कि वही मिल जाएगा जो लेकर हम गए हैं। वह नहीं जो है। जो है वह बात ही और है।
हमारी आंखों पर चश्मे हों रंग-बिरंगे, वही रंग दिखाई पड़ने लगते हैं। पीलिया के मरीज को सब पीला दिखाई पड़ने लगे। और अगर एक कोई गांव ऐसा हो जिसमें सभी पीलिया के मरीज हों और एक आदमी पैदा हो जाए जिसे पीलिया न हो, तो उस गांव के लोग उसको इंजेक्शन लगवा कर पीलिया करवा देंगे कि यह बेचारा गलत पैदा हो गया, अस्वस्थ पैदा हो गया है। एक गांव में अंधे लोग हों और एक आंख वाला आदमी पैदा हो जाए, तो उस गांव के सर्जन, उस गांव का मेडिकल कालेज उसकी आंखों का आपरेशन कर देगा कि यह बेचारे को कुछ गड़बड़ चीजें निकल आईं, क्योंकि आंखें तो होती ही नहीं। जो हमें दिखाई पड़ता है वह हमारा थोपा हुआ

है। और अगर भीड़ किसी चीज को थोप ले तो बहुत मुश्किल हो जाता है। एक-एक आदमी को शक भी पैदा हो सकता है, भीड़ के साथ शक भी पैदा नहीं होता। इसीलिए हम भीड़ बांध कर खड़े होते हैं। हिंदू अलग भीड़, जैनियों की अलग भीड़, पारसियों की अलग भीड़, सिक्खों की अलग भीड़, हम भीड़ बांध कर खड़े होते हैं। क्यों? क्योंकि एक-एक आदमी को शक पैदा हो जाएगा कि मैं जो मानता हूं वह ठीक है या नहीं? लेकिन जब चारों तरफ और लोग भी कहते हैं कि बिल्कुल ठीक है, तुम जो मानते हो यही ठीक है, यही हम भी मानते हैं, तो उसका बल बढ़ जाता है, उसका आत्मविश्वास बढ़ जाता है। वह पक्का हो जाता है मजबूत। फिर वह अपने को सम्मोहित कर सकता है। फिर वह वही देख सकता है जो भीड़ दिखाना चाह रही है। भीड़ से सत्य का क्या संबंध हो सकता है? व्याख्या के साथ सत्य का क्या संबंध हो सकता है?
नहीं; छोड़ कर जाना पड़ेगा खाली और शून्य, जैसे कोई दर्पण खाली हो, बिल्कुल खाली, ताकि जो भी सामने आए वह बन सके दर्पण पर, प्रतिबिंबित हो सके। जैसे कोई झील लहरों से खाली हो, तो झील के ऊपर आकाश हो, तो तारे और चांद दिखाई पड़ सकें झील के भीतर। अब झील लहरों से भरी है, तो चांद-तारे दिखाई नहीं पड़ेंगे। चांद-तारे प्रतिबिंबित होंगे तो भी झील में छितर जाएंगे, बिखर जाएंगे, चांद फैल जाएगा, चांदी फैल जाएगी। झील की लहरों पर चांद नहीं दिखाई पड़ेगा, फैला हुआ विस्तार दिखाई पड़ेगा। जिसका चांद से कोई भी संबंध नहीं है। और अगर हमने उसी फैले हुए विस्तार को, चांदी को, फैली हुई चमक को, छितरे हुए चांद के टुकड़ों को चांद समझ लिया तो बड़ी भूल हो जाएगी।
हमारा मन भी बहुत लहरों से--व्याख्याओं की, विचारों की, सिद्धांतों की लहरों से भरा हुआ है। उसमें सत्य का कोई प्रतिबिंब कभी नहीं बन पाता है। जो भी बनता है सब विकृत हो जाता है। हमारा मन विकृति का एक उपकरण है। अशांत मन विकृति का उपकरण है। अशांत मन डिस्टार्ट करता है। जो भी है उसे वैसा नहीं देखने देता, कुछ और ही कर देता है। सब गड़बड़ कर देता है। इस मन को बदले बिना, इस मन को खाली किए बिना कोई भी अंतर्यात्रा प्रकाश की ओर, सत्य की ओर न कभी हुई है न हो सकती है। कैसे हम इस मन को सारी व्याख्याओं से खाली करें?
तीन सूत्र। इस एक सूत्र के तीन हिस्से आपसे कहना चाहता हूं। पहली बात, ज्ञान को छोड़ दें। ज्ञान को जोर से न पकड़ कर बैठ जाएं। किसी बात को ऐसा पकड़ कर न बैठ जाएं कि मैं जानता हूं। थोड़ा खोजें कि जानता हूं? नींव खिसक जाएगी नीचे से कि कहां जानता हूं! लेकिन हम डर के कारण अपने से पूछते भी नहीं कि यह मैं जानता हूं? ईश्वर को मैं जानता हूं कि मैं दोहराए चले जा रहा हूं? और जोर से दोहरा रहा हूं ताकि खुद को भी विश्वास आ जाए कि जानता हूं। और अगर कोई आया और संदेह खड़ा करे कि ईश्वर को जानते हो, तो लड़ने खड़ा हो जाऊंगा। उससे नहीं लड़ रहा हूं, मैं अपने से ही लड़ रहा हूं कि कहीं संदेह ऊपर न उठ आए, दबा रहे, भीतर दबा रहे।
मेरे एक शिक्षक हैं, गांव जाता हूं अपने, वृद्ध हो गए हैं, तो उनके पास मिलने चला जाता हूं। पिछले कुछ वर्ष पहले गया था गांव, तीन-चार दिन वहां था, रोज उनके घर मिलने गया। तीसरे दिन उन्होंने एक चिट्ठी भेजी अपने लड़के के हाथ और कहा, तुम आते हो बहुत खुशी होती है, तुम नहीं आते हो वर्ष भर मैं प्रतीक्षा करता हूं और डरता हूं पता नहीं इस बार बचूंगा या नहीं? तुम आओगे, मिलूंगा या नहीं? लेकिन तीन दिन से तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। अब तुम मेरे घर मत आना। मैं बहुत डर गया हूं कल रात की बात के बाद। जब मैं सुबह प्रार्थना करने अपने मंदिर में बैठा, जहां मैं चालीस वर्ष से मूर्ति की पूजा करता हूं, वहां एकदम हाथ जोड़ कर बैठा और मुझे ऐसा लगा कि यह सब मैं कहीं पागलपन तो नहीं कर रहा हूं? यह मूर्ति तो मैं ही चालीस साल पहले बाजार से खरीद लाया था। यह आदमी की बनाई हुई मूर्ति और मुझे कुछ भी पता नहीं कि इसमें भगवान है या नहीं? मान कर चलता हूं कि भगवान है। चालीस साल से बड़ा आनंद आता था प्रार्थना में--आंसू बहते थे, गदगद हो जाता था। कल सुबह मुश्किल में पड़ गया। न आंसू बहे, न गदगद हुआ, बल्कि चिंता में पड़ गया। शक पकड़ लिया कि पता नहीं यह मूर्ति सिर्फ मूर्ति ही न हो? पत्थर ही न हो? कोई भगवान न हो और मैं व्यर्थ ही हाथ जोड़े चिल्लाए चला जा रहा हूं। लेकिन

मैं डर गया हूं। मेरी आस्था को मत मिटाओ। अब आना ही मत। इस घर में ही मत आना। मैं तुम्हारी राह देखूंगा, लेकिन तुम मत आना। मुझे बहुत डर लग गया है।
मैंने उन्हें चिट्ठी लिख कर भेजी कि एक बार तो और आऊंगा। दुबारा आने
की कोई खास जरूरत भी नहीं। एक बार मैं और गया। मैंने उनसे पूछा कि यह मेरे कारण संदेह पैदा हो गया? चालीस साल की प्रार्थना संदेह को नहीं मिटा पाई? चालीस साल घंटों हाथ जोड़ कर बैठने से संदेह नहीं मिटा और मेरी घंटे भर की बात से संदेह पैदा हो गया? तो प्रार्थना बड़ी कमजोर मालूम पड़ती है।
चालीस साल पहले भी संदेह रहा होगा। उस संदेह को दबा लिया है भीतर। ऊपर
से पर्त-पर्त विश्वास की पकड़ ली हैं, भीतर संदेह मौजूद है, वह गया नहीं है। संदेह ऐसे जाता नहीं है। संदेह ज्ञान के पहले कभी नहीं जाता। और जिस ज्ञान को हम पकड़ लेते हैं वह संदेह को सिर्फ दबाता है। जो उधार है ज्ञान, वह संदेह को दबा देता है, मिटाता नहीं है। चालीस साल पहले भी वह संदेह रहा होगा।
मैंने पूछाः जिस दिन मूर्ति खरीद कर लाए थे उस दिन का स्मरण करें। उन्होंने आंख बंद कर लीं और कहा कि ठीक ही कहते हो, चालीस साल पहले भी यही संदेह था। लेकिन अपना मन गलत है। यह सोच कर दबाए चला गया, फिर धीरे-धीरे भूल गया था। तुमने फिर जगा दिया है। मैंने कहाः जो भूल गया था वह साथ है, वह भीतर छिपा है। मेरे जगाने का सवाल नहीं है। अच्छा है कि जग गया।
लेकिन कितना ही आरोपित करो पत्थर पर भगवान को, कितना ही विश्वास करो, कितनी ही मान्यता करो, वह एक असत्य ही रहेगा। वह वह नहीं है जो है। भगवान जरूर है, सत्य जरूर है, लेकिन हमारे आरोपण करने की बात नहीं है, हमारे विश्वास करने की बात नहीं है, हमारे खाली होने की बात है, हमारे शून्य होने की बात है, हमारे शांत होने की बात है। उस शांति में जो दिखाई पड़ेगा वह है। और हम अशांत विश्वास किए चले जाते हैं, माने चले जाते हैं।
आदमी मान रहा है कि मैं आत्मा हूं, आत्मा अमर है और बंदूक उसके सामने लेकर खड़े हो जाओ और वह हाथ-पैर जोड़ने लगा है और वह कहता है कि मुझे मार मत डालना। देखो मुझे मार मत डालना। अभी वह कह रहा था, आत्मा अमर है। आत्मा की अमरता वाला आदमी मरने से डरेगा? हंसेगा। नहीं, लेकिन आत्मा की अमरता मानने वाला बहुत डरता है। हमारा मुल्क तो कितनी आत्मा की अमरता मानता है और हमसे ज्यादा मरने से डरने वाली कौम पृथ्वी पर खोजनी बहुत मुश्किल है। जितना हम मरने से डर जाते हैं और आत्मा की अमरता की बात किए चले जाते हैं। दोनों बातें एक साथ। कहीं न कहीं कोई गड़बड़ है। हमारी यह बात सिर्फ बात ही मालूम पड़ती है। यह हमारा अनुभव नहीं है। अगर हमें अनुभव हो जाए तो बात खत्म हो गई।
सिकंदर हिंदुस्तान से लौटता था। मित्रों ने कहा था कि हिंदुस्तान से
जब लूट लेकर लौटो, धन लाओ, हीरे-जवाहरात लाओ तो एक संन्यासी को भी ले आना। संन्यासी हमने देखा नहीं। सिकंदर सब लूट तो ले गया, मुल्क के बाहर हो रहा था, आखिरी गांव में उसे ख्याल आया कि एक संन्यासी को भी ले जाना है।
सिपाहियों को कहा कि जाओ, किसी संन्यासी को पकड़ लाओ।
... उन्होंने कहा कि यह तुम फिकर छोड़ो, हम सिकंदर के सैनिक हैं। पता है,
हम अगर पहाड़ को कहें कि चलो साथ तो चलना पड़ेगा। संन्यासी की क्या हैसियत है। हथकड़ियां डाल देंगे, जंजीरें, और बांध कर हाथ साथ कर लेंगे।
गांव के लोग हंसे, उन्होंने कहा कि मालूम होता है कि तुम्हें संन्यासी से कोई मुलाकात कभी नहीं हुई। गांव के बाहर नदी के किनारे एक संन्यासी है। तुम चले जाओ। वे सैनिक गए हैं। उन्होंने जाकर संन्यासी से कहा है कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ यूनान चलें। आपका शाही स्वागत होगा, शाही व्यवस्था होगी, आप राज्य के मेहमान होंगे, कोई तकलीफ नहीं होगी। आप चलें, हम बड़े सम्मान से आपको लेने आए हैं। उस संन्यासी ने कहाः महान सिकंदर! यह तुम कहते हो कि सिकंदर खुद भी अपने को महान कहता है? उन्होंने कहाः सिकंदर खुद अपने को महान कहता है। तो संन्यासी ने कहाः जाओ, उस पागल से कहना कि जो अपने को महान कहता है उसे अभी हीनता का भाव भूला नहीं, अभी वह भीतर हीन है, बाहर महानता की घोषणाएं किए चला जाता है। और जो

अपने को महान कहता है उससे छोटा आदमी खोजना मुश्किल है। जाओ, उससे कह देना।
उन्होंने कहाः तुम्हें पता नहीं, तुम किससे कहलवा रहे हो? लौट कर तुम्हारी गर्दन बचेगी नहीं। उस फकीर ने कहाः तुम्हें पता ही नहीं कि जिस दिन हम संन्यासी हुए गर्दन हमारी नहीं है। उसी दिन हमने जान लिया। अब उसका कोई डर भी नहीं।
सिकंदर खुद गया नंगी तलवार लेकर और उसने कहा कि अगर साथ नहीं चलोगे तो गर्दन गिर जाएगी। तुमने कहा नहीं और गर्दन नीचे गिरी। उस संन्यासी ने कहाः शायद आपको पता नहीं है, गर्दन अगर नीचे गिरेगी तो तुम भी देखोगे कि गर्दन नीचे गिर रही है और हम भी देखेंगे कि गर्दन नीचे गिर रही है। गिर जाएगी और गर्दन गिरनी है। गर्दन तुम्हारी भी गिर जाएगी, बिना गिराए भी। गिराने से भी गिर सकती है, बिना गिराए भी गिर जाएगी। यह कोई बड़ा सवाल नहीं है। तुम गर्दन गिराओ।
सिकंदर को पहली दफा एक ऐसा आदमी मिला है जो मरने से बिल्कुल भी भयभीत नहीं, जरा भी। सिकंदर ने उससे कहाः मरने से डरते नहीं हो?
उसने कहाः जब तक नहीं जानते थे स्वयं को तब तक डरते थे, तब तक मौत ही सत्य थी। और जबसे अपने को जाना है तबसे जीवन ही सत्य हो गया, तबसे मौत असत्य हो गई है। अब मरने का कोई सवाल नहीं है। अब मरने का कोई उपाय नहीं, जो गिर जाएगा वह मैं नहीं हूं।
सिकंदर ने तलवार भीतर रख ली। उसके सैनिकों ने कहाः गर्दन नहीं काटिएगा? सिकंदर ने कहाः जो आदमी मरने के प्रति ऐसा सरलता से निर्भय है, उसकी गर्दन काटनी बेमानी। और मेरी तलवार पहली दफा व्यर्थ हो गई है। उसे मैं रख कर लौट जाता हूं।
आत्मा की अमरता जान लेनी बिल्कुल और बात है, आत्मा की अमरता मान लेनी बिल्कुल और बात है। मानने वाला आदमी मौत से भयभीत होने के कारण मान लेता है कि आत्मा अमर है। मैं परमात्मा हूं, ब्रह्म हूं, इस तरह की धारणाएं कर लेने वाला आदमी भलीभांति जानता है कि यह मैं नहीं हूं। इनको थोप रहा है अपने ऊपर। थोपता रहेगा वर्षों तक, भूल जाएगा। वह भूलना वैसे ही होगा जैसे कोई भी पुनरुक्ति किसी को भी भुला दे सकती है। अगर एक ही बात दोहराई जाए, दोहराई जाए, दोहराई जाए, मनों में बैठती चली जाती है, बैठती चली जाती है। रास्ते पर विज्ञापन लगे हुए हैं बिजली के, लिखा है, बिनाका पहले तो स्थिर शब्दों में लिखा होता था, फिर मनोवैज्ञानिकों ने कहा, स्थिर शब्दों में मत लिखो, बिजली के जलते-बुझते अक्षरों में लिखो। क्यों? क्योंकि जितनी बार अक्षर जलेंगे-बुझेंगे उतनी बार रिपीट होगा, उतनी बार पढ़ना पढ़ेगा बिनाका, फिर बुझ गया। और आप चले जा रहे हैं फिर जला बिनाका और फिर पढ़ना पड़ा, फिर बिनाका, फिर बिनाका। रास्ते से गुजरते वक्त कम से कम पच्चीस दफा आप गुजरेंगे, जलेगा-बुझेगा, हजार दफे मन पर चोट होगी बिनाका। बिनाका ही ठीक टूथपेस्ट है, और मन में बैठता चला जाएगा। रेडियो खोलेंगे और बिनाका, अखबार खोलेंगे और बिनाका, फिल्म देखने जाएंगे और बिनाका। और जहां भी, जहां भी वहां बिनाका। आपको ख्याल भी नहीं रहेगा कि कब बिनाका भीतर प्रविष्ट हो गया। फिर आप दुकान पर गए हैं खरीदने और दुकानदार पूछता है कौन सा टूथपेस्ट चाहिए? आप कहते हैं, बिनाका। और आप सोचते हैं मैं सोच कर कह रहा हूं, तो आप गलती में हैं, आपसे कहलवाया जा रहा है। आपके दिमाग में ठोक-ठोक कर भर दिया गया है। वह आपसे कहलवाया जा रहा है। आप सिर्फ मशीन का काम कर रहे हैं। आप सिर्फ रिप्रोड्यूस कर रहे हैं। जो भीतर भर दिया है उसे आप रिकार्ड को वापस बाहर निकाल रहे हैं। लेकिन क्या परमात्मा और सत्य भी बिनाका की तरह भीतर प्रविष्ट हो सकते हैं?
लेकिन हमने यही किया है, परमात्मा और सत्य को भी हम बिनाका की तरह भीतर प्रविष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं। हो जाता है प्रवेश, लेकिन मन से गहरा नहीं। और शब्द से ज्यादा मूल्य का नहीं। और भीतर बैठ जाता है। और जो बैठ जाता है वह दिखाई पड़ने लगता है। प्रतीत भी होने लगता है। वह प्रतीति झूठी, वह दर्शन झूठा, सत्य का उससे कोई संबंध नहीं।

क्या करें? इसलिए पहली बात कुछ मानें मत। कुछ भी मत मानें। अंतस जीवन
के संबंध में कुछ भी मान कर मत जाना, नहीं तो कभी भीतर नहीं पहुंच सकेंगे। मानना ही मत। वहां बिलीफ सबसे ज्यादा खतरनाक है। विश्वास वहां सबसे ज्यादा बाधक है। वहां मान कर मत जाना, वहां बिना माने जाने की कोशिश करना, यह पहली बात। दूसरी बात, चित्त तो बहुत जोर से चंचल है। सब लहर ही लहर हैं वहां, विचार ही विचार हैं वहां। इतने विचार, इतने लहर से भरे चित्त में भीतर प्रवेश कैसे होगा? तो लोग कहते हैं, लड़ो चित्त से। हटाओ लहरों को। लेकिन कभी ख्याल किया है, अगर नदी बह रही हो और लहरें उठी हों और एक आदमी उसमें उतर जाए और लहरों को दबाने लगे, हटाने लगे, तो लहरें कम होंगी कि ज्यादा हो जाएंगी? लहरे ज्यादा हो जाएंगी। इस आदमी का उतरना, लहरों को दबाना, हटाना, पानी को और बेचैन कर देगा। जो आदमी भी मन को शांत करने गया है, उसने अक्सर पाया है कि मन और अशांत हो गया है। शांत करने वाले लोग और अशांत हो जाते दिखाई पड़ते हैं। धार्मिक आदमी और अशांत हो गया होता है। जितनी कोशिश करता है शांत हो जाऊं उतना टेंशन और तनाव बढ़ता चला जाता है। हटाता है मन की लहरों को, दस नई लहरें पैदा हो जाती हैं। अब तक यही समझाया जाता रहा है कि हटाओ मन को, दबाओ मन को। मन को दबाने और हटाने से कोई लहर शांत न कभी होती है, न हो सकती है।
एक बार बुद्ध एक पहाड़ के पास से गुजरते थे। दोपहर है, भरी धूप है, तेज सूरज है। वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए हैं और उन्होंने साथ के भिक्षु आनंद को कहा, मुझे बहुत प्यास लगी है, तू पानी ला सकेगा? पीछे हम जहां से आए हैं अभी एक पहाड़ी झरना मिला था, तू जा और पानी ले आ। दो-तीन फर्लांग दूर, पीछे पहाड़ के झरने पर आनंद वापस लौटा भिक्षापात्र को लेकर। जब वे आए थे तो झरना बड़ा निर्मल था, लेकिन जब आनंद वहां पहुंचा तो उसके सामने ही कुछ घुड़सवार, कुछ बैलगाड़ियां उस नाले से गुजरे थे। नाला एकदम गंदा हो गया। कीचड़ ही कीचड़ थी, पत्ते ही पत्ते थे, सूखे पत्ते, दबे पत्ते सब उभर आए थे, नीचे जमी कीचड़ सब ऊपर फैल गई थी, सारा नाला गंदा हो गया था। वह पानी पीने योग्य नहीं था। आनंद उतर गया नाले में कि थोड़ा साफ कर ले। उतरने से ही तो वे गंदे पत्ते ऊपर उठे थे। जो थोड़े-बहुत बैलगाड़ी गुजर जाने से बैठ गए होंगे आनंद के उतरने से वे भी ऊपर उठ आए हैं। उसने पानी को हटाने की, गंदगी को दूर करने की कोशिश की है। दूर करने में और पानी बेचैन और चंचल हो गया है, पानी और गंदा हो गया है। वह वापस लौट आया।
उसने बुद्ध से कहाः वह पानी पीने योग्य नहीं, पानी बहुत गंदा हो गया। बैलगाड़ियां निकल गई हैं। मैंने भी घुस कर उस पानी को शांत करने की कोशिश की थी। बुद्ध ने कहाः तू बड़ा पागल है। जब तूने देखा कि बैलगाड़ियों के निकलने से पानी गंदा हुआ तो तेरे उसमें जाने से पानी और गंदा हो जाएगा। तुझे तो किनारे चुपचाप बैठ रहना था, कुछ करना नहीं था। आनंद ने कहाः सिर्फ बैठ रहने से कुछ होता है? सिर्फ बैठ रहने से क्या होगा? कुछ तो करना पड़ेगा। हम सभी इसी भाषा में सोचते हैं कि कुछ करने से होगा। बैठ रहने से क्या होगा? बैठ रहना भी एक बहुत बड़ा करना है, यह हमें कभी ख्याल में भी नहीं आता।
बुद्ध ने कहाः तू वापस जा। तू सिर्फ बैठ रह, कुछ करना मत, देखते रहना। बैठ जाना और देखना। बैठ जाना और देखना, बैठे रहना और देखना बस इतना ही करना।
आनंद बेमन से वापस लौटा। उसे समझ नहीं पड़ा कि मेरे सिर्फ बैठ जाने से
और मात्र देखने से नाला शांत कैसे हो जाएगा? पवित्र कैसे हो जाएगा? स्वच्छ कैसे हो जाएगा? गया। बुद्ध ने कहा तो लड़ भी नहीं सका। वापस लौटा, जाकर किनारे बैठ गया। अब वह जानता है, कुछ होगा नहीं, क्योंकि बैठने से कहीं कुछ हुआ है? हम सब यही भाषा में सोचते हैं, बैठने से कहीं कुछ हुआ है? हम सोचते हैं सब कुछ करने से ही होता है। निश्चित ही बाहर की दुनिया में सब कुछ करने से ही होता है। भीतर की दुनिया में बैठ रहने से भी कुछ होता है। भीतर की दुनिया में चुप, खाली, विश्राम करने से भी कुछ होता है। भीतर की दुनिया में एफर्टलेस एफर्ट जैसी कोई चीज भी है। भीतर की दुनिया में बिना प्रयास के प्रयास भी है, बिना श्रम के श्रम भी है।

वह बैठ गया, लेकिन बेमन से बैठा है, आंख बंद कर ली है, एक वृक्ष से टिक गया है। कि जब कुछ करना ही नहीं है तो आंख बंद कर लो और बैठे रहो, घड़ी भर बाद लौट कर उठ चलेंगे। घड़ी भर बाद आंख खोली है। चलने के पहले देखा है कि पत्ते बहुत बह गए हैं, बहुत धूल नीचे बैठ गई है, पानी कुछ साफ हो गया है। हैरान हुआ! सोचा, और थोड़ी देर बैठूं, बैठने का फल हुआ है। वह फिर बैठ गया है। फिर घड़ी बीत गई है। अब वह देखता रहा है आंख खोल कर कि क्या हो रहा है? झरना बहा जा रहा है, पत्ते बहे चले जा रहे हैं, कीचड़ नीचे वापस बैठने लगी है। घड़ी दो घड़ी, पानी निर्मल और शांत हो गया। वह पानी भर कर लौट आया है। वह पानी भर कर ही नहीं लौटा, वह एक बहुत बड़े सत्य का दर्शन भी करके लौट आया है। बुद्ध के हाथ में पानी देकर वह बुद्ध के चरणों को पकड़ कर रोने लगा है और उसने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि जो नाले के साथ हुआ वही मन के साथ भी हो सकता हो? मैं मन में कूद-कूद कर बहुत शांत करने की कोशिश करता हूं। आपको शांत देखता हूं लगता है मैं भी इतना शांत कैसे हो जाऊं? बड़ी दौड़ चल रही है, भीतर बहुत लड़ाई चल रही है। शांति नहीं होती बल्कि मैं जब आया था उससे भी ज्यादा अशांत हो गया हूं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मन का झरना भी बैठे रहने से शांत हो जाए?
बुद्ध ने कहाः ऐसा ही है। और यह तुझे दिखाई पड़ सके इसलिए तुझे वापस भेजा था। मन के झरने के किनारे भी चुपचाप बैठ जा, कुछ कर मत।
जापान में मेडिटेशन को, ध्यान को जो नाम वे देते हैं, वह है, झाझेन। झाझेन का मतलब होता हैः जस्ट सिटिंग। जस्ट सिटिंग, बस बैठ रहना। कुछ करना नहीं, सिर्फ बैठ रहना। कुछ भी नहीं करना है, न नाम-जप करना है, क्योंकि वह नाले में उतर जाना है। न भगवान का नाम-स्मरण करना है, क्योंकि विक्षिप्त मन भगवान का स्मरण करके और विक्षिप्त होगा। वैसे ही तो पागल है और एक पागलपन सिर पर चढ़ जाएगा। न किसी दीये की लौ पर एकाग्र करना है, क्योंकि विक्षिप्त मन को एकाग्र करने का कोई परिणाम नहीं होता सिवाए मूर्च्छा के, सिवाय बेहोशी के। सिर्फ बैठ रहना है और मन के बहते हुए नाले को, उसकी कीचड़ को, उसकी गंदगी को, पत्तों को, जो भी है उसमें उसे चुपचाप देखना है। जस्ट सिटिंग।
दूसरा सूत्र है, मन के किनारे बैठने की प्रक्रिया में थोड़ी गति। हम तो चौबीस घंटे मन में कूदे हुए हैं। कभी मन के किनारे बैठे नहीं, कभी नहीं बैठे। इसलिए पता भी नहीं कि किनारे बैठने का क्या मतलब। चौबीस घंटे मन की धारा में खड़े हैं। इतना खड़े हैं जन्म के बाद मृत्यु तक, सुबह से सांझ तक। रात सपनों में भी मन की धारा में खड़े हैं। क्या हम यह भूल ही गए हैं कि हम अलग हैं और मन की धारा अलग है।
अगर एक बच्चा नदी में ही पैदा हो, नदी में ही तैरे, जीए, बड़ा हो, नदी में
ही सोए, जागे, जवान हो, बूढ़ा हो, तो उसे शायद भूल जाए कि मैं नदी से अलग हूं। मन की धारा में ही हम पैदा होते हैं, उसी में दीक्षित होते हैं, शिक्षा उसी में जाना सिखाती है, समाज उसी में गति सिखाता है, मां-बाप उसी में धक्के देते हैं, सब मिल कर मन की धारा में पहुंचाते हैं, क्योंकि बाहर के जगत का सारा काम मन से ही होता है। और भीतर के जगत का कोई भी काम मन से नहीं होता। बाहर जाना हो तो मन वाहन है। भीतर जाना हो तो मन से एकदम उतर जाना पड़ता है। उस रथ को छोड़ देना पड़ता है। बाहर जाने के लिए मन सवारी है, इंस्ट्रूमेंट है, साधन है। भीतर जाने के लिए मन हिंडरेंस है, बाधा है। लेकिन बाहर जाते- जाते हम भूल जाते हैं। मन की सवारी के साथ एक हो जाते हैं और ऐसा लगने लगता है मैं मन हूं। इसके किनारे बैठने का थोड़ा अभ्यास उपयोगी है।
तो दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं, चौबीस घंटे में घड़ी आधा घड़ी को द्वार बंद कर एकांत में बैठ जाना, कुछ मत करना। लड़ना भी मत मन से। लड़े कि उतर गए। यह भी मत कहना कि यह बुरा विचार चल रहा है, क्योंकि बुरा विचार चला और आपको ख्याल आया कि बुरा है, लड़ाई शुरू हो गई। बहुत सूक्ष्म तल पर शुरू हो गई। जिसे हमने बुरा कहा उससे लड़ाई शुरू हो गई। मत कहना कि यह विचार अच्छा है, क्योंकि जिसे हमने अच्छा कहा उसे पकड़ने का मन शुरू हो गया। नहीं, अच्छा है, बुरा है, जो भी है बह रहा है, हम किनारे बैठे सिर्फ देख रहे हैं। सिटिंग, जस्ट सिटिंग, बैठे हैं, और जस्ट सीइंग, बस देख रहे हैं।

एक आधा घंटे को मन के किनारे चौबीस घंटे में कोई भी बैठ कर सिर्फ देखे
और कुछ भी न करे, तो धीरे-धीरे उसे अदभुत अनुभव होने शुरू होंगे। एक तो उसे यह अनुभव पहली दफा होगा कि मैं मन से अलग हूं, यह मन यह जा रहा, मन की यह गति जा रही है, मन के ये विचारों की तरंगें जा रहीं। यह मन बह रहा है और मैं देख रहा हूं। मैं भिन्न हूं मन से। यह बोध अदभुत अर्थ रखता है अंतर की खोज में। क्योंकि जैसे ही यह पता चल गया कि मैं मन नहीं हूं, भीतर की यात्रा शुरू हो गई, हम अंदर जाने शुरू हो गए। दूसरी बात पता चलेगी कि चुपचाप किनारे बैठने से मन के विचार धीरे-धीरे बहने लगते हैं। पत्ते बह जाते हैं, कीचड़ बैठ जाती है, मन निर्मल होने लगता है। एक आधा घड़ी चुपचाप बैठ कर देखने पर पता चलता है कि विरल अब कभी कोई विचार आता है। कभी नहीं भी आता है, कभी गैप, कभी खाली जगह छूट जाती है, कोई विचार नहीं होता, पानी ही होता है। कोई पत्ता नहीं होता, कोई कीचड़ नहीं होती।
और जब निर्मल मन की थोड़ी सी झलक मिलेगी, तो इतनी शांति, इतनी गहरी साइलेंस का अनुभव होगा जिसका जीवन में कभी भी नहीं हुआ। क्योंकि वहां जहां मन शांत हुआ वहीं एक डुबकी लग जाएगी। और धीरे-धीरे कुछ दिनों के बाद मन में गैप लंबा होने लगेगा, अंतराल लंबा होगा, इंटरवल बड़ा होगा, विचार आएगा फिर नहीं आएगा। बहुत देर तक कोई लहर नहीं होगी, सन्नाटा छा जाएगा। उसी सन्नाटे में आदमी अपने भीतर डूबना शुरू होता है। भीतर की यात्रा शुरू होती है। वह जो गैप, वह जो खाली जगह है, वहीं से छलांग लगती है। वहीं से हम नीचे उतरते हैं। वहीं से हम भीतर जाते हैं। वह सीढ़ी है जहां से हम कूद जाते हैं भीतर। लेकिन वह गैप पैदा होता है जब हम चुपचाप बैठ कर मन को देखें।
तो दूसरी बात, मन के किनारे बैठने का थोड़ा अभ्यास करना। वह कुछ करना नहीं है, खाली बैठना है। या बहुत बड़ा करना भी है, क्योंकि खाली बैठना बड़ी मुश्किल बात है। एक मिनट बैठना मुश्किल बात है। आधा घंटा बहुत घबड़ाने वाला है। आज घबड़ाएगा, कल घबड़ाएगा, लेकिन बैठे ही चले जाना। जल्दी ही मन रेसिस्टेंस छोड़ देता है, विरोध छोड़ देता है। खाली जगह आनी शुरू हो जाती है। और खाली जगह में से छलांग लगनी भी शुरू हो जाती है।
और तीसरी बात, तीसरी बात है कि दिन के चौबीस घंटे में, चलते, उठते, बैठते, खाते, पीते, बात करते, सुनते, थोड़ा मन से दूर खड़े रहने का, थोड़ा मन से भिन्न होने का ध्यान रखना है। जस्ट रिमेंबरिंग, सिर्फ एक स्मृति और कुछ भी नहीं। उस आधा घंटे तो गहरा प्रयोग है कि हम बैठे हैं। चौबीस घंटे थोड़ा सा स्मरण। भोजन करते वक्त अचानक रिमेंबर करना, अचानक स्मरण करना, मैं भोजन कर रहा हूं या कि भोजन हो रहा है, यह देख रहा हूं। भोजन करते वक्त एक क्षण को स्मरणपूर्वक देखेंगे, तो पता चलेगा, भोजन शरीर कर रहा है, मैं सिर्फ देख रहा हूं। कोई गाली दे, तो एक क्षण स्मरण करना कि गाली कहां चोट कर रही है, मुझे या कहीं और? तो फौरन दिखाई पड़ेगा, मेरे अहंकार को, मेरे मन को चोट हुई है, मैं दूर खड़ा देख रहा हूं। हमारे भीतर त्रिकोण है। एक आदमी गाली दे रहा है वह, एक मेरा मन जो गाली ले रहा है वह, और एक मैं जो दोनों को देख सकता हूं। लेकिन देख नहीं पाता, क्योंकि मैं मन के साथ आइडेंटिटी किए हुए हूं, मन के साथ एक हो गया हूं।
तो दो ही रह गए हैं हमारी जिंदगी में, गाली देने वाला और मैं गाली लेने वाला। लेकिन हैं तीन--गाली देने वाला, गाली लेने वाला मेरा मन और मैं। दिन के चौबीस घंटे की प्रक्रिया में कभी भी, कभी भी एक क्षण को, सिर्फ एक... मैं यही हूं। रास्ते पर चलते वक्त देखना, मैं चल रहा हूं, और फौरन दिखाई पड़ेगा शरीर चल रहा है, मन चल रहा है, मैं कहां चल रहा हूं, मैं तो कभी नहीं चला हूं। बीमार हो गए हो, बिस्तर पर पड़े हो, तो कभी स्मरण करना, मैं बीमार हूं, तो फौरन दिखाई पड़ेगा, शरीर बीमार है, मैं तो बीमार हूं ऐसा जान रहा हूं। मेरे एक बूढ़े मित्र हैं, सीढ़ियों से गिर पड़े। बिस्तर से लगा दिए गए। चिकित्सकों ने कहाः तीन महीने तक हिलना-डुलना नहीं, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। गया उन्हें देखने, वे रोने लगे और कहा कि मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। इससे तो मर जाता तो बेहतर था। ये तीन महीने कैसे बीतेंगे? यह तो सीधा नरक हो गया? चलता-फिरता कुछ काम में लगा रहता तो भूल भी जाता, अब तो दर्द ही दर्द मालूम होता है, पूरे पैर दर्द दे रहे हैं। मैंने उनसे कहाः एक काम

करें, मैं आपके पास बैठा हूं, आंख बंद कर लें और गौर से देखें, दर्द कहां है और आप कहां हैं? दोनों एक हैं या दो हैं? आंख बंद कर लें, थोड़ा देखें, दर्द तो हो ही रहा है। इस देखने से और कोई दर्द नहीं बढ़ जाएगा।
मैं बैठ गया पास। उन्होंने आंख बंद कर ली हैं। शायद ही उन्होंने जिंदगी में कभी आंख बंद करके दो क्षण वे चुप बैठे हों। कोई नहीं बैठता, कोई बैठता ही नहीं। आंख बंद कर ली हैं। बिस्तर पर पड़े हैं। मैंने कहा कि पंद्रह मिनट बाद आंख खोल कर मुझे कहना। पंद्रह मिनट बीत गए, बीस मिनट बीत गए, तीस मिनट बीत गए, घंटा बीतने को हो गया। उनका चेहरा मैं देख रहा हूं, एकदम शांत हो गया है, रिलैक्सड हो गया है। सब रेखा, रेखा का तनाव छूट गया है। फिर मैंने उन्हें हिलाया, मैंने कहा, अब मैं जाऊं? मैं पूछना चाहता हूं, क्या हुआ? उन्होंने कहा कि इतना सुखद था कि छोड़ने का मन नहीं हो रहा था जो हो रहा था। दो बातें मुझे जीवन में पहली बार दिखी हैं। शायद अब मैं वही आदमी नहीं रहूंगा जो मैं था। एक तो जब मैंने गौर से देखा कि दर्द कहां है, तो दर्द उतना ही दूर होता चला गया, जितना मैंने गौर से देखा, दर्द और मेरी दूरी बढ़ती चली गई।
जितना हम कम गौर से देखते हैं, दर्द और मेरी दूरी कम हो जाती है, हम एक
ही हो जाते हैं। बिना अटेंशन के देखें, गौर से देखते हैं, दर्द बहुत दूर, डिस्टेंस पर कहीं और होने लगा, हो रहा है। कहीं खटक उसकी जारी है और मैं बहुत दूर खड़ा देख रहा हूं।
और जैसे ही यह पता चला कि दर्द और है मैं और हूं, एक गहरी शांति भीतर छा गई, जो मेरे जीवन में कभी भी नहीं छाई थी। मैंने उनसे कहाः तीन महीने भगवान ने मौका दिया है, इन तीन महीने खाट पर भी पड़े रहें और भीतर इस प्रयोग को जारी रहने दें। हो सकता है जो वर्षों की साधना से न हो, वह इन तीन महीनों में हो जाए। तीन महीने बाद मैं उन्हें मिला। उन्होंने कहा कि अब मैं भगवान को पूरे मन से धन्यवाद दे पाता हूं कि तूने मेरे पैर तोड़े, सीढ़ियों से गिराया, तेरी बड़ी कृपा है! नहीं तो मैं ऐसे ही मर जाता, बिना यह जाने कि मैं कुछ और ही हूं, जिसका कोई पता नहीं।
तो तीसरी बात, जीवन के छोटे-मोटे अनुभव में, चौबीस घंटे में कभी क्षण
भर को रास्ते पर चलते हुए, दफ्तर में बैठे हुए, किसी से बात करते हुए, एकदम चौंक कर अवेयर हो जाना, यही मैं हूं या कुछ फर्क है? धीरे-धीरे फर्क दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। और धीरे-धीरे फर्क चौबीस घंटे में अनस्यूत हो जाता है और तब पता चलता है कि मैं सिर्फ साक्षी हूं, बाकी सब जो हो रहा है वह मुझसे बाहर है।
ये तीन सूत्र अगर पूरे हो जाएं--ज्ञान छोड़ देना, मन के किनारे चुपचाप बैठना, और जीवन के प्रत्येक पल में कभी-कभी जाग कर देखना कि मैं कौन हूं? कहां हूं? अगर ये तीन सूत्र कोई पूरे करे, तो अचानक भीतर की दुनिया में प्रवेश हो जाता है। जहां हम कभी नहीं गए वहां पहुंच जाते हैं। और एक बार वहां पहुंच जाएं फिर कोई कठिनाई नहीं। फिर तो क्षण भर में कभी भीतर, कभी बाहर हो सकते हैं। और जो मनुष्य भीतर जाने का रहस्य जान जाता है वह जीवन के सारे रहस्यों का मालिक हो जाता है। दुख उसके लिए अर्थहीन हो जाते हैं। मृत्यु उसके लिए असत्य हो जाती है। और आनंद उसकी श्वास-श्वास बन जाती है। और अमृत, अमृत उसके कण-कण में छा जाता है। ऐसे हुए बिना जीवन व्यर्थ है। ऐसे नहीं हम हो पाएं और प्रतीक्षा करते रहे हैं कि कोई और हमें दे जाएगा, तो नहीं होगा। हमें कुछ करना पड़ेगा।
ये तीन बातें मैंने कहीं, इन पर थोड़ा प्रयोग करेंगे। मुझे सुनने से नहीं, इन पर प्रयोग करने से कुछ होगा। और कुछ होगा तो जो मैं कह रहा हूं वह समझ में आएगा। नहीं तो वह भी ठीक से समझ में नहीं आ सकता है कि मैं आपसे क्या कह रहा हूं। एक बहुत दूसरी दुनिया की बात कह रहा हूं। जहां हम सब जा सकते हैं, लेकिन जाते नहीं। एक और ही लोक की खबर दे रहा हूं, जहां हम बिल्कुल किनारे खड़े हैं। झांकें और वह हमें मिल जाए। लेकिन नहीं झांकेंगे तो वह नहीं मिल सकता है।
संध्या आपके प्रश्नों के जो उत्तर होंगे वह मैं दूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
आठवां प्रवचन

आध्यात्मिक साम्यवाद

चार दिनों की चर्चाओं के संबंध में बहुत सारे प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। आज ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों पर चर्चा कर सकूं ऐसी कोशिश करूंगा। और इसलिए बहुत थोड़े में उत्तर देना चाहूंगा।

एक मित्र ने पूछा हैः क्या आप प्रच्छन्न साम्यवादी हैं?

प्रच्छन्न होने की कोई जरूरत नहीं है, मैं स्पष्ट ही साम्यवादी हूं। किसने कहा कि प्रच्छन्न साम्यवादी हूं? मेरी दृष्टि में जो भी आदमी धार्मिक है वह साम्यवादी हुए बिना नहीं रह सकता। सिर्फ अधार्मिक आदमी साम्यवादी हुए बिना रह सकता है। जिस व्यक्ति को भी यह ख्याल है कि सबके भीतर एक ही परमात्मा का वास है, वह यह मानने को राजी नहीं हो सकता कि समाज में अर्थ की इतनी असमानताएं हों, इतनी गरीबी, इतनी अमीरी, इतने फासले हों। वह यह भी मानने को राजी नहीं हो सकता कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को विकास का समान अवसर न मिल सके।
साम्यवाद का एक ही अर्थ है कि हम प्रत्येक मनुष्य को बराबर मूल्य देना चाहते हैं और उसके जीवन की जो छुपी संभावनाएं हैं, उनके विकास का बराबर अवसर देना चाहते हैं। बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट और लाओत्सु, उन्होंने कभी साम्यवादी शब्द सुना भी नहीं होगा, लेकिन मेरी दृष्टि में वे सभी कम्युनिस्ट थे।
दुनिया का कोई भी अच्छा आदमी कभी भी कम्युनिस्ट न रहा हो, ऐसा होना मुश्किल है, असंभव। उन सबके मन में एक ही कामना है कि सारी मनुष्यता समान तल पर कैसे पहुंच सके। उन्होंने आत्मा की समानता की घोषणा की कि एक-एक व्यक्ति के भीतर बराबर समान स्तर की, समान मूल्य की आत्मा है, समान मूल्य का परमात्मा है। लेकिन वह घोषणा व्यर्थ चली गई। क्योंकि जब तक आर्थिक परिस्थितियां समान न हों, आत्मा की समानता को तय करना बहुत मुश्किल है। और जब तक बाहर भी समानता की सुविधा न हो, भीतर की समानता सिर्फ शब्द रह जाती है।
क्राइस्ट और बुद्ध और महावीर और लाओत्सु हार गए चिल्ला कर, क्योंकि बाहर की परिस्थितियां बिल्कुल ही असाम्यवादी हैं, असमानता की हैं, तो भीतर की समानता की बात सिर्फ शास्त्रों में रह जाती है।
मुझे लगता है कि आने वाली दुनिया में हम बाहर के जीवन की सारी असमानताओं को मिटा सकेंगे, और तभी पृथ्वी पर पहली बार ठीक धार्मिक संसार का निर्माण होगा, उसके पहले नहीं। जब तक समता स्थापित नहीं होती तब तक भीतर के समान परमात्मा का अनुभव भी बहुत मुश्किल है। और यह भी मेरी दृष्टि है कि जब तक गरीबी नहीं मिटती तब तक गरीब आदमी परमात्मा की तरफ वस्तुतः उत्सुकभी नहीं हो सकता है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि उनके कोई मित्र गरीब हैं, वे भी ईश्वर को पाना चाहते हैं। लेकिन रोटी-रोजी की तकलीफ में ही पड़े रहते हैं। क्या वे भी ईश्वर को पा सकते हैं?

यह सवाल ही कितना दुखद है और कितना पीड़ादायी है। एक आदमी ईश्वर को पाना चाहे, लेकिन रोटी-रोजी कमाने में ही जीवन गंवा देना पड़े, और फिर भी वह न मिल पाए। ऐसा हमने कुरूप, ऐसा हमने अजीब सा समाज निर्मित किया है कि कोई ईश्वर की खोज भी करने चला जाए, जाना चाहे, तो रोटी जैसी छोटी चीज बाधा बन जाए।
निश्चित ही रोटी बाधा बन सकती है। जीसस ने कहा हैः मैन कैन नॉट लिव बाइ ब्रेड अलोन। आदमी अकेली रोटी पर नहीं रह सकता। इसके साथ एक बात और जोड़ देनी जरूरी है कि आदमी रोटी के बिना भी नहीं जी सकता है। अकेली रोटी भी

काफी नहीं है। रोटी मिलते ही और आवश्यकताएं शुरू हो जाती हैं। लेकिन अगर रोटी न मिले, तो सब आवश्यकताएं समाप्त हो जाती हैं और आदमी को बिल्कुल शरीर के तल पर जीना पड़ता है।
गरीब आदमी का सबसे बड़ा दुख है कि वह शरीर के तल के अतिरिक्त और कहीं जीने का रास्ता नहीं पाता। गरीब आदमी की सबसे बड़ी मजबूरी है कि उसे शरीर के आस-पास ही जीना पड़ता है। क्योंकि जहां जरूरत है--अगर पैर में कांटा गड़ा है, तो सारी आत्मा पैर के कांटे के पास ही इकट्ठी हो जाती है। सारी चेतना, सारी कांशसनेस पैर के कांटे में उलझ जाती है। सारा शरीर भूल जाता है, बस वह कांटा ही दृष्टि में और ध्यान में रह जाता है। उस समय कांटा ही परमात्मा हो जाता है।
गरीब आदमी की बड़ी गरीबी उसके धन की कमी नहीं है, मकान की कमी नहीं है, बड़ी गरीबी यह है कि उसे मजबूरी में शरीर के आस-पास ही जीना पड़ता है--कपड़े नहीं हैं, खाना नहीं है; बच्चा बीमार है, दवा नहीं है। और हमने जो समाज बनाया है, उसमें अधिक लोगों को हम ईश्वर की तरफ जाने का कोई मौका नहीं छोड़े।
दुनिया से गरीबी मिटे तो ही दुनिया में ईश्वर की खोज व्यापक पैमाने
पर हो सकती है। दुनिया से गरीबी मिटे तो हर आदमी के लिए ईश्वर एक प्यास बन ही जाएगी। क्योंकि तब छोटी प्यासें पूरी हो जाएंगी। और जैसे ही छोटी प्यासें पूरी हो जाती हैं, छोटी जरूरतें निपट जाती हैं, बड़ी जरूरतें जिंदगी में पैदा होती हैं। जैसे ही शरीर का काम तृप्त हो जाता है वैसे ही आत्मा की यात्रा शुरू होती है।
मैं कहूंगा उन मित्र से जिन्होंने पूछा है कि वह गरीब आदमी क्या करे ईश्वर को पाने के लिए?
बहुत मुश्किल बताना मालूम पड़ता है कि गरीब आदमी ईश्वर को पाने के लिए क्या करे। यह ऐसे ही है जैसे कोई आदमी कहे कि एक बीमार आदमी भी कुश्ती लड़ना चाहता है, वह बीमार आदमी कुश्ती लड़ने के लिए क्या करे? वह बीमार आदमी शरीर से बीमार है। वही तो अड़चन बन गई है उसकी। गरीब आदमी की भी वही अड़चन बन गई है कि वह शरीर के तल पर बिल्कुल असमर्थ है। वह असमर्थता इतनी ज्यादा है कि उसे पूरा करना पहले जरूरी है, तभी पीछे उसकी कोई और आकांक्षा पैदा हो सकती है।
और अगर गरीब आदमी भगवान की खोज में भी जाए, अगर वह मंदिर में हाथ जोड़
कर भी खड़ा हो, और हम उसके हृदय को खोल सकें, तो हम पाएंगे कि वहां प्यास परमात्मा की नहीं है, वहां हाथ जा.ेड कर वह फिर रोटी मांग रहा है, नौकरी मांग रहा है, कपड़े मांग रहा है। भगवान के सामने भी वह भगवान के लिए जा सकता। उसकी जरूरतें बहुत नीचे की हैं। और इसमें वह कसूरवार नहीं है, इसमें हम सब जिम्मेवार हैं, इसमें हमारा पूरा समाज जिम्मेवार है।
हम कुछ लोगों को गरीब होने के लिए मजबूर किए हैं और हमने जो व्यवस्था चुनी है वह ऐसी है कि उसमें कुछ लोग अनिवार्य रूप से अमीर हो जाएंगे और अधिक लोग अनिवार्य रूप से गरीब हो जाएंगे। और जो अमीर होंगे उनका अमीर होना गरीबों के गरीब होने पर ही निर्भर होगा। यहां जितनी गरीबी बढ़ती जाएगी वहां उतनी अमीरी बढ़ती जाएगी। यह व्यवस्था एकदम अवैज्ञानिक, अधार्मिक, पापपूर्ण। इस पापपूर्ण व्यवस्था को तोड़ना जरूरी है।

लेकिन वे मित्र तो पूछेंगे कि मैं तो अभी गरीब हूं, यह व्यवस्था कब टूटेगी और कब यह व्यवस्था बदलेगी? मैं क्या करूं?

उनसे इतना ही कह सकता हूं, अगर सच में ही उनके मन में ईश्वर की प्यास पैदा हो गई है, तो मैंने तीन दिनों में जिन सूत्रों की बात कही है, आज सुबह विशेषकर जिन तीन सूत्रों की बात कहा हूं, उन पर थोड़े प्रयोग करें। कठिन होगा, लेकिन अगर संकल्प मजबूत हो, तो शरीर की जरूरतों को भूला जा सकता है और भीतर प्रवेश किया जा सकता है। हालांकि बहुत कठिन है।
उपनिषद में एक कथा हैः उद्दालक ऋषि का बेटा गुरु के आश्रम से शिक्षा पाकर वापस लौटा है। गुरु के आश्रम में उसने वेदांत की ऊंची से ऊंची बातें

सीखीं, बह्मज्ञान की चर्चाएं सुनीं। वह घर आया। और जैसे कि युवक ज्ञान से भरे हुए घर लौटते हैं विश्वविद्यालय से, ऐसा ही विश्वविद्यालय से ज्ञान से भरा हुआ घर लौटा। घर आकर उसने सुबह-सांझ ज्ञान की बातें शुरू कर दीं। वह, वह जब भी बात उठती, ब्रह्म की बात ले आता। उसका पिता बहुत हंसता।
उस बेटे ने पूछा, आप हंसते क्यों हैं? उसने कहा कि थो.ड़े दिन बाद तुम्हें बताऊंगा। तुम पंद्रह दिन का उपवास कर लो। उसके बेटे ने कहाः यह किसलिए? उसके बाप ने कहाः कुछ जरूरी बात तुम्हें बतानी है, इसलिए उपवास करना जरूरी है। उस बेटे ने उपवास किया। तीन दिन की भूख के बाद उसका बाप उससे पूछता है, क्या सोच रहे हो? वह कहता, सिवाय भूख के और कुछ सोच में नहीं आता। सिर्फ रोटी ही रोटी ख्याल में आती है। सात दिन बीत गए, बाप पूछता है, क्या सोच रहे हो? फिर पंद्रह दिन बीत गए, बाप ने कई बार पूछा। एक दफा उसने नहीं कहा कि ब्रह्म का विचार कर रहा हूं। पंद्रहवें दिन तो वह गुस्से में आ गया कि क्या बार-बार पूछते हैं कि क्या सोच रहा हूं, सिवाय भूख के और कुछ भी नहीं सोच रहा हूं। सिवाय रोटी के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।
उसके पिता ने कहाः ब्रह्म का कोई विचार नहीं आता? उसके बेटे ने कहाः ब्रह्म? पंद्रह दिन से कोई भी स्मरण नहीं है। तो उसके बाप ने कहाः मैं तुझे एक शिक्षा देना चाहता हूं, अन्न पहला बह्म है।
पहली जरूरत पूरी न हो तो ऊपर की बातें सब व्यर्थ हैं। तीन दिन खाना खाया है, फिर बह्मज्ञान वापस लौट आया है। इसका यह मतलब नहीं है कि बह्मज्ञान झूठा है। इसका कुल मतलब इतना है कि जीवन-चेतना पहली बुनियादी जरूरतों को पहले पूरा करती है, फिर बाद की जरूरतें हैं, ऊंची जरूरतें हैं। हम एक मंदिर बनाते हैं, तो हम नींव के पत्थर पहले रखते हैं, पहले शिखर नहीं बनाते। पहले शिखर बनाने का क्या अर्थ है? नींव के पत्थर पहले रखते हैं, हालांकि नींव जमीन में दब जाएगी, कोई देखने नहीं आएगा। कोई मंदिर बनाने वाला सोच सकता है कि नींव के पत्थर क्यों भरते हैं, इसे तो कोई देखने आता नहीं है, नींव जमीन में दब जाएगी। लेकिन उसी पर पूरा मंदिर खड़ा होगा। और नींव के पत्थर ही अगर कमजोर हों, या न हों, तो शिखर के खड़े होने की कोई उम्मीद नहीं।
शरीर बुनियाद है मनुष्य के जीवन की, आत्मा शिखर है। शरीर ही मुश्किल में पड़ा हो तो शिखर की तरफ जाना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन सामूहिक रूप से तो बहुत मुश्किल है कि गरीब समाज धार्मिक हो सके, लेकिन एक-एक व्यक्ति के तल पर चेष्टा की जा सकती है। लेकिन बड़ा श्रम लगेगा, व्यर्थ श्रम लगेगा। और वह श्रम यह होगा कि शरीर को थोड़ा विस्मरण करने की जरूरत पड़ेगी। रोज की सामान्य जरूरतों को घंटे भर के लिए कम से कम भूल जाने की चेष्टा करनी पड़ेगी। मुश्किल पड़ेगी यह बात। धनी को भूल जाना बहुत सुलभ है। और इसीलिए महावीर और बुद्ध राजाओं के बेटे सहज ही साधना की गहराइयों में जा सके, सहज ही।
आज अमरीका में संभावना है, रूस में भी कल संभावना है कि धर्म का एक बिल्कुल नवोत्थान हो जाए। और उसका कारण यह है कि सब जरूरतें पूरी हो गईं, आदमी पूछता है, शरीर की सब जरूरतें पूरी हुईं, अब क्या? और अब पहली दफा उसे लगता है और कोई नई दिशा मिलनी चाहिए, जीवन की चेतना जहां विकास करे। लेकिन व्यक्तिगत रूप से गरीब से गरीब आदमी भी परमात्मा की तरफ जा सकता है। सामूहिक रूप से नहीं। जाने में संकल्प की जरूरत पड़ेगी। जाने में ध्यान रखना पड़ेगा--भूख का भी ध्यान रखना पड़ेगा। अगर भूख भी पेट में है, तो ध्यान रखना पड़ेगा कि भूख मुझे है या मैं भूख को जान रहा हूं? इस पर थोड़े श्रम उठाने पड़ेंगे। थोड़ी साधना करनी पड़ेगी।
जीवन की छोटी-छोटी जरूरतें मेरे बाहर हैं। पूरी नहीं हो रही हैं, तकलीफ है, उनका दंश है, घाव है, वह घाव मुझको ही लग रहा है या मैं अलग हूं? कठिन होगा।
स्वस्थ शरीर में शरीर को भूल जाना बहुत आसान है। बीमार शरीर में शरीर
को भूलना थोड़ा मुश्किल है। लेकिन भूला जा सकता है। शरीर से ऊपर उठा जा सकता है। दुख में भी हम जाग सकते हैं, सुख में भी जाग सकते हैं। दुख में भी हम जान सकते हैं कि दुख बाहर है, सुख में भी जान सकते हैं, सुख बाहर है और

मैं पृथक हूं। और एक ही स्मरण आ जाए कि मैं पृथक हूं, तो जीवन में धर्म की शुरुआत हो जाती है।
नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कोई आदमी को धार्मिक बनना हो तो पहले
वह धन कमाने की यात्रा पर निकल जाए। न, यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि पहले वह सम्राट हो जाए, तब धार्मिक हो सकेगा। मैं समाज के तल पर जरूरत की बात कह रहा हूं कि गरीब समाज का धार्मिक होना कठिन है, मुश्किल है। गरीब व्यक्ति हो भी सकता है।
सिकंदर हिंदुस्तान की तरफ आता था। जीतने निकला था सारी दुनिया को। रास्ते में यूनान छूटता था, तब किसी ने खबर दी कि पास ही एक नदी के तट पर एक डायोजनीज फकीर है, नग्न रहता है। सुना है सिकंदर कभी उसके बाबत। लोग कहते हैं कि बड़े से बड़े सम्राट भी उसके सामने फीके हैं। सिकंदर ने कहाः क्या? क्या है उस फकीर के पास? उन लोगों ने कहाः यही मजे की बात है, उसके पास कुछ भी नहीं है, एकदम नग्न नदी के तट पर वह पड़ा है। सिकंदर ने कहाः फिर मैं उसे देखना चाहूंगा।
सिकंदर गया है, सुबह का समय है, धूप निकली है, सर्दी के दिन हैं। नंगा डायोजनीज लेटा है रेत में। सिकंदर जाकर खड़ा हो गया है और डायोजनीज से उसने कहा है, आपके पास कुछ भी नहीं है और आप इतने आनंद से लेटे हुए हैं? डायोजनीज ने कहाः तुम्हारे पास सब कुछ है, तुम आनंद में हो?
सिकंदर एक बार संदेह में खड़ा रह गया। कहा हंस कर कि ठीक कहते हो, सब कुछ है, लेकिन आनंद तो नहीं है। तो डायोजनीज ने कहाः सब कुछ होने से आनंद के होने का क्या संबंध है? और अगर सब कुछ होने पर भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि आनंद नहीं मिला, और अभी भी तुम और बड़े साम्राज्यों को जीतने जाते हो, तो बड़े पागल हो! देखता हूं कई दिन से फौज-फाटे चले जा रहे हैं, तोपें जा रही हैं, सैनिक जा रहे हैं। कहां निकले हो? क्या इरादे हैं?
सिकंदर ने कहाः पहले एशिया माइनर जीतना है, फिर हिंदुस्तान जीतना है, फिर सारी दुनिया जीत कर वापस लौटना है।
डायोजनीज ने कहा, क्या मैं पूछूं, कि सारी दुनिया जीत कर क्या करोगे? अंत में क्या उद्देश्य है?
सिकंदर ने कहाः बस, आखिर में सब जीत कर आराम करना चाहता हूं। शांति से आराम करना चाहता हूं। वह डायोजनीज जोर से अपने कुत्ते को बुलाया जो उसके झोपड़े में बैठा था कि सुन, इधर आ। सिकंदर तो बहुत हैरान हो गया! डायोजनीज का कुत्ता भागा हुआ आया। उसने कहा कि देख पागल, कुत्ते से कहा, सिकंदर को देख, यह कह रहा है कि सारी दुनिया जीत लूंगा तब आराम से रहूंगा। और हम दोनों यहां बिना दुनिया को जीते आराम से रह रहे हैं। हमने बड़ी गलती कर दी, हम भी दुनिया जीत लेते! सिकंदर से कहा, लेकिन मैं पूछता हूं, अगर आराम से ही जीना है, तो मैं सबूत हूं कि आराम से जी रहा हूं। तो तुम भी आ जाओ, यह झोपड़ा काफी बड़ा है, हम दोनों इसमें समा जाएंगे। तुम भी यहीं आराम करो। आओ, लेट जाओ।
सिकंदर ने कहाः निमंत्रण के लिए धन्यवाद। और हिम्मत का निमंत्रण है, लेकिन बीच से कैसे लौट सकता हूं? अभी तो जाना पड़ेगा। निकल ही पड़ा हूं, तब तो दुनिया जीतनी पड़ेगी।
डायोजनीज ने कहाः तुम्हें हमें पता है कि दुनिया की यात्रा कभी पूरी नहीं होती। और जिसे लौटना हो आधे से ही लौटना पड़ता है। और क्या भरोसा, जिंदगी पूरी हो जाए और यात्रा पूरी न हो, तुम न आ पाओ? सिकंदर ने कहाः नहीं, कोशिश करूंगा। लौटते वक्त फिर मिलूंगा।
डायोजनीज अपने कुत्ते से फिर कहने लगा, ध्यान रखना, यह वायदा दे रहा है, हालांकि आदमी का क्या वायदे का भरोसा? आज है कल मौत आ जाए। क्या भरोसा? फिर सिकंदर ने कहाः मैं बहुत खुश हुआ मिल कर। इतना हिम्मतवर आदमी मैंने कभी नहीं देखा। वह अभी भी लेटा है। सिकंदर ने कहाः मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं? मेरे पास सब है।
डायोजनीज ने कहाः मेरे लिए क्या कर सकते हो, यह तुमने बड़ा कठिन सवाल पूछा। क्योंकि मेरे लिए करने को कुछ भी नहीं बचा है, सिर्फ एक कृपा करो, थोड़ा धूप छोड़ कर खड़े हो जाओ। धूप आ रही थी, तुम बीच में बाधा बन गए हो। इतना

भर कृपा करो, थोड़ा धूप छोड़ दो। और ध्यान रहे, किसी की भी धूप मत छीन लेना।
तुम आदमी खतरनाक मालूम पड़ते हो। तुम किसी की भी धूप छीन सकते हो। तुम्हारे हाथ में तलवार खतरनाक है।
सिकंदर हंसता हुआ, लेकिन मन में रोता हुआ विदा हुआ। बात तो चोट खा गई उसे कि एक आदमी जिसके पास कुछ भी नहीं है, आनंद को उपलब्ध हुआ है।
हो सकता है एक आदमी आनंद को उपलब्ध जिसके पास कुछ भी न हो। लेकिन बड़े साहस की, बड़े संकल्प की जरूरत है। जब कुछ पास न हो तब यह जानने की कि कुछ भी मिलने से कुछ न मिलेगा, बहुत कठिन है। जब सब मिल जाए तब यह जान लेना बहुत सरल है कि सब मिलने से कुछ भी नहीं मिल जाता है।
कुछ लोग कोशिश करें, तो नितांत दीनता में भी जान सकते हैं कि सब मिलने
से भी कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन बहुत थोड़े लोग इतना संकल्प कर सकते हैं। लेकिन सब किसी को भी मिल जाए, साधारण से साधारण संकल्प के आदमी को समस्त मिल जाए, सारी पृथ्वी का राज्य मिल जाए, सब मिल जाए, तो उसे भी दिखाई पड़ सकता है कि कुछ भी नहीं मिला। सब मिल गया और कुछ चूक गया है। कुछ जिसकी प्यास थी वह नहीं मिल पाया है।
सिकंदर मन में रोता हुआ, ऊपर से हंसता हुआ लौटा।
हम सभी ऐसे हैं, मन में रोते हैं, ऊपर से हंसते रहते हैं।
उसके सेनापतियों ने उससे कहा भी कि आपकी हंसी आज बड़ी झूठी मालूम पड़ती है। फिर सिकंदर हिंदुस्तान के बाद वापस लौटा लूट कर और बहुत संपत्तियां लेकर। सोचा था कि डायोजनीज से जरूर मिलता चला जाऊंगा। लेकिन रास्ते में सिकंदर मर गया, पहुंच नहीं पाया।
हममें से बहुत लोग भी बाहर की खोज की यात्रा पर निकलते हैं, रास्ते में ही डूब जाते हैं, भीतर के घर तक पहुंच नहीं पाते। सिकंदर भी नहीं पहुंच पाया। मरते वक्त ख्याल तो आया होगा डायोजनीज का कि कहा था उस फकीर ने, पता नहीं, लौट पाओ, न लौट पाओ। अब उसका कुत्ता और वह दोनों हंस रहे होंगे कि देखो, सिकंदर नहीं लौट पाया।
लेकिन संयोग की बात कि जिस दिन सिकंदर मरा उसके घंटे भर बाद डायोजनीज
भी मर गया। और यूनान में दोनों के मर जाने के बाद किसी होशियार आदमी ने एक कहानी प्रचलित कर दी कि उन दोनों का वैतरणी पर स्वर्ग में प्रवेश करते वक्त फिर मिलना हो गया। सिकंदर आगे है घंटे भर पहले मरा है, पीछे डायोजनीज है घंटे भर बाद मरा है। डायोजनीज नंगा फकीर था जब सिकंदर मिला था। सिकंदर बहुत कीमती आभूषणों और वस्त्रों से ढंका था। लेकिन आज सिकंदर भी नंगा है। डायोजनीज तो नंगा था ही, वह वैसा का वैसा है।
सिकंदर बहुत डरने लगा मन में। पीछे से खड़बड़ की आवाज सुनी, लौट कर देखा, डायोजनीज आ रहा है। उसके तो प्राण निकल गए होंगे। नंगा हूं आज, डायोजनीज ने उसी दिन सलाह दी थी कि आ जाओ, यहीं लेट जाओ, जगह काफी है। आज डायोजनीज फिर जोर से हंसेगा। डायोजनीज हंसने ही लगा। सिकंदर रुका। डायोजनीज के हंसने में कहीं डर न जाऊं, इसलिए उसने भी हंसने की कोशिश की। और जोर से हिम्मत बढ़ाने के लिए कहा, अपनी हिम्मत बढ़ाने के लिए। जैसे अंधेरे में आदमी जोर से गीत गाने लगे और सीटी बजाने लगे, ऐसा जोर से डर कर उसने भीतर हिम्मत बढ़ाने के लिए कहा, अच्छा, डायोजनीज हो! कितनी खुशी की बात है, एक बादशाह का एक फकीर से मिलना वैतरणी पर शायद ही पहले कभी हुआ हो?
डायोजनीज खूब हंसने लगा, उसने कहा, बिल्कुल ठीक कहते हो। लेकिन थोड़ी
सी भूल करते हो। भूल यह करते हो कि कौन बादशाह है और कौन फकीर है, इसमें भूल करते हो। बादशाह पीछे है, फकीर आगे है। सिकंदर आगे है, डायोजनीज पीछे है। डायोजनीज कहने लगा, तुम क्या लेकर आए हो, सब खोकर आए हो। और मैं कुछ भी खोकर नहीं आया, क्योंकि जो भी खोया जा सकता था वह मैंने खुद ही छोड़ दिया था। मैंने वही बचाया था जो खोया नहीं जा सकता। और तुमने वह सब इकट्ठा किया था जो खो ही जाएगा। कहां हैं तुम्हारे राज्य? कहां हैं तुम्हारे धन? कहां हैं तुम्हारे महल? कहां हैं तुम्हारी विजय की कहानियां? वे वेशभूषाएं कहां गईं? वे कीमती वस्त्र कहां गए? नग्न खड़े हो आज। हम यही सोच कर पहले ही नग्न हो गए थे कि न मालूम कब सब छिन जाए, तो हम नंगे ही दीन-हीन पड़े थे। तुमने उस दिन समझा होगा इसके पास कुछ भी नहीं है। हमने वही बचा लिया था जो

बचता है अंत में। वह छोड़ दिया था जो छूट ही जाता है। और ध्यान रहे, जो चीज छूटनी है, जब छुड़ाई जाती है, तो दुख देती है और जब छोड़ दी जाती है तो सुख दे जाती है।
नहीं, गरीब भी धार्मिक तो हो सकता है, लेकिन बड़े संकल्प की जरूरत है, बड़े साहस की। लेकिन यह मेरा मानना है कि समाज, गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता है। इतना संकल्प कहां से जुटाएंगे? इतनी साधना कहां से लाएंगे? समाज तो समृद्ध होना ही चाहिए। समाज की समृद्धि जितनी बढ़ेगी, उतने धर्म के अवसर, संभावना बढ़ेगी। और इसलिए मेरी दृष्टि में पृथ्वी उस क्षण के करीब पहुंच रही है जहां हम गरीबी को मिटा देंगे, जहां हम दरिद्रता को पोंछ डालेंगे और जहां हम एक-एक आदमी की शरीर की सारी जरूरतें पूरी कर देंगे, उस दिन कितनी मानव चेतना इकट्ठी होकर परमात्मा की तरफ गमन करेगी, इसे आज कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन पृथ्वी अब तक अधार्मिक रही है। कुछ लोग धार्मिक हुए हैं। मनुष्य अधार्मिक रहा है, कुछ मनुष्य धार्मिक हुए हैं।
किसी दिन अगर हम जमीन को सुख और शांति और समृद्धि से भर दें, तो समाज धार्मिक होगा, व्यक्ति नहीं। व्यक्तियों के धार्मिक होने से कुछ होता भी नहीं है। कितना ही बड़ा व्यक्ति हो--महावीर हो, बुद्ध हो, कृष्ण हो, क्राइस्ट हो, क्या होता है? एक तारा चमक जाता है और फिर अंधेरे में खो जाता है। और हमारा घना अंधेरा अपनी राह पर चलता रहता है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है।
एक-एक व्यक्तियों के धार्मिक होने से मनुष्य का यह अधर्म का इतना अंधकार नहीं मिटेगा। सामूहिक तल पर, कलेक्टिव कांशसनेस के तल पर, सामूहिक चेतना के तल पर धर्म का अभ्युदय होगा, करोड़-करोड़ लोग एक साथ प्रभु की पुकार और प्यास से भरेंगे और खोज से भरेंगे जिस दिन उसी दिन पृथ्वी का सारा वातावरण बदलेगा। उसके पहले नहीं बदल सकता है।
बहुत घना अंधकार है। एक-एक दीया जलाने से नहीं टूटेगा। हजार-हजार, करोड़-करोड़ दीये जलने की जरूरत है कि अंधेरा टूट जाए। बहुत घनी दुर्गंध है, एकाध फूल खिल जाए पृथ्वी पर, सुगंध नहीं फैलेगी। गांव-गांव, घर-घर, एक-एक आदमी के प्राण पर फूल खिलेगा, तो सुगंध फैलेगी।
मनुष्य बहुत दुख में जीया है और बहुत पाप में और बहुत कष्ट में, बहुत चिंता में। उस चिंता, उस कष्ट, उस पाप को हम गरीबी को मिटाए बिना नहीं मिटा सकते हैं। इसलिए यह मुझसे मत पूछें कि मैं प्रच्छन्न कम्युनिस्ट हूं, छिपा हुआ कम्युनिस्ट? कोई नासमझ ऐसा कहता होगा। मैं तो बिल्कुल सीधा कम्युनिस्ट हूं।
लेकिन कम्युनिस्ट होने का मेरा मतलब किसी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य होने से नहीं है। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब यह नहीं है कि जो चीन में हो रहा है वह हिंदुस्तान में हो। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब यह नहीं है कि रूस में एक करोड़ आदमियों की हत्या की गई तो हिंदुस्तान में की जाए। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब यह है कि करुणा, प्रेम और सदभाव के जन्म से और लोकतांत्रिक जीवन-पद्धति के मार्ग से हम जितनी शीघ्रता से जीवन के पुराने ढांचे को तोड़ सकें उतना अच्छा है।
और कोई कम्युनिस्ट जो हिंसक है, मेरी दृष्टि में ठीक अर्थों में कम्युनिस्ट नहीं है, साम्यवादी नहीं है। क्योंकि हिंसा किसकी करोगे? जिन पर करुणा करके एक सुख का समाज निर्मित करना है उनकी ही। रूस में एक करोड़ लोगों की हत्या स्टैलिन के समय में हुई है। ये एक करोड़ लोग अरबपति तो नहीं हो सकते। एक करोड़ अरबपति होते रूस में तो फिर कहना ही क्या था? ये एक करोड़ लोग कौन होंगे? ये साधारण मजदूर थे, गरीब किसान थे, भिखमंगे थे। इनमें सब सम्मिलित थे। एक करा.ेड लोगों की हत्या के बाद अगर जबरदस्ती हम समाजवाद लाएं, वह कितनी देर टिकेगा? और स्टैलिन के मरने के बाद जैसे ही सख्ती थोड़ी ढीली हुई है, वह समाजवाद जो जबरदस्ती लाया गया था, बिखरना शुरू हो गया है। स्टैलिन के मरने के बाद रूस के कदम पूंजीवाद की तरफ रोज-रोज पड़े हैं। एक बहुत चमत्कारपूर्ण घटना घटनी शुरू हुई है। अमरीका रोज-रोज समाजवाद की तरफ कदम उठा रहा है, रूस रोज-रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठा रहा है। भविष्य में संभावना इस बात की है कि वे दोनों एक जगह आकर मिल जाएं, जहां रूस पूंजीवाद

से समझौता कर ले, जहां अमरीका समाजवाद से समझौता कर ले, और एक बीच की व्यवस्था पैदा हो जाए। शायद वही सम्यक और स्वाभाविक व्यवस्था भी हो। हिंसा से कोई समता नहीं लाई जा सकती है, क्योंकि हिंसा का भाव ही समता
का विरोधी है। समता तो लाई ही जा सकती है करुणा से, प्रेम से, और इसलिए धर्म की एक चेतना फैलाने की जरूरत है।
मेरा कम्युनिस्टों से इस मामले में बुनियादी विरोध है कि वे अधार्मिक हैं या धर्म-विरोधी हैं? मेरी कल्पना के भी बाहर है कि धर्म के विरोध में होकर दुनिया में समता लाने का उपाय क्या है? और मेरी कल्पना के यह भी बाहर है कि जो आदमी मनुष्य के भीतर आत्मा को इनकार करता है और जगत में परमात्मा को इनकार करता है, फिर उसको गरीब के दुख की बात करनी फिजूल है। एक मशीन है, दुख में या सुख में, इससे क्या फर्क पड़ता है। एक मशीन को कोई दुख होता है? किसी मशीन को आप गरीब कहते हैं? किसी कार को अगर पैट्रोल न मिले तो गरीब हो गई? और किसी कार को पैट्रोल मिले तो अमीर हो गई? और हम लड़ाई-झगड़ा करेंगे कि जिस कार को पैट्रोल नहीं मिल रहा है इसकी मशीन को बड़ा दुख हो रहा है।
अगर मार्क्स की यह बात सच है कि मनुष्य पदार्थ है, तो दुनिया में समाजवाद लाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आदमी नहीं है, मशीनें हैं, और मशीनों में न दुख होता है, न सुख होता है। तेल मिल जाए तो मशीन चलने लगती है, न मिले तो नहीं चलती है, खत्म हो जाती है। खत्म हो जाए, हर्ज क्या है। इसी वजह से स्टैलिन जैसा व्यक्ति एक करोड़ लोगों की हत्या कर सका, क्योंकि मशीनें हैं, काट दो, हर्जा क्या है। न कोई भीतर आत्मा है, न कोई संवेदनशील चेतना है। मरने पर कुछ बचता नहीं है। कम्युनिज्म की यह बात मौलिक रूप से कम्युनिज्म के विरोध में है। इसलिए मेरी जरा मुसीबत है। कम्युनिस्ट समझते हैं, मैं कम्युनिस्टों का दुश्मन हूं। कम्युनिस्टों के दुश्मन समझते हैं, मैं कम्युनिस्ट हूं।
मैं धर्म की जितनी गहराइयों में देख पाता हूं, मुझे दिखाई पड़ता है, धर्म और साम्यवाद एक ही चीज के दो पहलू हैं। धर्म भीतरी साधना है, साम्यवाद उसी साधना से हुए अनुभव का बाहर विस्तार है। अगर मैं अपने भीतर जाऊं और मुझे दिखाई पड़े प्रभु, और जिस दिन मुझे अपने भीतर उसकी ज्योति दिखाई पड़ती है, उसी दिन सबके भीतर उसकी ज्योति दिखाई पड़ने लगती है। तब द्वार पर भीख मांगते भिखमंगे को देख कर बहुत पीड़ा शुरू हो जाती है, क्योंकि मैं ही उसकी तरफ से खड़े होकर भीख मांग रहा हूं। और तब एक आदमी को सड़क पर भूखे मरते देख कर पीड़ा होनी स्वाभाविक है। क्योंकि आदमी नहीं है, परमात्मा ही भूखा तड़प रहा है और मर रहा है। और हम सब उसके पास से संवेदनहीन, इंसेंसिटिव, जड़ गुजरे चले जा रहे हैं!
नहीं, धर्म और साम्यवाद मेरे लिए एक ही अर्थ रखते हैं। कोई मुझसे पूछे, क्या आप धार्मिक हैं? तो मैं कहूंगा, हां। और कोई मुझसे पूछे कि आप साम्यवादी हैं? तो मैं कहूंगा, हां, मैं बिल्कुल साम्यवादी हूं। क्योंकि बिल्कुल धार्मिक होने के कारण साम्यवादी होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। और अगर कोई धार्मिक आदमी, कोई साधु-संत, कोई महात्मा कहता हो कि वह साम्यवाद के विरोध में है, तो समझना कि उसे धर्म का भी अनुभव अभी शुरू नहीं हुआ, उसे धर्म की कोई प्रतीति शुरू नहीं हुई। वह किसी न किसी रूप में पूंजीवाद के एजेंट का काम ही कर रहा है और करता चला जाएगा।
और हजारों साल से साधु-संन्यासियों ने पूंजीवाद के एजेंट का काम किया है। एक सांठ-गांठ, एक कांसप्रेसी है, एक शड्यंत्र है। पूंजीवाद संन्यासी को बचाता है। मठ-मंदिर बनाता है, पीठ बनाता है, संन्यासी के लिए आश्रम बनाता है। पूंजीवाद संन्यासी को बचाता है। संन्यासी पूंजीवाद के लिए आड़ बनता है। वह गरीबों को समझाता है, ये अपने पुण्यों का फल भोग रहे हैं, तुम अपने पापों का फल भोग रहे हो। गड़बड़ नहीं करना। इसमें कुछ गड़बड़ किए, तो और पाप हो जाएगा। बगावत मत करना, विद्रोह की बात मत सोचना, संतोष रखो। गरीब को समझाता है, संतोष रखो, धैर्य रखो, सब ठीक हो जाएगा। भगवान अगर कष्ट भी दे रहा है, तो तुम्हारे ही हित में दे रहा है, उसमें भी कोई रहस्य छिपा होगा। और अगले जन्म में सब ठीक हो जाएगा। वह गरीब को समझाता है, गरीब रहने के लिए। अमीर को कहता है, तुम अपने पुण्यों का फल भोग रहे हो। ऐसे अमीर जितने

पाप करता है उनको तो पुण्य का मुलम्मा देता है और ऊपर से सोने की वर्क चढ़ा देता है। और अमीर को भुलावा देता है कि पाप से नहीं हो रहा है धन इकट्ठा, पिछले जन्मों के पुण्य से हो रहा है।
अमीर के भीतर भी दंश पैदा हो सकता है, पीड़ा पैदा हो सकती है, गिल्टी, उसको भी लग सकता है कि मैं कोई अपराध कर रहा हूं। संन्यासी उसके अपराध-भाव को मारता है। उसकी जो गिल्ट फीलिंग है, उसको हटाता है। वह कहता है, तुम्हारे पुण्यों का फल है, तुमने पिछले जन्मों में किया होगा, उसका फल भोग रहे हो। पुण्यों के फल के कारण तुम अमीर के घर में पैदा हुए हो। पुण्यों के फल के कारण धन चला आ रहा है। जब कि धन मौलिक रूप से पाप के बिना न आता है, न इकट्ठा होता है। असल में हम कुछ पापों को पहचानते ही नहीं।
जब तक कुछ लोग गरीब न हो जाएं तब तक मैं अमीर नहीं हो सकता। कुछ लोगों
को गरीब करके ही अमीर हो सकता हूं, यह अपराध नहीं है? प्रूधो ने कहा है, धन चोरी है। और ठीक कहा है। मगर ऐसी चोरी है जो समाज को स्वीकृत है। दो तरह की चोरियां हैं। एक, जिसको समाज स्वीकार नहीं करता। उस चोर को हम जेलखाने में बंद रखते हैं। एक ऐसी चोरी है जिसे समाज स्वीकृत करता है, उस चोरी को हम आदर देते हैं, सम्मान देते हैं।
संन्यासी ने, साधु ने सुरक्षा की है धनपति की और धनपति के भीतर अपराध-भाव पैदा होने से रोका है। और गरीब को संतोष दिया है। और इस भांति संन्यासी बीच में एक पर्त बन कर खड़ा हो गया है, जो जिंदगी और समाज को बदलने नहीं देता।
इसलिए हिंदुस्तान जैसे देश में, जो हमेशा से गरीब है, सबसे ज्यादा गरीब है, लेकिन जहां क्रांति की कोई बात भी पैदा नहीं हो सकती। क्योंकि हिंदुस्तान में संन्यासियों की बड़ी कतार गरीब और अमीर के बीच शॉक एब्जार्वर का काम कर रही है। ट्रेन के डिब्बों के बीच में शॉक एब्जार्वर लगे होते हैं। डिब्बे को धक्का लगता है, एब्जार्वर पी जाता है, डिब्बे के भीतर यात्रियों को पता नहीं चलता है। कार में स्प्रिंग लगे होते हैं, गड्ढा आता है स्प्रिंग गड्ढे को पी जाते हैं, भीतर बैठे आदमी को पता नहीं चलता।
हिंदुस्तान में क्रांति के धक्के पैदा ही नहीं हो पाते। साधु, महात्माओं, मंदिरों, मस्जिदों, पुरोहितों, पंडितों की एक लंबी कतार शॉक एब्जार्वर का काम करती है, वह बीच में सब धक्के पी जाती है। गरीब को कहती है गरीब रहो, यह तुम्हारे कर्मों का फल है। और अगर अभी गड़बड़ की तो आगे भी गरीब रहोगे। शांति रखो, प्रार्थना करो, आगे ठीक हो जाएगा। अमीर को कहते हैं, तुम अपने पुण्यों का फल भोग रहे हो, उसकी अपराध-भावना को कम कर देती है। यह कतार धार्मिक नहीं है। धार्मिक होना मुश्किल है।
धार्मिक होने का इतना ही मतलब नहीं होता कि एक आदमी रोज भगवान के सामने घंटी बजाता हो, कि एक आदमी रोज तिलक-टीका लगाता हो, कि एक आदमी तीन घंटे जप करता हो। धार्मिक होने का इतना ही मतलब नहीं होता। धार्मिक होने का मतलब हैः इतना संवेदनशील होना कि जीवन का सारा तथ्य दिखाई पड़ने लगे, जीवन के सारे तथ्य दिखाई पड़ने लगें। आंख इतनी संवेदनशील होनी चाहिए, चेतना इतनी निर्मल होनी चाहिए कि सब दर्पण की तरह दिखाई पड़ने लगे। धार्मिक व्यक्ति को साफ-साफ दिखाई पड़ेगा, गरीब और अमीर जुड़े हैं। दोनों के बीच लेन-देन चल रहा है। एक शोषण की एक धारा बह रही है। एक नहर खुदी है, जहां से सब अमीर की तरफ चुपचाप चला आता है। सारा श्रम धीरे-धीरे अमीर के पास धन की तरह इकट्ठा हो जाता है। हमें पता नहीं कि ताजमहल किसने बनाया? एक कारीगर के नाम का पता नहीं? जिसने बनाया उसका कोई पता नहीं। जिसने कभी नहीं बनाया, जो कभी देखने भी नहीं गया होगा बनते वक्त, उसका नाम हमें पता है।
पिरामिड किसने खड़े किए इजिप्त में? कहते हैं, एक-एक पत्थर को चढ़ाने में पचास-पचास लोग मर गए, लेकिन कौन मरा उन पत्थरों को चढ़ाने में? क्योंकि क्रेन तो नहीं थी। इतने-इतने बड़े पत्थरों को ऊपर चढ़ाने में निश्चित ही लोग मरे होंगे। हजारों लोगों का खून है, उनका कोई पता नहीं है। लेकिन जिसकी आज्ञा से यह हुआ...

और इजिप्त में जब बन रहे थे पिरामिड, तो एक बड़े पत्थर को जो आदमी की जान लेने वाला हो, उठाना बहुत कठिन है। तो पीछे घोड़ों पर सवार कोड़े मारने वाले लोग रहते थे कि जरा शिथिल हुआ मजदूर कि उसने कोड़े चलाए। कोड़ों की चोट में, कोड़ों से बचने के लिए बड़े से बड़े पत्थर को लेकर मजदूर चढ़ रहा है, फिसल पड़ा है पत्थर, दस-पचास मजदूर दब कर मर गए हैं। मजदूरों की लाशें हटा दी गईं, पचास दूसरे मजदूर जोत दिए गए हैं। पिरामिड खड़ा हो गया।
इतिहास बड़ा गुणगान करते हैं पिरामिड का कि बड़ी सुंदर कृति है। और ताजमहल का गुणगान करते हैं कि बड़ी सुंदर कृति है। लेकिन कितने लोगों का खून समा जाता है? कितने लोगों का श्रम समा जाता है? अगर हम दुनिया की सब बड़ी-बड़ी सुंदर कृतियां भी, उनके भीतर उतर कर देखें, तो उनकी कुरूपता बहुत महंगी मालूम प.ड़ेगी।
यह जो हमने संस्कृति और सभ्यता खड़ी की है, यह कितने शोषण पर खड़ी हुई है, यह कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन अब आगे यह नहीं हो सकता। आगे धार्मिक आदमी शॉक एब्जार्वर का काम नहीं करेगा, और करेगा तो उसका दुनिया में बचने का अब कोई उपाय नहीं है। आज नहीं कल उसे विदा होना पड़ेगा। धार्मिक आदमी की एक बिल्कुल नई तस्वीर आने वाले भविष्य में प्रकट होनी चाहिए, तो ही धर्म बचेगा, वह तस्वीर।
अभी सुबह यहां कोई पढ़ रहा था, ओम शांतिः शांतिः शांतिः। बहुत दिन से संन्यासी यही कहते रहे हैं। आने वाले संन्यासी को कहना प.ड़ेगा, ओम क्रांतिः क्रांतिः क्रांतिः। बहुत हो गया शांति का स्वर, बहुत हो गया। बहुत दिन से सुन रहे हैं शांतिः शांतिः। कोई कहे क्रांति भी। और ध्यान रहे, क्रांति के बिना शांति नहीं हो सकती। इतनी अशांति है कि इस पूरी व्यवस्था को बदले बिना शांति नहीं हो सकती।
तो मैं कम्युनिस्ट हूं। छिपा हुआ कम्युनिस्ट नहीं, प्रच्छन्न कम्युनिस्ट नहीं, बिल्कुल स्पष्ट। लेकिन अपने किस्म का अकेला ही हूं, किसी पार्टी वगैरह में नहीं हूं। और कोई पार्टी बनाने को उत्सुक भी नहीं हूं, क्योंकि पार्टी सब नकलचियों की होती हैं। अकेले रहना ठीक है।

एक मित्र ने पूछा है, एक मित्र पूछते हैंः भगवान को जानें ही क्यों? क्या जानने की आवश्यकता है? इसके बगैर नहीं चल सकता?

चलाने की कोशिश तो हम सभी करते हैं, चल नहीं पाता। नहीं चल सकता है। भगवान शब्द का सवाल नहीं है, गहरे में सत्य की खोज का सवाल है, गहरे में स्वयं की खोज का सवाल है, और गहरे में आनंद की खोज का सवाल है।
इस सवाल को ऐसा पूछें कि हम आनंद को खोजें ही क्यों? क्या आनंद को बिना खोजे नहीं चल सकता? चल सकता हो, बिल्कुल चला लीजिए। चल नहीं सकता। चलाने की कोशिश हम करते हैं। भगवान शब्द से बड़ी गड़बड़ पैदा हो गई है। उसके भीतर जो छिपा है, वह छूट ही गया। भगवान से ख्याल आता है कहीं हनुमान जी का, कहीं रामचंद्र जी का, कहीं मंदिर का, कहीं मस्जिद का। भगवान से कुछ दूर और बाहर की चीज का ख्याल आता है, जो गलत है।
भगवान से मतलब केवल है सत्य का, जीवन के परम सत्य का। कैसे चल सकता है सत्य को जाने बिना? एक आदमी अंधेरे में चलते हुए कहे, प्रकाश के बिना नहीं चल सकता है? हम कहेंगे, कोशिश करो। टकराहट होती है, सिर फूटता है, गिर पड़ते हैं, टकरा जाते हैं। वह आदमी कहता है, बिना चलाने से कोई हर्ज है? हम कहते हैं, चलाओ। लेकिन चलता नहीं। रोज की टक्कर बताती है, दुख-संताप बताता है कि चलता नहीं है।
खोजना ही पड़ेगा आनंद को। धार्मिक आदमी उसे भगवान कहते हैं। वह सिर्फ नाम की बात है। आनंद कहें, ठीक होगा। सत्य कहें, ठीक होगा। प्रेम कहें, ठीक होगा। इन सबके जोड़ का इकट्ठा नाम है भगवान।
भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कहीं दूर आकाश में बैठा हो, जिसे खोजने जाने की जरूरत हो। कोई जरूरत नहीं है। बैठे हो, बैठे रहो। अगर जरूरत हो, तुम खोजने आ जाना। ऐसा कोई भगवान नहीं है जिसे खोजने हमें कहीं जाना है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। हमारे ही भीतर जो जीवन की ऊर्जा है, जो लाइफ

एनर्जी है, हम जो हैं उसे बिना जाने कैसे चलेगा! हम अपने को ही नहीं जानते फिर हम दूसरे को भी नहीं जान पाते। फिर सारा जीवन कष्ट हो जाता है, संघर्ष हो जाता है। अज्ञान में चलेंगे, तो कष्ट होगा ही। हम अपने को पहचानते ही नहीं, इसलिए जो भी करते हैं वह हमें कष्ट में उतार देता है। जहां भी जाते हैं, कष्ट में उतर जाते हैं। यही पता नहीं कि क्यों जा रहे हैं, कौन है जो जा रहा है, क्या प्रयोजन है जाने का?
आप पूछते हैंः "बिना जाने नहीं चल सकता?"
नहीं चल सकता। कभी नहीं चला। और अगर कोई चलाएगा तो सारी जिंदगी दुख और पीड़ा की लंबी कहानी हो जाती है। सारी जिंदगी, जन्म से लेकर मृत्यु तक एक दुख की लंबी यात्रा हो जाती है। सुख की आशा रहती है, दुख का अनुभव मिलता है। आशा सुख की रहती है, कल मिलेगा; मिलता दुख है रोज-रोज। कल की आशा में आज के दुख को हम झेल लेते हैं और चलते चले जाते हैं। मरते तक मौत आ जाती है, पता नहीं चलता।
ययाति की बहुत पुरानी कथा है। ययाति मरने को हुआ, सौ वर्ष का हो गया था। एक सम्राट था पुराना। मरने को हुआ, मौत आ गई। द्वार पर मौत ने कहाः ययाति, तैयार हो जाओ, मैं द्वार पर प्रतीक्षा करती हूं। ययाति ने कहाः आ गई तुम? अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है; मैं कुछ कर ही नहीं पाया--न कोई सुख जाना, न कोई आनंद। अभी नहीं जा सकता हूं। ययाति घबड़ाने लगा। मौत ने कहाः लेकिन मुझे तो ले जाना पड़ेगा। अगर तुम्हारा बेटा कोई राजी हो, तो मैं उसको ले जाऊं। बिना लिए मैं जाने वाली नहीं हूं। पहले मौत नरम रही होगी, अब तो ऐसी नरम नहीं दिखाई पड़ती। अब तो उसी को ले जाती है जिसको ले जाना हो। पुराने जमाने की बात है, भोली-भाली रही होगी।
ययाति ने अपने बेटों को बुलाया। वे भी पुराने जमाने के बेटे थे, आज के जमाने के बेटे होते तो बुलाने से आते ही नहीं और मौत के वक्त तो बिल्कुल नहीं आते। बाप जिंदा हो, जेब गर्म हो, आ भी जाते। मरते बाप के पास कौन आता है? कहते हैं कि जल्दी-जल्दी समाप्त करो। लेकिन पुराने बेटे थे, आ गए। बेटों से बाप ने कहा कि मुझे मौत लेने आई है और मैंने तो अभी जिंदगी में सुख जाना नहीं, तुममें से कोई अपनी जिंदगी दे दो, तो मौत के साथ चले जाओ।
बड़े बेटे तो होशियार थे। वे तो इधर-उधर देखने लगे। जैसे उम्र बढ़ती है आदमी की चालाकी बढ़ जाती है। छोटा बेटा था, वह इतना चालाक नहीं था। उसने कहाः ठीक है, मैं चला जाता हूं। और फिर उसने कहा कि जब तुम्हें सौ वर्ष में कुछ सुख नहीं मिल पाया, तो मैं नाहक सौ वर्ष क्यों मेहनत करूं, चला ही जाऊं। सौ वर्ष के बाद मुझको जाना पड़ेगा, यह मेहनत मैंने देख ली। तुम्हें सौ वर्ष में नहीं मिला, तो मैं चला जाता हूं। बुद्धिमान भी रहा होगा। जो चालाक नहीं होते, वे ही बुद्धिमान भी हो सकते हैं। चालाक आदमी बुद्धिमान कभी नहीं होता। लेकिन चालाकी अक्सर बुद्धिमानी मालूम पड़ती है।
बेटा चला गया, मौत ले गई। फिर सौ वर्ष बीत गए कब, पता नहीं चला। जिंदगी
कब बीत जाती है, पता चलता ही नहीं। बीत जाती है, तभी पता चलता है। जा चुकी होती है, तभी पता चलता है। उसकी छाया दिखती है जाती हुई। आती हुई जिंदगी दिखती नहीं। बस गई और पता चलता है कि निकल गई हाथ से। सौ वर्ष फिर बीत गए। कब बीत गए, पता न चला। ययाति ने सोचा, सौ वर्ष बहुत बड़े हैं, खोज लेंगे। मौत फिर आ गई, द्वार पर दस्तक दी, ययाति घबड़ाया। उसने कहाः फिर तुम आ गई? क्या सौ वर्ष पूरे हो गए? मौत ने कहाः तुम कहते क्या हो? क्या किया इतने दिन? तुम फिर वैसे ही उदास दिखाई पड़ते हो? उसने कहाः लेकिन अभी तो कुछ नहीं हो पाया। रोज-रोज खोजता हूं सुख को, मालूम होता है, कल मिलेगा। आज निकल जाता है, कल आ जाता है, आशा फिर कल पर चली जाती है। और रोज दुख मिलता है, आशा में सुख रहता है। सौ वर्ष और दे दो, अभी तो मैंने कुछ जाना नहीं। मौत ने कहाः यह तो बहुत मुश्किल है। फिर किसी बेटे को राजी करो।
सौ वर्ष में फिर नये बेटे पैदा हो गए थे, पुराने बेटे तो मर चुके थे। फिर एक बेटा राजी हो गया, ऐसी कहानी चलती है। ययाति इस तरह एक हजार वर्ष जीया। और एक हजार वर्ष के बाद जब मौत ने दस्तक दी, तब वह ठीक उसी हालत में

था जैसी पहली बार सौ वर्ष की उम्र पर दस्तक दी थी। उसने कहाः अच्छा, अब ले ही चलो। हालांकि सुख अभी मिला नहीं, लेकिन अब वह मिलेगा भी नहीं।
ययाति की कहानी तो कहानी है। लेकिन जो जानते हैं, वे कहेंगे, हम भी बहुत सौ बार जी चुके हैं। शरीर बदल जाता है। ययाति का भी बदल गया। बेटे का मिल जाता था। उम्र मिल जाती थी, शरीर बदल जाता है। बहुत जन्म हम भी ले चुके हैं, बहुत बार जी चुके, फिर वही सुख की खोज है, वह मिलता नहीं। मरते हुए आदमी से पूछो, सुख मिला? अगर वह बेईमान न हो, या बच्चों को धोखा न देना चाहे, और बूढ़े बच्चों को धोखा दे रहे हैं। अगर बूढ़े सब सत्य प्रकट कर दें, जिंदगी बहुत और दूसरी हो जाए। लेकिन जो उनके बूढ़ों ने उन्हें धोखे दिए थे, वह अपने बेटों को दिए चले जाते हैं। इल्युजन, भ्रम कायम रहता है। पूछो मरते हुए आदमी से, सुख मिला? वह इतना ही कहेगाः मिलने की आशा थी, मिला नहीं।
एण्ड्रू कारनेगी मर रहा था, अमरीका का एक बहुत बड़ा अरबपति। शायद पृथ्वी पर इतना पैसा किसी दूसरे आदमी के पास नहीं था। कहते हैं, दस अरब रुपया पीछे छोड़ कर मरा। मर रहा है, उसकी जीवन-कथा लिखने वाला लेखक उससे मरने के दिन पूछा कि कारनेगी, आप तो प्रसन्न मर रहे होंगे, दस अरब रुपये दुनिया में शायद ही कोई कभी छोड़ गया हो। आपको आनंदित होना चाहिए, आप एक सफलतम व्यक्ति हो। कारनेगी ने क्रोध से कहाः सफल! क्या कहते हो? सिर्फ दस अरब! मेरे सौ अरब कमाने के इरादे थे। सब असफल हो गया। और अगर कार्नेगी जिंदा रह जाता और सौ अरब कमा लेता, तो भी वह ऐसे ही कहता, सौ अरब! जैसे सौ नये पैसे। क्योंकि तब तक आकांक्षा की यात्रा और आगे चली गई होती।
सुख हमारी आकांक्षा है, दुख हमारा अनुभव। और दुख के अनुभव को हम झेल लेते हैं सुख की आकांक्षा के कारण। और रोज-रोज झेल लेते हैं और भूल जाते हैं, और भूल जाते हैं, और भूल जाते हैं। रोज-रोज वही और जन्म-जन्म वही। अगर चला सकते हो ऐसा ही तो चला लें। लेकिन धर्म कहता है, ऐसे नहीं चल सकता। सत्य को जानना ही पड़ेगा। क्योंकि सत्य को जाने बिना आनंद नहीं मिलता, सिर्फ सुख की आशा बनी रहती है। और सत्य को जानते ही आनंद उपलब्ध होता है, दुख विलीन हो जाता है। सत्य को जाने बिना मृत्यु निरंतर खड़ी ही रहती है। सत्य को जाने बिना चिंता मिट ही नहीं सकती। सत्य को जाने बिना हमारे भटकाव का, हमारे कहीं भी उतराने-तैरने, किन्हीं भी तटों पर भटकने का यह व्यर्थ क्रम नहीं मिटता। सत्य को जानते ही हम एक दूसरी जीवन यात्रा में प्रविष्ट होते हैं, जहां अर्थ है, मीनिंग है, जहां आनंद है, बिलिस है और जहां एक शांति है। जिसे हमने कभी नहीं जाना, जो अपरिचित है, जिसकी हमें कोई पहचान नहीं।
तो मित्र पूछते हैंः "चल जाएगा ईश्वर को जाने बिना?"
कोशिश करें। चल जाए तो अच्छा है। वैसे कभी किसी का चला नहीं; कोशिश असफल हो गई है सदा। और आखिर में पता चला है कि भटक गया जीवन। अगर इतनी ताकत सत्य को, स्वयं को, प्रभु को खोजने में लगाई होती तो पता नहीं क्या हो जाता। चौबीस घंटे कुछ और करते रहें, पांच मिनट भी उसकी खोज जारी रखें, तो जीवन के अंत में पाएंगे कि बाकी चौबीस घंटे व्यर्थ गए, वह जो पांच मिनट उसकी तरफ लगाए थे, वही साथ बच गए हैं, वही संपत्ति बन गए हैं। बाकी सब विपत्ति सिद्ध हुआ है। लेकिन स्मरण नहीं आता है।

एक मित्र ने और पूछा है कि क्या युवक आदमी भी धर्म की बातों में पड़ जाएं? यह तो एक उम्र के बाद की बातें हैं।

ऐसा ही समझाया गया है आज तक। आज तक यही बताया गया है कि वृद्ध का काम
है धर्म। अगर वृद्ध का काम धर्म है, तो फिर जवान का काम अधर्म हो जाए, तो इसमें आश्चर्य नहीं है। आखिर जवान भी तो कुछ करेगा। अगर वृद्ध का काम धर्म है, तो जवान क्या करेगा? तो हमने यह मान लिया है कि जवान अधर्म करे तो चलेगा, वृद्ध भर को धार्मिक होना चाहिए। लेकिन वृद्ध को ही क्यों धार्मिक होना चाहिए? उसका ही क्या कसूर है? उसके कारण दूसरे हैं।

जैसे ही मौत करीब आती है, आदमी के पैर डगमगा जाते हैं। जैसे ही मौत सामने आने लगती है, वैसे ही आदमी को लगता है जो मैंने किया वह व्यर्थ गया।
मौत के सामने लड़ने में मैंने जो कमाया है उसकी क्या ताकत। मेरे रुपये किस काम आएंगे इस मौत के सामने आने पर, मेरा पद रोकेगा मुझे, यह मौत सामने खड़ी। वह घबड़ाने लगता है। वह सोचता हैः अब परमात्मा को पुकार लूं, ईश्वर को खोजूं। अब मौत से डर कर खोजता है। डर से कहीं सत्य की खोज हुई है।
मरते वक्त लोग सोचते हैं, ईश्वर का स्मरण कर लेंगे, और बेईमानों ने यह सिखाया है कि मरते वक्त एक दफा नाम भी ले लोगे तो सब ठीक हो जाएगा। अब ये बिल्कुल झूठी बातें हैं। जिस आदमी की पूरी जिंदगी और थी, वह मरते वक्त राम का नाम ले कैसे सकेगा? मरते क्षण में तो वही हमारी चेतना में होगा, जो जीवन भर का निचोड़ और निष्कर्ष है। मृत्यु के क्षण में तो सारे जीवन का सार हमारी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है। जो लोग कभी पानी में डूबे हैं और मर नहीं पाए, उन लोगों का अनुभव यह है कि डूबते वक्त जब लगता है कि मर रहे हैं, तो सारी जिंदगी की तस्वीरें एकदम से घूम जाती हैं, जैसे फिल्म के पर्दे पर तेजी से फिल्म घूम गई हो, एक सेकंड में सारी जिंदगी घूम जाती है। और वह जिंदगी का जो सार है आंख के सामने खड़ा हो जाता है।
मरते वक्त हमारे चित्त में वही होगा जो जीवन भर हमने संवारा है। मरते वक्त राम नहीं हो सकता। कैसे होगा? लेकिन होशियार और चालाक लोग कहते हैं कि अगर तुम्हारे मन में न भी हो तो कोई हर्ज नहीं, एक किराए का पंडित बुला लेना, वह कान में राम-राम, राम-राम करता रहेगा। अब कहीं किराए से भी धर्म उपलब्ध हुआ है? कि एक आदमी तुम मरना और एक आदमी भगवत गीता पढ़ेगा। तुम मरना और एक आदमी इधर नमोकार-मंत्र पढ़ेगा, तो मरना और कान में सब कह देगा जो कहना है कि तुम्हें जानना है। मरते क्षण सुनने की हैसियत भी नहीं रह जाती है आदमी की, और अगर उसका वश चले तो वह कहेगा बकवास बंद करो। क्योंकि उसे सब यह बकवास मालूम पड़ेगी। वह तो बेहोश हो रहा है इसलिए कुछ कह नहीं सकता। सुन रहा है बेचारा, तुम बके चले जा रहे हो। जिसने जिंदगी भर इसको बकवास समझा, आज मरते वक्त यह सार्थक कैसे हो जाएगी?
जीवन एक सतत धारा है। जैसे गंगा बहती है गंगोत्री से गंगासागर तक। एक सतत धारा है। जो गंगोत्री में है वही सागर में गिरते वक्त है बड़ी होकर। वही मूल-स्रोत बढ़ता हुआ चला आया है। कोई कहे कि गंगा काशी तक तो पवित्र नहीं रहती अपवित्र रहती है और काशी पर आकर एकदम पवित्र हो जाती है, तो हम नहीं मानेंगे कि हो कैसे जाएगा? अपवित्र गंगा की धारा काशी पर भी अपवित्र रहेगी। जो धारा आई है उसी की कंटिन्युटी, उसी का सातत्य तो रहेगा। जीवन की चेतना एक धारा है। जीवन भर जिस धारा में जो रहा है, मरते क्षण भी वही रहेगा। धारा नई कैसे हो जाएगी?
नहीं, जवान आदमी को ही नहीं छोटे बच्चे को भी धार्मिक होने की जरूरत है। अगर मृत्यु के क्षण तक प्रभु का साक्षात्कार कर लेना हो, तो जन्म के पहले दिन से ही यात्रा की व्यवस्था शुरू हो जानी चाहिए। यह अंत में छोड़ देने की बात नहीं, कल पर टाल देने की बात नहीं। क्योंकि सबसे ज्यादा अल्टिमेट, सबसे ज्यादा चरम प्रश्न ही यही है कि मैं स्वयं को और सत्य को कैसे जान लूं, मैं वहां कैसे पहुंच जाऊं जहां अंधकार नहीं प्रकाश।
नहीं, इसे हम अंत पर नहीं छोड़ सकते हैं। यह आखिर में नहीं होगा। यह हमें रोज जीना पड़ेगा। हम मान लेते हैं आखिर में होने की बात, क्योंकि हमको खुद पोस्टपोन करने में सुविधा मालूम पड़ती है कि कल देखेंगे, परसों देखेंगे, नरसों देखेंगे। कल का भरोसा है? परसों का भरोसा है? एक क्षण का भरोसा नहीं है। इस क्षण में जो जरूरी है, वह मुझे कर लेना चाहिए। और सबसे ज्यादा जरूरी धर्म है, बाकी सब चीजें उससे पीछे हैं, नंबर दो हैं। नंबर एक और कोई चीज नहीं हो सकती।
तो मैंने ये जो, ये जो बातें कहीं, ये वृद्धजनों के लिए नहीं कहीं। और वृद्धजनों में भी केवल वे ही इन बातों को कर पाएंगे जो शरीर से ही वृद्ध हो गए हैं, मन से युवा हैं। असल में करने के लिए युवापन चाहिए ही। चाहे शरीर में, चाहे मन में। युवा ही कुछ कर सकता है। जैसे-जैसे वृद्ध होता जाता है

व्यक्ति शरीर से, तो होता ही है, अगर मन से भी वृद्ध हो जाए, तो फिर नया कुछ भी करना असंभव हो जाता है।
वृद्ध होने का एक ही लक्षण हैः नया सीखने की असमर्थता। वृद्ध नया नहीं सीख सकता, पुराने को सिर्फ दोहरा सकता है। सीखने की क्षमता कम हो जाती है। जो सीख लिया उसी में जीने की क्षमता रहती है। जीवन भर सीखा संसार, मरते वक्त सत्य कैसे आ जाएगा? जीवन भर सीखा अधर्म, अंतिम क्षण में धर्म कैसे आ जाएगा? बीज हम जिसके बोएंगे, फल भी उसी के उपलब्ध होते हैं। और कडुए बीज बोए हैं, तो मीठे फलों की संभावना नहीं।
इसलिए यह बात बिल्कुल जड़ से उखड़ कर फिंक जानी चाहिए कि धर्म वृद्धों
का काम है। धर्म पूरे जीवन की साधना है पहले दिन से। बल्कि जो बहुत गहरे में जानते हैं, वे कहेंगे, गर्भाधारण के क्षण से, जिस क्षण से मां के पेट में गर्भ निर्मित हुआ है, उस क्षण से धर्म की साधना शुरू हो गई। और अगर मां समझदार हो तो अब इन नौ महीनों में एक जीवन जो उसके भीतर विकसित हो रहा है, अगर उसका उसे थोड़ा भी ध्यान हो, तो शायद बिल्कुल दूसरे तरह का व्यक्ति पैदा हो सके।
लेकिन वह लड़ रही है, क्रोध कर रही है, गालियां दे रही है। सब संघर्ष चल रहा है, सब चिंता चल रही है। इस सबके संस्कार उस छोटे से भ्रूण पर पड़ते हैं। वह सब निर्मित हो रहा है। कल वह बच्चा क्रोधी की तरह खड़ा होगा, तब यह मां सिर पीटेगी कि यह दुष्ट कहां से पैदा हो गया? यह दुष्ट और कहीं से पैदा नहीं हुआ, आपसे ही पैदा हुआ है। बाप कहेगा कि ऐसा नालायक लड़का पैदा हो गया है। लायक बाप को नालायक लड़का पैदा हो कैसे जाएगा?
जीवन के प्रथम क्षण से निर्माण शुरू हो गया है। किस क्षण में, किस भाव में, किस प्रार्थना के मन में बच्चे का गर्भाधारण हुआ है वह उसके पूरे जीवन की यात्रा का बीज शुरू हो गया है। बलात्कार से भी एक बच्चा पैदा हो सकता है, लेकिन उस बच्चे की संभावना बहुत भिन्न होगी। अत्यंत प्रेम से भी एक बच्चा पैदा हो सकता है, उसकी संभावना भिन्न होगी। और अत्यंत प्रेयरफुल मूड में, प्रार्थना से भरे हुए भी एक बच्चा पैदा हो सकता है, लेकिन उसकी संभावना और भी भिन्न होगी। कैसे बच्चा, शुरू हुई है यात्रा उसकी... फिर मां के पेट में नौ महीने, मां ने क्या किया है, उस घर में क्या हुआ है।
अभी तो मनोवैज्ञानिक परीक्षण करते हैं, तो बहुत हैरान हैं। वे तो यह कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा है और अगर चारों तरफ लाल रंग की दीवालें पोत दी जाएं, तो बच्चा क्रोधी हो जाएगा। क्योंकि लाल रंग क्रोध को पैदा करता है। छोटे-छोटे बच्चों को हम लाल रंग के खिलौने देते हैं, वैज्ञानिक नहीं है। बच्चों को लाल रंग के खिलौने देना एकदम खतरनाक है। क्योंकि लाल रंग सब तरफ से भीतर क्रोध के परमाणुओं को सजग करता है। इसीलिए तो क्रुद्ध लोग लाल रंग को चुनते हैं। कम्युनिस्ट लाल झंडा चुनते हैं। क्रुद्ध, वह जो क्रोध का प्रतीक है वह। क्रोध है, तो उसके लिए लाल रंग चुन लेते हैं।
आप जंगल में जाते हैं, वृक्षों को देख कर मन शांत हो जाता है। वह सिर्फ हरे रंग का प्रभाव है, और कुछ भी नहीं है। लंबी हरियाली मन के सारे परमाणुओं को शांति की तरफ झुका देती है। अगर एक मां के पेट में बच्चा है, तो दीवालें लाल हों कि हरी, यह भी धार्मिक आदमी विचार करेगा कि दीवाल कैसी हो, मां कैसे कपड़े पहने, कैसा संगीत सुने।
संगीत के नाम पर तो सिवाय लड़ाई-झगड़े के और कुछ संगीत सुनने को मिलता नहीं। लड़ाई-झगड़ा चल रहा है वही संगीत है। घर में वही संगीत है। चौबीस घंटे कलह चल रही है बहुत-बहुत रूपों में। उसी का ताल, पद, जो भी है, वही कलह भी है। सितार कहो, संगीत कहो, वही कलह जो चौबीस घंटे चल रही है, वही कलह है। उस कलह के बीच बच्चा निर्मित हो रहा है। एक छोटा-छोटा और फिर मां के पेट से बच्चा आया है तो हमें ख्याल ही नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं। अगर धार्मिक जीवन की तरफ चेतना को ले जाना हो तो अत्यंत छोटी बातों पर ध्यान रखना पड़ेगा।
मैंने सुना है, नेपोलियन छह महीने का था, झूले पर सोया हुआ है, एक जंगली बिल्ली सवार हो गई उसकी छाती पर। नौकरानी जरा बाहर चली गई होगी।
आवाज सुनी रोने की, भीतर आई। बिल्ली को हटा दिया। कोई नुकसान नहीं हुआ था।

लेकिन बिल्ली नेपोलियन की छाती पर चढ़ गई थी--छह महीने का बच्चा। आप जान कर हैरान होंगे, नेपोलियन जिंदगी भर बिल्ली से डरता रहा। शेर से नहीं डरता था, बिल्ली से डरता था। और यह जान कर आप और भी हैरान होंगे कि जिंदगी में सिर्फ एक बार नेपोलियन हारा। और जिस युद्ध में हारा, उसमें नेल्सन, उसका दुश्मन, सत्तर बिल्लियां फौज के सामने बांध कर लाया हुआ है। और जैसे ही नेपोलियन ने बिल्लियां देखीं, उसने अपने बगल के सेनापति को कहा, अब तुम सम्हाल लो, मेरी हिम्मत टूटती है। क्योंकि मैं जानता हूं, बिल्ली से डरने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन मैं अवश हूं। बिल्ली दिखती है, बस मेरा सब होश-हवाश सब खो जाता है।
राजनीतिज्ञ कहेंगे कि नेल्सन ने हराया, मनोवैज्ञानिक कहेंगे, बिल्लियों ने हराया। और सच में बिल्लियों ने ही हराया। नेल्सन की ताकत नेपोलियन को हराने की नहीं थी। छह महीने की उम्र में बिल्ली का छाती पर बैठना इतना बड़ा संस्कार ला सकता है कि सारी मनुष्य-जाति का इतिहास दूसरा हो। अगर नेपोलियन जीतता, इतिहास दूसरा होता। नेपोलियन हारा, इतिहास दूसरा हुआ। एक छोटी सी बिल्ली का एक बच्चे की छाती पर चढ़ना करोड़ों वर्षों के लिए मनुष्य-जाति के इतिहास को बदल देगा। इतनी छोटी घटना!
अगर हमें एक धार्मिक समाज पैदा करना हो, तो मां के पेट में गर्भ के क्षण से लेकर बच्चे का प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल कैसे विकसित हो, कैसी उसके आस-पास की सारी हवा हो, किस दिशा में उसकी चेतना के द्वार खोलने के लिए हम साथी बनें, और किन गलतियों से हम बचें कि हम उस पर थोप न दें, तो मुझे नहीं लगता कि पृथ्वी पर... क्यों, कौन सा कारण है कि एक अच्छी दुनिया, एक आनंद से भरा हुआ जगत पैदा न हो सके। लेकिन पुरानी भूल छोड़ देनी होगी। धर्म झूले से शुरू होता है, और पुरानी भूल कहती है कि धर्म जब कब्र में एक पैर उतर जाए तब, तब शुरू होता है। कब्र पर धर्म शुरू नहीं होता, झूले से शुरू होता है। झूले से ही शुरू करना पड़ेगा। और अगर यह हमें स्मरण में साफ-साफ हो तो हम व्यक्तित्व को विकसित होने में, चेतना को एक दिशा देने में सहयोगी हो सकते हैं। लेकिन यह तो आने वाले बच्चों की बात हुई। आप अब दुबारा फिलहाल बच्चे नहीं होने को हैं, थोड़ा वक्त लगेगा मरने के बाद, फिर हो सकते हैं। अभी आप क्या करेंगे?
आज का क्षण ही शुरुआत होनी चाहिए। यह मत सोच लेना कि अपने झूले के दिन
तो निकल गए, बात खत्म हुई, अब जब दुबारा झूला मिलेगा तब सोचेंगे। आपके लिए तो आज, अभी, यही क्षण प्रारंभ हो जाना चाहिए। जिंदगी को अगर आनंद, शांति और सत्य की तरफ ले जाना है, ले जा सकते हैं। थोड़े श्रम की जरूरत है। बिना श्रम के कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। और परमात्मा जैसी परम संपत्ति को हम सिर्फ हाथ जोड़ कर पाना चाहते हों, तो नहीं मिल सकता है। न कोई गुरु देगा, न कोई शास्त्र देगा, न कोई मंदिर-मस्जिद दे सकता है। आपको, आपको ही पाना पड़ेगा। आपको ही थोड़ा श्रम करना पड़ेगा।
उस श्रम के लिए मैंने इन चार दिनों में कुछ बातें की हैं। आपने उन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, परमात्मा करे उन्हें आप इतनी ही शांति और प्रेम से कर भी सकें। क्योंकि सुनना व्यर्थ है अगर उसके पीछे कुछ किया न जा सके। प्रभु से प्रार्थना करता हूं, बल दे, संकल्प दे कि आप एक कदम, कम से कम एक कदम उठा सकें प्रभु की तरफ। और ध्यान रहे, जो एक कदम उसकी तरफ उठाता है, वह हजार कदम हमारी तरफ उठाने को हमेशा तैयार है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।